भींगे सिरको आनन्दके आंसूसे फिर भिंगोया। भीमसेन उसको देख करके कर्णको सूतका पुत्र जानकर मानो हंसीसे बोले; कि हे सूतपुत्र! तुम रणभूमिमें अर्जुनसे मारे जानेके योग्य नहीं हो; तुम शीघ्र घोड़ा चलानेके निमित्त अपने कुलके योग्य पैनेको थामो! रे नराधम! कुत्ता जैसे यज्ञीय अग्निके सामने स्थित घृत पीनेके योग्य नहीं है। ऐसेही तूभी अङ्गराज्यको भोगनेके योग्य नहीं है। भीमकी इस बातसे कर्णके होठ कांपने लगे। उन्होंने ऊंची सांस लेकर आकाशमें स्थित दिननाथ पर आंख फेरी! अनन्तर महाबली दुर्य्योधन क्रोधित होकर मदसे उन्मत्त हस्तीके समान भ्रातृवर्गरूपी पद्मवनसे उसीक्षण कूद उठे और निकट ठहरे हुए, भीमकर्म्म करनेवाले, भीमसेनसे बोले, कि, वृकोदर! तुमको ऐसा कहना न चाहिये था; क्षत्रियोंका बलही श्रेष्ठ है, क्षत्रियके निन्दित होनेपरभी उससे लड़ना चाहिये। ऐसा कहा है, कि नदी और वीरोंकी उत्पत्तिका वृत्तान्त जानने योग्य नहीं है। देखो अग्निने जलसे उठकर इस चराचर भुवनको छेंक लिया है और जिस वज्रसे दानव-वंश नष्ट हुआ है, वह वज्र मुनिवर दधीचिकी हड्डीसे बना है; जो भगवान् देवकार्त्तिक हैं, उनकी उत्पत्तिभी जानने योग्य नहीं है, क्योंकि वह अग्निकेपुत्र, कृत्तिकाके पुत्र, रुद्रके पुत्र और गङ्गाके पुत्र कहकेभी प्रसिद्ध होते हैं। फिर यह भी तुमने सुना होगा, कि जिन्होंने क्षत्रियोंसे जन्म लिया लिया था, वेभी ब्राह्मण हुए हैं। देखो, विश्वामित्र आदिने क्षत्रियकुलमें जन्म लेकर अनश्वर अव्यय ब्राह्मणका पद प्राप्त किया था। अस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ आचार्य्य द्रोण यज्ञके कलसेसे उत्पन्न हुए थे और आचार्य्य कृपने गौतमके वंशमें शरकण्डेकी लकड़ीसे जन्म लिया था; औरोंकी कथा कहनेका क्या प्रयोजन है, तुम्हाराही जन्म जिस प्रकारसे हुआ था, वहभी मैं जानता हूं; यह सम्भवही नहीं होता, कि कुण्डल कवच सहित जन्म लिये हुए सर्व्व लक्षणयुक्त सूर्य्यवत् इस पुरुषव्याघ्रने मृगीसे जन्म लियाहो; विशेष इन कर्णके भुजबल और आज्ञानुसारी मेरे विद्यमान रहते इन नरेश्वरको केवल अंगराज्य होका भोगना क्या है, बल्कि यह भूमण्डल भरके एकही अधिकारी होने योग्य हैं। पर यदि मेरा यह कार्य्य किसीको असहन जान पड़ा हो, तो वह रथपर आरूढ़ होकर दोनों पावोंके सहारे शरासन नवावे। अनन्तर अखाड़े भरमें साधुवादयुक्त बड़ा कोलाहल उठने लगा, ऐसे समयमें दिननाथ अस्ताचलको सिधारे। अनन्तर भूपाल दुर्य्योधन कर्णके हाथ पकड़ दीपकके उजालेमें उस अखाड़ेसे निकले। पृथ्वीनाथ! पाण्डवगण और आचार्य्य द्रोण, कृप और भीष्मके साथ सब उस समय अपने अपने घरको चले गये। तब देखने वालोंमें कोई अर्जुनको, कोई दुर्य्योधनकी बात कहता हुआ चला गया। कुन्ती दिव्य लक्षणयुक्त पुत्रको पहिचानकर और उसको अङ्गराज्यमें अभिषिक्त देखकर स्नेहके कारण गुप्त भावसे प्रसन्न हुई। हे पृथ्वीपते! तब कर्णको पाकर दुर्य्योधनके हृदयसे अर्जुनका भय जाता रहा। शस्त्र-विद्यामें परिश्रमी वीर कर्ण मीठी मीठी बातोंसे सुयोधनको प्रसन्न करने लगे और युधिष्ठिरकोभी समझ पड़ा, कि भूमण्डल भरमें कर्णके समान धनुषधारी कोई नहीं है।

सम्भवपर्व्वमें एकसौ अट्ठतीस अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर आचार्य्य द्रोणने पाण्डवके तथा धृतराष्ट्रके पुत्रोंको अस्त्रविद्यामें शिक्षित देखकर गुरु-दक्षिणाके काल आनेपर दक्षिणाके योग्य विषयका निश्चय किया। अनन्तर शिष्योंको लिवा लाकर गुरु

दक्षिणाकी वह योग्य वस्तुकी आज्ञाकर बोले, कि तुम लड़ करके पाञ्चालराज द्रुपदको पराजय पूर्व्वक पकड़ कर मेरे पास ले आओ। तुम्हारा मङ्गल होवे, ऐसा करनेहीसे तुम अच्छी दक्षिणा होगी। शिष्यगण सब वह मानकर गुरु दक्षिणाके लिये अस्त्र शस्त्र लेकर रथ पर चढ़के गुरु द्रोणके साथ वेगसे पधारे। वे नरश्रेष्ठगण सब पाञ्चाल देशमें मारते पीटते हुए चले, आगे बड़े तेजस्वी द्रुपदके नगरको बिगाड़ने लगे। दुर्य्योधन, कर्ण महाबली युयुत्सु, दुःशासन, विकर्ण जलसन्ध और दूसरे बड़े विक्रमी क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ कुमारगण यह कहते हुए कि "मैं पहिले मैं पहिले" अच्छे रथ पर चढ़ करके घुड़चढ़ोंसे घेरे जाकर नगरमें घुसकर राजमार्गसे चलने लगे। हे राजन्! उस समय पाञ्चाल देशके, राजा यज्ञसेन वह सब बात सुनकर आयी हुई बड़ी भारी सेना देख करके युद्धके लिये सजकर भाइयोंके साथ भवनसे शीघ्र निकले। कौरवगण एव बड़ा शब्द करते हुये बाण बर्षने लगे। तब दुर्ज्जय यज्ञसेन श्वेत रथ पर चढ़कर रणमें पाण्डवोंके निकट आकर बहुत अधिक बाण बर्षाने लगे। श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अर्ज्जुन कुमारोंको अहंकारसे कूदते देखकर पहिलेही परामर्श कर द्विजश्रेष्ठ आचार्य्य द्रोणसे बोले, कि इनके बल दिखा लेनेके पीछे हम साहस करेंगे, क्योंकि रणस्थलमें यह कदापि भूपाल पाञ्चालको पकड़ नहीं पावेंगे। अनघ कुन्तीपुत्र यह कहकर भाइयोंके साथ नगरसे आधेकोस की दूरी पर जा रहे; इधर द्रुपद कौरवोंको देखकर अगणित बाणोंसे कौरवी सेनाको मोहित करके चारों ओर दौड़ने लगे। कौरवलोग युद्धस्थलमें रथ पर चढ़े हुए लड़नेमें उद्यत अकेले द्रुपदकी शीघ्रताको देखकर भयके मारे मानों उस एकहीको अनेक समझने लगे। राजा द्रुपदके कठोर बाण चारों ओर फिरने लगे। महाराज! अनन्तर पाञ्चालोंके घरमें सहस्रों शङ्ख, मृदङ्ग तथा नगाड़े बजने लगे और उनके सिंह समान गर्ज्जन तथा धन्वामें गुण चढ़ानेके घोर शब्द आकाशमें गूंजने लगे। उससे दुर्य्योधन विकर्ण, सुबाहु, दीर्घलोचन और दुःशासन यह क्रोधित होकर बाण बर्षने लगे। हे भारत! लड़ाईमें दुर्ज्जय बड़े चापधारी पृषत्पुत्र द्रुपद बाणोंसे बहुत विद्ध होकर उसीक्षण विपक्षी सेनाको बड़ी कठोर पीड़ा पहुंचाने लगे। वह अकेले रथके पहियेके समान घूमघूमकर दुर्य्योधन, विकर्ण, महाबली कर्ण और नाना देशके वीर राजकुमारोंको तथा अनेक सेनाओंको बाणोंसे डाटने लगे, किसीको उसका स्वाद बिना दिये नहीं छोड़ा। अनन्तर नगरवालोंने वर्षनेवाले बादलोंके समान मूषल और लाठियोंसे कौरवोंको घेर लिया। हे भारत! तब पुरवासियोंमें बच्चोंसे लेकर बुड्ढोंतक घोर युद्धकी बात सुनकर कौरवों पर दौड़े; इससे कौरवगण भागकर चिल्ला चिल्लाके रोते हुए पाण्डवोंकी ओर चले। तब पाण्डवगण रोंये खड़े करनेवाली रुलाईके कोलाहलको सुनकर आचार्य्य द्रोणके पांव छूकर रथपर चढ़े। अर्ज्जुनने शीघ्रतासे युधिष्ठिरसे यह कह कर मनाकरके कि "आप न लड़िये" नकुल और सहदेवको चक्रकी रखवारीमें नियुक्त किया और सदा सेनाके आगे चलनेवाले भीमसेन हाथमें गदा लेकर चले। कुन्तीपुत्र अनघ अर्ज्जुन शत्रुओंका शब्द सुनकर रथोंकी आहटसे दशो दिशा भरते हुए, भाइयोंके साथ बड़े वेगसे रणभूमिमें आगये। जिस प्रकार मगर समुद्रमें प्रवेश करता है, वैसेही हाथमें दण्ड लिये यमराजके समान भीमसेन उछलते हुए समुद्रकी भांति शब्द करते हुई पाञ्चाल सेनामें प्रविष्ट हुए। अतुल भुजवीर्य्ययुक्त, रणमें पण्डित पृथापुत्र भीम स्वयं गजपर

चढ़ी हुई सेनाको ओर दौड़ कर और काल-रूपी होकर गदाघातसे उसको नष्ट करने लगे। उन सब महीधर समान हस्तियोंके सिर भीमसेनको गदाको चोटसे टूट जानेपर वे रक्तकी धार बहाते हुए, वज्रकी चोट लगे हुए, पर्व्वतकी भांति धरतीपर गिरने लगे। अर्ज्जुनके बड़े भाई वृकोदरने अगणित गज, घोड़े और रथ धरतीपर गिराये और असंख्य रथी और पैदलोंको यमराजके घर भेजने लगे। वनमें गौयोंके रखवारे जिस प्रकार लकड़ोसे पशुदलको खदेड़ते हैं, वैसेही भीमसेन गज और रथियोंको गदासे भगाने लगे।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि तब पाण्डुपुत्र फाल्गुनने आचार्य्य द्रोणके प्रिय कार्य्य करनेमें उद्यत होकर बाणोंके द्वारा हस्तीपरसे पाञ्चालराजको गिराया। हे राजन्! वह प्रलयकालकी अग्निके समान जलकर चारों ओर घोड़े, रथ और गजोंको रणशय्यापर सुलाने लगे। अनन्तर मरते जाते हुए, सृञ्जय और पाञ्चाललोग मुखसे सिंहसमान गर्ज्जनकर नाना बाणोंसे पार्थको घेरकर कठोर युद्ध करने लगे। तब देखनेमें वह घोर युद्ध बड़ाही विकराल हुआ। इन्द्रनन्दन किरीटोसे वह सिंह-गर्ज्जन सहा नहीं गया, वह उसीक्षण घोर बाणोंसे रणभूमिको चारो ओर घेरकर पाञ्चालोंको मोहित करके उनपर दौड़े। यशस्वो कुन्तोपुत्र इतने शीघ्र बाण जोड़ने और चलाने लगे, कि उनका टुकभो अवसर दीख नहीं पड़ा। चारों ओर साधु-वादसहित सिंह-गर्ज्जन होने लगा! सम्बर-असुर जिस प्रकार महेन्द्रपर दौड़ा था, वैसेही पाञ्चालराज तब सत्यजितके साथ शीघ्रताकरके अर्ज्जुन पर दौड़े। अर्ज्जुनने बड़े बड़े बाणों की वर्षा कर पाञ्चालराजको ढंप लिया। इससे उस समय पाञ्चालोंमें ऐसी हलहलावट उठने लगी, कि जैसी बड़े सिंहके गजदलपति के पकड़नेकी चाहनेसे उठती है। तब सत्य-विक्रमी सत्यजित अर्ज्जुनको आते देखकर पाञ्चालराजको रक्षाके लिये अर्ज्जुनपर दौड़े। इन्द्र और विरोचनके पुत्रके समान पदार्थ एकत्र भये। अर्ज्जुन और सत्यजित दोनों एक दूसरेकी सेनामें हलचल मचाने लगे। आगे अर्ज्जुनने मर्म्म भेद करने वाले बलपूर्व्वक कठिन रूपसे सत्यजितको विद्ध किया। वह लीला मानो आश्चर्य्यसो जान पड़ो। अनन्तर सत्य-जितने उसीक्षण धनञ्जयको पीड़ा पहुंचाई। बड़े वेगवान् महारथी धनञ्जयने बाण वृष्टिसे टंपे जाकर धनुषके गुणको मल कर फिर तेजको बढ़ा लिया। आगे बाणोंसे सत्यजित का शरासन काटकर द्रुपदकी ओर चले। अनन्तर सत्यजितने शीघ्रतासे अधिक वेगवान् दूसरे एक शरासनको लेकर घोड़े, रथ और सारथिके साथ पार्थको विद्ध किया। पार्थने रण-स्थलमें उससे पीड़ा पाकर उसको क्षमा नहीं की। वरन उसको नष्ट करनेके लिये वेगसे घोड़े, झण्डे धनुष, मुठ्ठी तथा पीठके रखवारे और सारथि पर कुछ बाण चलाये। अर्ज्जुनसे एस प्रकार बार बार उनके धनुष काटे और घोड़े जोतसे निकाले जाने पर उन्होंने लड़ाईमें पीठ दिखाई। पाञ्चालराज सत्य-जितको लड़ाईमें हार खाते देखकर अर्ज्जुनपर बड़े वेगसे बाण बजाने लगे। जययुक्त अर्ज्जु-नभी तब घोर युद्धमें प्रवृत्त हुए। उन्होंने उनके झण्डे और धनुषको काटकर धरती पर गिराया और पांच बाणोंसे उनके सारथी और घोड़ोंको विद्ध किया। अनन्तर कुन्ती-नन्दन धनुषबाण छोड़कर खड्ग लेकर सिंह समान गर्ज्जन करने लगे और एकायक कूदकर पाञ्चाल-राजके रथको झण्डीपर जा गिरे। धनञ्जयने ऐसे निर्भय होकर द्रुपदको रथपर चढ़कर पकड़ लिया, कि जैसे लोग समुद्रमें हल-चल मचाकर हस्तोको पकड़ लेते हैं; उसे

देखकर सब पाञ्चाल दशों ओर भागने लगे। तब धनञ्जय सम्पूर्ण सेनाओं में अपना भुजबल प्रगट करके सिंहगर्जनकर वहांसे लौट चले। कुमारलोग अर्जुनको लौटते देखकर सब एकत्र होकर उस समय महात्मा द्रुपदका नगर बिगाड़ने लगे। आगे अर्जुन बोले, कि हे भीम! राजश्रेष्ठ द्रुपद कुरुवीरोंके सम्बन्धी हैं, सो उनकी सेनाको मत मारो, केवल गुरु-दक्षिणाही दीजावे।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे राजन्! महाबली भीमसेन तब अर्जुनसे रोके जाकर युद्धमें भली प्रकार तृप्त न होनेपर भी निवृत्त हुए। हे भरतश्रेष्ठ! कुमारलोगोंने रणभूमिसे यज्ञसेन द्रुपदको मन्त्रीके साथ पकड़ लेजाकर आचार्य द्रोणको भेंट किया। द्रोण उस प्रकार वशमें आये अहङ्कार छोड़े और धन खोये द्रुपदको देखकर पहिलेकी शत्रुताको स्मरणकर बोले, कि मैंने बलसे तुम्हारे राज्यको बिगाड़कर पुरीको मथ डाला है, क्या अपने जीवनको पाकर, जो अब इस विप्रके वशमें आ गया है, पहिलेकी मित्रताको चाहते हो? यह कहकरके हंसकर फिर वह मनही मनमें निश्चय कर उनसे बोले, कि हे वीर! तुम प्राणका भय मत करो, हम ब्राह्मण हैं, सो क्षमायुक्त हैं। हे क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ! बालेपनमें मुझसे खेलने कूदनेहीके हेतु तुम पर मेरा स्नेह और प्रेम बढ़ा था, सो हे जनाधिप! मैं फिर तुमसे मित्रता चाहता हूं। हे राजन्! तुमको वर देता हूं, कि तुम इस राजका आधा भाग पावोगे। हे यज्ञसेन! राजा न होनेसे कोई राजाका मित्र नहीं हो सकता है, इसी लिये मैं तुमको राज्य देनेके कारण ऐसा प्रयत्न कर रहा हूं। हे पाञ्चाल! तुम भागीरथीके दक्षिण किनारेके राजा होगे और मैं उत्तर किनारेका राजा हूंगा, अब तुम चाहो तो मुझको मित्रकरके मानो। द्रुपद बोले, कि हे ब्रह्मन्! विक्रमी महात्मा पुरुषोंके लिये यह आश्चर्य नहीं है। मैं आपसे प्यार किया जाता हूं, और यह चाहता हूं, कि आपभी मुझसे सदा-स्थायी प्रीति लाभ कर सकें।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भारत! द्रुपदके ऐसा कहनेपर द्रोणने उनको बन्धनसे मुक्तकर प्रसन्नचित्तसे सत्कार करके राज्यका आधा भाग दिया। द्रुपद गङ्गातटके जनपदोंके सहित माकन्दीदेश और चर्म्मणवती नदीतक दक्षिण पाञ्चालपर अधिकार पाकर सुन्दर काम्पिल्य नगरमें मलिन चित्तसे बसने लगे। अनन्तर द्रोणकी शत्रुता उनसे सही नहीं गयी, उन्होंने क्षत्रियबलसे द्रोणका परास्त करना असम्भव जाना, सो ब्राह्मणके बलसे अपनेको हीन जानकर पुत्र उत्पत्तिकी इच्छासे पृथ्वीके चारो ओर घूमने लगे। इधर द्रोणको अहिच्छत्र नामक राज्य मिल गया। हे राजन्! धनञ्जयने जनपद समेत अहिच्छत्रापुरीको लड़ाईमें जीतकर आचार्य द्रोणको सौंप दिया था।

सम्भवपर्व्वमें एकसौ उनचालीस अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे पृथ्वीनाथ! अनन्तर वर्षभर व्यतीत होनेपर धृतराष्ट्रने धीरता, स्थिरता, सहनशीलता, आनृशंस्यता नौकरों पर दया, और स्थिर मित्रता गुणोंसे सुहावने पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरको युवराजके पदपर बैठाया। कुन्ती कुमारने शीलता, वृत्त और प्रजा समाधानसे पिताकी सुन्दर कीर्तिसेही अपना नाम बढ़ाया। पाण्डुनन्दन वृकोदरको बलदेवजीसे सदा असि, गदा, रथके युद्धके विषयमें अच्छी शिक्षा मिलती थी। द्युमत्सेनके समान बली भीमसेन भली भांति शिक्षित होकर पराक्रमी भाइयोंके परम मित्र

बने रहे। फाल्गुन क्षुरा, नाराच, भाला विपाट आदि सोधे तथा टेढ़े बड़े बड़े अस्त्रोंके चलानेमें और बड़ी दृढ़ता तथा शीघ्रतासे लक्ष्यको विद्ध करनेमें अच्छे समर्थ हुए। द्रोणाचार्य्यने निश्चय किया था, कि शीघ्रता तथा सुनियमके विषयमें विभत्सुके समान जगतमें कोई दूसरा नहीं है। यह समझकर द्रोण कौरवोंकी सभामें गुड़ाकेश अर्ज्जुनसे कहने लगे, कि हे भारत! पूर्व्वकालमें अग्निवेश नामसे प्रसिद्ध मुनि अगस्त्यके शिष्य धनुर्व्वेदमें मेरे गुरु थे; मैंने उन अग्निवेशके शिष्य होकर शिक्षा पायी थी। मैंने तपोबलसे उन गुरुसे जो वज्रसमान ब्रह्मशिर नामक अमोघ अस्त्र पाया था, जो कि सम्पूर्ण पृथ्वोको जला सकता है, उस अस्त्रको किसी दूसरेके हाथमें सौंपकर उसके विरुद्ध न होनेके विषयमें प्रयत्न किया है। गुरुने जब मुझको वह अस्त्र दिया था, तब कहा था, कि "हे भारद्वाज! तुम स्वल्प वीर्य्यवाले जन पर यह अस्त्र मत मारना।" हे वीर! पीछे तुमने मुझसे वह दिव्य अस्त्र पाया है, कोई दूसरा इसके पानेको योग्य नहीं है, पर हे पृथ्वीनाथ! मुनिने जो नियम बना दिया था उनको मत लांघना, हालमें अपने स्वजनोंके सामने मुझको गुरुदक्षिणा दो। उसके अनन्तर उनके वाञ्छित दानको देनेमें अर्ज्जुनके सम्मत होने पर गुरुजी बोले, कि हे अनघ! रणस्थलमें मेरे तुमसे लड़नेको प्रवृत्त होनेसे तुम मेरे विरुद्ध लड़ना। कुरुश्रेष्ठ अर्ज्जुन "तथास्तु" कहके वह बात मानकर उनके पावों पर प्रणाम कर योग्य उपदेशको प्राप्त हुए। समुद्र तक सम्पूर्ण धरतोमें आपही आप वह बात उड़ो, कि इस लोकमें अर्ज्जुनके समान चापधारी कोई वीर नहीं है; चाहे गदायुद्ध वा असियुद्ध कहिये, चाहे रथयुद्ध वा धनुर्य्युद्ध कहिये, हर बातमें धनञ्जय दक्ष बने हैं। सहदेव देवाधिपति इन्द्ररूपी आचार्य्य द्रोणसे सम्पूर्ण नीति शिक्षापाकर नीतिशील होकर भाइयोंके वशमें रहे। नकुल आचार्य्य द्रोणसे अच्छी शिक्षा पाकर चित्र-योधी और अतिरथ करके प्रख्यात और भाइ-योंके प्यारे बने रहे। अर्ज्जुन आदि पाण्डव इतने पराक्रमी हुए, कि उन्होंने उन सौवीरको जिन्होंने गन्धर्व्वोंसे विद्रोह मचाना तुच्छ जान-कर तीन वर्ष यज्ञ किया था, कभी भयभीत नहीं हुए थे, रणशय्या पर सुलाया। वीर्य्यवन्त पाण्डु जिस यवनराजको वशमें नहीं लासके थे, अर्ज्जुनने उसकोभी परास्त किया तथा आज्ञाधीन बनाया। उस सौवीर राज विपुलको जो अति बली होकर कुरुओंसे सदा अहंकार करते थे, धीमान् अर्ज्जुनने गिराया। दत्तामित्र नामक प्रसिद्ध सुमित्र संज्ञायुक्त सौवीर देशी वीरको लड़नेमें कटिबद्ध होने पर अर्ज्जुनने बाणोंसे उसको रोका। अर्ज्जुनने आप एक रथी होने परभी भीमकी सहायसे दश सहस्र रथोंके साथ पूर्व्व देशीय सब राजाओं को परास्त किया और वैसेही रथ पर चढ़कर दक्षिण ओरको परास्त कर कुरुराज्यमें अनेक धन भेजा। मानवोंमें श्रेष्ठ महात्मा पाण्डवोंने पहिले इस प्रकार पराये राज्योंको परास्त कर कर निज राज्यको बढ़ाया था। अनन्तर यह जानकर कि बड़े भारी योद्धे पाण्डवोंका बलवीर्य्य बहुत प्रसिद्ध होगया, उनपर एकायक धृतराष्ट्रका भाव बिगड़ गया; वह बड़े सोचके समुद्रमें डूबे, इससे उन्हें रात्रिको नोद नहीं आतीथी।

सम्भवपर्व्वमें एकसौ चालीस अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि यह सुनकर कि वीर्य्यवन्त पाण्डवलोग बलसे बढ़ और बड़े तेजस्वी हुए हैं, महाराज धृतराष्ट्र दुःखी चित्तसे सोचने लगे। वह राजशास्त्रार्थमें पण्डित मन्त्रज्ञ मुनियोंमें श्रेष्ठ कणिकको बुलवाकर बोले, कि हे द्विजराज! पाण्डवोंको दिनों दिन

बढ़ती देखकर उन पर सुझे द्वेष हो रहा है, सो हे कणिक! उनसे सन्धि वा युद्धके बिना जो कुछ और उचित हो, सो निश्चय करके कहो, मैं उसके अनुसार काम करूंगा। श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि द्विजोत्तम कणिक धृतराष्ट्रसे इस प्रकार पूछे जाकर प्रसन्न चित्तसे राजशास्त्रके प्रमाण सहित तेजभरी बातोंमें कहने लगे, कि महाराज! मैं जो कहता हूं, सुनिये। हे अनघ कुरुश्रेष्ठ! यह सुनकर मुझपर क्रोध न करना। राजाको सदा दण्ड देनेमें उद्यत होकर अपनी बड़ाई फैलाना और स्वयं दोषवर्ज्जित होकर पराये दोषोंको ढूंढ़कर उसके पीछे रहना चाहिये। राजाके सदा दण्ड देनेमें उद्यत रहनेसे लोग उससे बहुत डरते हैं, सो सब काम दण्डहीसे पूराकर लेना। राजा शत्रुकी चूक देखकर उसके पीछे चले, पर शत्रुगण उनकी चूक न देखने पावें। कछुआ जिस प्रकार अपना अङ्ग छुपा लेता है, वैसेही राजा सहायता, साधना और और उपाय आदिसे अपने अङ्गोंको छिपा रखें और ऐसा यत्न करना चाहिये जिस्से शत्रुलोग उनकी चूकके पीछे चलने न पावें। कोई काम आरम्भकर उसको कुछ अंश छोड़ कर पूरा कर लेना कभी उचित नहीं है। देखिये, पूरा न काट डालनेसे कांटेसेभी सदा चोट लग सकती है; इसलिये करनेहारे शत्रुओंको बध करनाही बहुत प्रशंसायोग्य है; यदि वह शत्रु बड़ा विक्रमी और योद्धा हो, तो उसकी विपतके समय आनेसे उस पर चढ़कर नष्ट कर डालना, वा ऐसा करना, कि भागजावे, इस विषयमें भला बुरा न विचारना। ऐ बेटा! शत्रुके दुर्ब्बल होनेसेभी उसको कभी कम न समझना चाहिये; देखिये, थोड़ोसी आग धीरे धीरे आसरा पाकर पूरे वनको जला सकती है। कभी कभी राजाको अन्धे और बहिरेके समान बनना चाहिये, शत्रुओंके दोषको देख करके न देखना और सुनकरकेभी न सुनना चाहिये। तब अपने शरासनको तिनकेसे बना हुआ समझना; पर वनमें सोते हुए, मृग समूहके समान सदा सावधान रहना। आगे शत्रुको अपनी हथेलीके भीतर समझकर साम, दान आदि उपायोंसे मरवा डालना। शरण लो है, समझके उस पर दया दिखानी नहीं चाहिये। स्वाभाविक शत्रुको दान दे करके वशमें लाकरभो मारना, शत्रुके नष्ट होनेसेहो चिन्ता जाती रहती है; क्योंकि मरे हुए जनसे किसी प्रकार भयकी सम्भावना नहीं रहती। यदि कोई पहिले हानिकारी रहकर पीछे मित्रता दिखावे, तो उसकोभी मारना। शत्रुओंके दुर्ग आदिपर चढ़कर ऐश्वर्य्यको, भेदिया लगाके मन्त्रको और बलसे उत्साहको इन तीनोंको नष्ट करना और सहाय, साधन उपाय, देश और कालका विभाग तथा विपत्तिका प्रतिकार इन पांच अङ्गयुक्त नय अर्थात् नियमोंका और भेद, दण्ड, साम, दान, माया, ऐन्द्रजालिक कार्य्य और विपत्तियोंसे किये हुए उन विषयोंको तुच्छ समझना, इस सात प्रकारके राज्याङ्गको सब प्रकारसे नष्टकर डालना। पहिले काल और अकालका विचार न करके शत्रुकी जड़होको काट देना, आगे उसके सहाय और पक्षियोंको नष्ट करना। अवलम्बरूपी जड़के सम्पूर्ण उखड़ जानेसे, इसमें सन्देह नहीं है, कि उसके भरोसेभी रहते हुए, सब मरेंगे, क्योंकि पेड़को जड़ कटनेसे उसकी शाखा कभी बनी नहीं रह सकतीं। राजा! शत्रुसे निश्चिन्त न रहकर छिप छिपके सदा उसके दोष ढूंढ़नेमें चित्तको नियुक्तकर राज्य करना चाहिये। अग्निसे तपके, यज्ञकरके, ब्रह्मको छाल पहिनकर और जटा अजिन धरकेभी पहिले शत्रुओंमें विश्वास उपजाकर पीछे समय होने पर व्याघ्रके समान चढ़ जाना, क्योंकि कहा है, कि धन बटोरनेमें

कुटिल होना बहुतही शुद्ध उपाय है। जिस प्रकार फलयुक्त शाखाको हिलाकर पक्के फल चुन लिये जाते हैं, वैसेही चुन चुन कर शत्रुओंको नष्ट करना; शत्रुओंके नाशके लिये पण्डितलोग ऐसाही किया करते हैं। जबतक समय न आवे तबतक शत्रुको कन्धे पर चढ़ाये रहना, आगे समय आने पर पत्थर पर कलसेकी फोड़नेकी भांति नष्ट करना। हानि करने वाले शत्रुके अति कातर वाणी कहने परभी उसको मत छोड़ना, एकबारगी मार डालना, उसपर दया दिखानी कभी उचित नहीं है। शान्ति बनाये रखनेके लिये साम वा दान अथवा भेद वा दण्ड, चाहे जिस किसी उपायसे हो शत्रुको नष्ट करना।

धृतराष्ट्रने कहा, कि मुझको समझाके कहो, कि साम, दान, भेद अथवा दण्डसे क्योंकर शत्रु नष्ट किये जा सकते हैं। कणिक बोले, कि हे महाराज! पहिले वनमें नीति शास्त्र जानने वाला एक सियार रहता था; उसकी कथा कहता हूं, सुनिये।

स्वार्थमें तेज बुद्धिवाला एक सियार बाघ, मूसा, चीता, और नेवल इन चार मित्रोंके साथ बसता था। उन सबोंने वनमें एक बड़ी मृग-दलपतिको देखा और ऊपर चढ़नेमें असमर्थ होकर नाना परामर्श करने लगे। पहिले सियार बोला कि, ऐ बाघ! आपने इस मृगको मारनेको कई बार यत्न किया है, पर यह मृग-नाथ बड़ा वेगवान और बुद्धिमान है, सो आप सफल मनोरथ नहीं हो सके हैं, अतएव मैं समझता हूं कि, वह मृग जब सोता रहेगा, तब मूष जाकर उसके पांवोंको खालेगा; उसके पांव खाये जानेपर, उस चलनेमें अशक्त मृगको बाघजी पकड़ लेंगे; अनन्तर हम सब आनन्दसे उसको खायेंगे। सियारकी यह बात सुनकर वे सब उनके अनुसार सावधान होकर काम करने लगे। पहिले मूषने मृगके पांव खालिये; उसके पीछे बाघने उस मृगको वध किया। तब सियारने उस मृगकी देहको धरती पर लोटते देखकर सबोंसे कहा कि तुमलोगोंका मङ्गल होवे, तुम नहा आओ, मैं मृगदेह की रक्षा करता हूं। बाघादि सब सियारकी बातके अनुसार नहानेको नदीमें गये; सियार बड़े सोचसे वहां बैठा रहा। अनन्तर सबसे पहिले महाबली बाघ नहा कर वहां आया और देखा कि सियार बड़े सोचके साथ वहां बैठा है। बाघने तब उससे पूछा, कि ऐ बड़े बुद्धिमान्! तुम हमसे सबोंसे अधिक बुद्धि रखतेहो, फिर क्यों सोचमें हो, आओ हम अब अब मांस खाकर आनन्द लूटें। सियार बोला, कि ऐ महाभुज! आज मूषने जो बात कही है, वह सुनिये! "मूषने कहा है, कि आज मैंनेही इस मृगको मारा है, सो बाघके बल पर धिक्कार है; कि वह मेरे भुजबलसे आज तृप्त होगी। मूषके ललकारके ऐसा कहने पर इसे खानेको मेरा मन नहीं चलता है।" बाघ बोला, कि मूषके ऐसी बात कहने पर अब मुझको चेतना आगयी, आजसे अपने हाथके बलसे वनके जानवारोंको मारूंगा; और वही मांस खाऊंगा, यह कहकर वनमें चला गया। ऐसे समयमें मूष वहां आ पहुंचा। सियार मूषको आया हुआ देखकर बोला, कि ऐ मूष! तुम्हारा भलाही सुनो। आज नेउरने यह कहा है, कि यह मृग बाघसे मारे जानेके कारण इसका मांस विषके समान पचानेके अयोग्य होगा, सो मैं इसे न खाऊंगा; मेरी इस पर चाह दौड़ती हो नहीं है, सो आज्ञा करिये, कि मैं मूषकी खाजाऊं। यह सुनकर मूष वेगपूर्वक वहांसे गड़हेमें जा घुसा। हे नृप! अनन्तर चीता नहा कर वहां आपहुंचा। तब सियार उसको आया हुआ देखकर बोला, कि आज बाघ तुम पर अप्रसन्न हुआ है, उससे यह समझ नहीं

पड़ती, कि तुम्हें भलाई होगी; वह स्त्रीके साथ यह आरहा है। मांस भक्षक चीता सियारकी यह बात सुन करकेहो अपनी जातिके स्वभावके अनुसार देहको सिकोड़कर भागा। हे महाराज! उसके पीछे नेउरके वहां आने पर सियार उससे बोला, कि मैंने अपने हाथोंके बलसे बाघ, वृक आदिको परास्त किया है, वे और जगहको भाग गये हैं, अब तुम मुझसे लड़कर मनमाना मांस खाओ। नेउल बोला, कि जब बाघ वृक, और बुद्धिमान मूष यह सब वीर तुमसे हार कर भाग गये, तब तुम बड़े वीर हो, सो तुमसे लड़नेका मुझमें साहस नहीं है। यह कहकर नेउल भागा। इस प्रकार बाघादि सबोंके वहांसे चले जाने पर सियारने अपनी युक्ति पूरी होनेपर प्रसन्नचित्त होके अकेले मांस खाया। भूपाल लोग सदा ऐसा व्यवहार करनेसे सुखीहो सकते हैं। इस प्रकार भीत जनको डराकर वीरसे हाथ जोड़कर लोभीको धन देकर, बराबर और हीनको तेजी दिखाकर वशमें लाना। महाराज! यह सब आपसे कह चुके औरभी कुछ कहता हूं, सुनिये।

पुत्र, मित्र, भाई, पिता, वा गुरु यदि शत्रुता करें, तो हित चाहनेवालेको उन्हेंभी नष्ट करना उचित है। शपथ करके वा धन दानसे अथवा विष देकर मायाका जाल फैला कर शत्रुके नष्ट करनेमें कभी मत चूकना। दो विपक्षी आपसमें सहाय साधनोपाय आदिके हेतु शङ्का-युक्त होनेसे, जो जन श्रद्धा सहित मुझसे कही हुई नीतिके अनुसार काम करेगा उसीका सौभाग्य बढ़ेगा। यदि बड़ा और मान्य-पुरुषभी कर्त्तव्य और अकर्त्तव्यको न जानता हो, कुमार्गगामी और अहङ्कारी हो तो उसेभी दण्ड देना उचित है। क्रोध होनेसेभी क्रोध न होनेका ऐसा चेहरा दिखा करके हंसकर बात करना और क्रोधित होने परभी कभी लाञ्छन मत करना। मारनेके पहिले और मारनेके कालमेंभी मीठी बातें कहना, मारकर अन्तमें कृपा दिखानी शोक प्रगट करना और रोभी देना। शत्रुको बहुकाल, सान्त्वना वाक्य, दान और सरलतासे ढाड़स देवे, इस परभी यदि वह न्यायके मार्गसे विरुद्ध चले तो उसको मारना। किसीके बड़ा अपराध करने परभी वह धर्म्मका आश्रय ले, तो काले बादलसे ढंपे हुए पर्वतके सदृश उसका वह दोष छिप जाता है। जो राजाके दण्डसे मारा जावे, उसका घर जला देना और जो मनुष्य बुरी रीतिसे धना-र्जन करते हैं, उनको और नास्तिक तथा चोरोंको राज्यमें न बसने देना। शत्रुको प्रत्यु-त्थान, आसन आदि युद्धके अङ्ग अथवा विषादि दान चाहे जिस किसी उपायसे हो बड़े निठुर और डुबोनेवाला बनकर मरवा डालना अर्थात् ऐसो मार मारना, कि वह फिर न उठ सके और उस-बधके विषयमें सन्देह न रहे। शङ्का देने योग्य हो वा न हो सब जनसे डरते रहना; क्योंकि किसीसे निर्भय बने रहनेसे पीछे उससे भय आजावे तो जड़से उखड़नेका बड़ी सम्भावना होती है। अवि-श्वासी जनका विश्वास मत करना, और विश्वासी हो वे तोभी उसपर पूरा विश्वास करना उचित नहीं, क्योंकि विश्वासीजन से भय आजानेसे जड़से नष्ट होना पड़ता है। दूतलोगोंका भली भांति परीक्षा करके निज राज्य और पराये राज्य में नियुक्त रखना। पराये राज्यमें पाखण्डी तपस्वी आदिहीको भरती करना। फुलवाड़ी, घूमनेका स्थान देवमन्दिर, पानघर, पथ, मार्ग स्थान, कूप, पर्व्वत, बन, नदी और सब प्रकारके मनुष्य बटोरनेका स्थान, इन स्थानोंमें, और मन्त्री, पुरोहित, युवराज, भूपाल, द्वारपाल, शिक्षक, कारागार रखवारे, चीज वस्तु बटोरने वाले, भले बुरे कामोंके ठहरानेवाले, नगरके स्वामी,

काम बनानेहारे, धर्म्मस्वामी, सभापति, दण्डपाल, दुर्गपाल, अस्त्रपाल, राज्यके छोररक्षक, और सेनापति, इन अठारहके पास गुप्त दूत नियुक्त कर भले बुरे कामको देखना। सदा बातोंमें नम्र और हृदयमें छुरा रखना और अति कठोर काम करनेमें प्रवृत्त होकरकेभी हंसते हुए सम्भाषण करना। जो ऐश्वर्य्य चाहेंगे उनको हाथ जोड़ना, शपथ करना, खुसामद, पैरों पड़ना, आशा देना इन कामोंका करना उचित है। नीतियुक्तजनरूपी पौधेका आशा दाना.दिरूपी सुन्दर फूलयुक्त पर बिलकुल फलसे खाली होना चाहिये। फलयुक्त जान पड़नेसेभी चढ़नेके अयोग्य होना चाहिये, पक्के समान होनेपरभी बिन पक्केकी नाईं जान पड़ना चाहिये; ऐसा होनेसे कभी वह टूटेगा नहीं। धर्म्म, अर्थ और काम यह तीन वर्ग तीन प्रकारकी पीड़ा और तीन प्रकारके फल हैं, तिनमें फलोंको शुभ जानना और पीड़ाओंको त्याग देना। देखिये धर्म्म करनेमें बड़े अभिलाषीजन अर्थ और कामको पीड़ासे बहुत सताये जाते हैं; अर्थमें बड़े आसक्तजन धर्म्म और कामको पीड़ासे पोसे जाते हैं और काममें बहुत लगे जनकोभी धर्म्म और अर्थको पीड़ा सताती रहती है, सो ऐसे धर्म्मार्थ काम करना, कि पीड़ादायी न होवें। अहङ्कारसे खाली, नियमयुक्त, शान्तिपूर्ण, ईर्षवर्ज्जित, कार्य्य देनेहारे और शुद्धात्मा होकर ब्राह्मणोंके साथ परामर्श करना। जब आप बुरी दशामें आजावे सहज वा कठिन चाहे जिस किसी उपायसे हो अपनेको बचाना, आगे समर्थ होनेपर धर्म्माचरण करना। मनुष्य बिना संशयमें पड़े मङ्गल लाभ नहीं कर सकता है, पर शङ्कायुक्त होकर जीता रहै, तो बड़ा सौभाग्यवान हो सकता है, जिसकी बुद्धि शोकादिसे घेरी जाती है, उसको नलोपाख्यान आदि पुरानी कहानी सुनाकर और बुरोतिवाले जनको समान आशा देकर, कि कुछ काल बीतनेपर तुम्हारा मङ्गल होगा और पण्डितको सन्तोष देनेवाले वर्त्तमान कामसे समझाना। जो जन शत्रुसे सन्धि करके सफल मनोरथके समान निश्चिन्त हो सो रहता है, वह ऐसे जनकी नाईं विपतमें पड़कर चेतता है, कि जो वृक्षपर सोता हुआ नीचे गिर जाकर जग उठता है। राजाको असूयासे रहित होकर सदा परामर्श छुपानेका प्रयत्न करना और स्वयं चौकस होकर विपक्षियोंके भेजे हुए छिपे दूतोंको आशङ्कासे सदा भय और क्रोध आदिको रोके रहना चाहिये। मछुहा जिसप्रकार हिंसा न करके धन नहीं पा सकता है, वैसेही राजा कठोर कर्म्म और शत्रुका मर्म्म बिना नाश किये सौभाग्यवान् नहीं हो सकते। शत्रुको मद्यकर व्याधि औ क्लेश देकर अन्नपान छुड़ाकर उसके बलको ऐसा नाश करे, जिसमें तनिकभो सन्देह न रह जाय। अर्थ चाहनेवालेके मित्रताकी सम्भावना नहीं है, इस लिये अर्थवान लोग अर्थ चाहने वालेसे नहीं मिलते। सो शत्रुके वशमें लानेके लिये यथोचित सम्पूर्ण कार्य्य पूरा करना, कुछ बाकी मत रखना। ऐश्वर्य्य चाहनेवाले महीपालको असूया छोड़कर सहाय साधनोपाय आदि बटोर करके बिगाड़का प्रयत्न और यत्नके साथ उसमें उत्साह करना चाहिये। नीतियुक्त जन ऐसे करें, कि उनको कोईभो चाहे मित्र वा शत्रुही पहिले समझने न पावें, पर जब काम हाथ लगे वा पूरा होजावे देखलें। जब तक भय न आन पड़े, तब तक भीतजनके समान भयसे बचनेका उपाय सोचता रहै, पर भय आजाने पर निर्भय सा बनकर मारना उचित है। दण्डसे वशमें आये शत्रु पर जो कृपा करता है, वह खचरीके गर्भ धारणकी नाईं अपनी मृत्युको आपही बुलाता है। अनागत कार्य्यको उपस्थित जानकर उचित विषयोंको करना,

नहीं तो एकायक उपस्थित कामके समय बुद्धि नष्ट होनेसे कोई प्रयोजनीय कार्य्य बिगड़ सकता हैं। ऐश्वर्य्य चाहनेवाले भूपालको देशकालका विभाग कर यत्नके सहित उत्साह करना चाहिये और दैवी कर्म्म, धर्म्म, अर्थ काम यह सबभी देशकालके विभाग करके करने पड़ेंगे; क्योंकि ऐसा सिद्धान्त है, कि देश और काल यह दो बड़े हितके देने वाले हैं, शत्रुके तुच्छ होने पर उसको तुच्छ समझनेसे वह ताड़की नाईं धीरे धीरे जड़ फैलाता है और बनमें गिरी हुई आगको नाई स्वल्प कालहीके बीचमें बहुत फैल जाता है इस प्रकार थोड़ी आगको बढ़ानेसे वह आग बड़ी बड़ी वस्तुओंको जला सकती है, तैसेही जो अपनेको सहायादिसे बढ़ाता है, वह बढ़कर अपने बिपक्षियोंके बहुत बड़े होने परभी स्वल्प कालमें उन्हें उखाड़ देता है। शत्रुको ऐसी आशा देनी, कि वह बहुत दिनमें पूरी हो सके, आगे उस कालके आने पर कोई रुकावटका बहनाकर उसको चुपकर देना। उस रुकावटकाभी कोई हेतु दर्शाना और उस हेतुकाभी दूसरा एक हेतु दिखाकर उसको दबाये रहे। नीति जाननेवाले भूपको चमकीले म्यानसे ढके हुए और लोमहारी उचित समय पर काम निबटानेवाले अस्तुरेकी भांति होकर अर्थात् निर्द्दय गुप्ताशय, विरुद्धजन संहारी और कालापेक्षी होकर शत्रुओंका प्राणान्त करना चाहिये। अतएव हे कुरुकुल भूषण! पाण्डव वा दूसरोंपर न्यायके अनुसार व्यवहार कर ऐसा काम करिये, कि पश्चात्तापमें डूबना न हो। हे नराधिप! मुझे यह निश्चय समझ है, कि आप धन पुत्रादि सर्व्व मङ्गलयुक्त और विशेष जानकार हैं, इसलिये पाण्डोवोंसे अपनी रक्षा करिये। हे शत्रुनाशि नरनाथ! क्योंकि पाण्डवलोग भाइओंसे बड़े बलवन्त होगये हैं। सो जैसा उचित है, स्पष्टरूपसे कह दिया, आप पुत्रके साथ वह सुनकर उचित विषयमें ऐसा प्रयत्न करिये, कि पाण्डवोंसे भय न रहे और पश्चात्ताप न हो, ऐसेही नीतिके पथपर चलिये। कणिक ऐसा कहकर अपने घर पधारे, और कुरु नन्दन धृतराष्ट्र उसे सुनकर शोकयुक्त हुए।

एकसौ एकतालीस अध्यायका सम्भवपर्व्व समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले कि, अनन्तर सुबलपुत्र शकुनि, राजा दुर्य्योधन, दुःशासन और कर्णने एकत्र होकर एक बुरा परामर्श किया! उन्होंने कौरवी राजा धृतराष्ट्रकी आज्ञा लेकर पुत्र सहित कुन्तीको जला देना निश्चय किया। उन दुष्टात्माओंका इशारा और अभिप्राय समझनेवाले तत्त्वदर्शी निर्द्दय आंखोंकी सैन आदि चिह्नोंसे उस परामर्शको समझ गये। पाण्डवोंके हितैषी सम्पूर्ण जानने योग्य विषयोंके विशेष जाचकार पापकी कूतसे खाली विदुरने यह समझा, कि पुत्रोंके सहितकुन्तीको भागना ही चाहिये। आगे हवाकी तेजी सहने योग्य, लहरोंमें न डूबनेवाली, यन्त्र लगी हुई, मजबूत और भण्डा फहराती हुई एक नाव बना कर कुन्तीसे बोले, कि ऐ शुभे! धृतराष्ट्र इस कुलकी कीर्त्ति और सन्तानको नाशने वाले बने हैं। वह उलटी बुद्धिसे शाश्वत धर्म्मको बिसार रहे हैं। चाहे जो कुछ हो, मैंने लहर और हवाके वेगको सहनेवाली यह नाव बना कर जलमें छोड़ दी है; इससे तुम पुत्रोंके साथ मौतके जालसे बच सकोगी।

हे भरतश्रेष्ठ यशस्विनी कुन्ती वह बात सुनकर पीड़ित चित्तसे पुत्रोंके साथ नाव पर चढ़ कर गङ्गाजीमें गईथी। पाण्डव लोग विदुरकी बातसे नाव छोड़ कर दुर्य्योधनादिका दिया हुआ धन लेकरके बिना विघ्न बनको गये थे। इधर एक बहेलिन किसी कारणसे पांच बेटोंके सङ्ग उसही जतुगृहमें आके सोरही थी, जो पाण्डवोंके जलानेको बनाया गया था।

वह विचारी निर्दोष होने परभी पुत्रोंके सहित भस्म होगई और वह म्लेच्छसे भी अधम पापात्मा पुरोचन भी जो जलानेके लिये नियुक्त हुआ था, जल भुन कर भस्म होगया, सो धृतराष्ट्र पुत्रोंका अभीष्ट पूरा न होनेसे वे साथियोंके द्वारा ठगे गये। वहां वाले सब लोग यह न जान कर, कि महात्मा पाण्डव लोग माताके साथ विदुरके परामर्श से बचाये थे; वारणावतनगरके लोग जतुगृहको जलते देख-करके दुःखितचित्तसे शोक प्रगट करने लगे और उस वृत्तान्तसे जो,कि जाना गया था धृतराष्ट्रको ज्ञात करनेके लिये यह कह भेजा, कि हे कौरव! आपकी बड़ी इच्छा पूरी भई। आपने पाण्डवोंको जला मारा है, अब अपनी आशा मिटावें—पुत्रके साथ राज्य भोगें। यह सुनकर धृतराष्ट्र, कुरुश्रेष्ठ भीष्म, विदुर, और धृतराष्ट्रके बेटोंने बान्धवोंके साथ शोक करते हुए पाण्डवोंको प्रेत क्रिया कर डाली।

जनमेजय बोले, कि हे द्विज श्रेष्ठ! जतु-गृहके जलने और पाण्डवोंके बचनेके वृत्तान्तको विस्तारसे फिर सुना चाहता हूं। कुटिल जनके उपदेशसे उन्होंने जिस प्रकारसे उस कठोर निठुर कार्य्यको किया था, वह कहें; सुननेकी मेरी बड़ी इच्छा होरही है। श्रीवैश-म्पायनजी बोले, कि हे शत्रुनाशी भूपाल! जतुगृहके जलने और पाण्डवोंके बचनेकी कथा मैं विस्तारसे कहता हूं, सुनिये। कुमति दुर्य्योधन भीमको अति बलवन्त और धन-ञ्जयको कृतविद्य देखकर अपार सन्तापसे जलने लगा। आगे सूर्य्यपुत्र और सुबलकुमार शकुनि नाना उपायोंसे पाण्डवोंके प्राण लेनेकी चेष्टा करने लगे। जब जो विपत आपड़ती थी, पाण्डव लोगभी उससे बचनेका उपाय कर-लेते थे; पर विदुरके मतसे उसको फिर प्रकट नहीं करते थे। हे भारत! पुरवासी लोग पाण्डवोंको नाना गुणोंसे अलंकृत देखकर सब समाजोंमें उनके गुण गाने लगे। और सब मनुष्य सभामें और चबूतरों पर मिलकर पाण्डुके ज्येष्ठपुत्र युधिष्ठिरको राज्य पानेकी योग्यताके विषयमें कोलाहल मचाने लगे, और कहने लगे, कि प्रज्ञाचक्षु जननाथ धृतराष्ट्रने अन्धे होनेसे पहिले राज्य प्राप्त नहीं किया था, अब वह क्योंकर राजा होगये? और सत्यशील महाव्रत शान्तनुकुमार भीष्मने पहिले राज्य त्याग दिया था; वह फिर उसको नहीं लेंगे,अतएव आज हम लोग तरुण बयवाले रणप्यारे और भेदके जानकार पाण्डुरत्न युधि-ष्ठिरको भली प्रकार राज्यमें बैठावें। वह धर्म्मात्मा युधिष्ठिर शान्तनुनन्दन भीष्म और पुत्रोंके सहित धृतराष्ट्रको अवश्य पूजा कर भोगनेकी नाना वस्तु देवेंगे। अनन्तर युधि-ष्ठिरके बारे में प्रजाओंकी यह सब बात सुनकर दुर्य्योधन कुमतिसे बड़ा सन्तापित हुआ। वह दुष्टात्मा सन्तापयुक्त उनकी बात सह नहीं सका, सो द्वेषके मारे जलकर धृतराष्ट्रके पास गया। अनन्तर पिताको निरालेमें पाकर उचित नियमसे प्रणामकर दुःखी चित्तसे युधि-ष्ठिर पर पुरवासियोंके प्रेमके हेतु अनुचित चित्तसे कहने लगा कि, पिता! मैंने आन्दो-लन करनेवाले पुरवासियोंसे अशुभ बातें सुनी हैं! पुरवालोंने आपका और भीष्मका अना-दरकर पाण्डवको अधीश बनानेकी कल्पना की है; इसमें भीष्मका भी मत होगा, क्योंकि वह स्वयं राज्य भोगकी इच्छा नहीं रखते; पर पुरवासी लोग केवल हम सबोंहीको मर्म्म पीड़ा देनेमें उद्यत हुए हैं, पहिले राजा पाण्डुने अपने गुणहीसे राज्य प्राप्त किया था, यद्यपि आप ज्येष्ठतासे राज्याधिकारी होनेके सुयोग्य थे, पर अन्धताके हेतु राज्य पा नहीं सके; अब यदि उन पाण्डुका पुत्र उत्तराधिकारी होकर राज्य पावे, तो भविष्यतमें उसका पुत्र अवश्यही अधिकारी होगा और उसी प्रकार

सिलसिलेवार उनके वंशवाले राजा हुआ करेंगे। हे जगपति! ऐसा होनेसे हम सबोंकी पीढ़ीके क्रमसे राजवंशियोंमें न गिने जाकर सबोंके अनादरके साथ जीना पड़ेगा। अतएव हे महाराज! ऐसी कोई अच्छी नीति ठहरावें, कि हम सबोंको पराई कृपापर पेट पालना न पड़े। हे नरनाथ! पहिले यदि आप राज्यकी प्राप्ति करते, तो प्रजाओंके वशमें न रहनेसेभी हमारी राज्यप्राप्तिमें कोई सन्देह नहीं रहता।

जतुगृहपर्व्वमें एकसौ इयालीस अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि प्रज्ञानेत्र, महीपाल धृतराष्ट्र पुत्रकी ऐसी बातें सुन और कणिकसे जो कथा सुनी थी, पूरी पूरी उसे यादकर चित्तमें दुविधा करने लगे और शोकयुक्त हुए। आगे दुर्य्योधनने कर्ण, शकुनि, और दुःशासन, इन तीनोंसे सहमत होकर युक्तिपूर्व्वक राजा धृतराष्ट्रसे कहा, कि आप किसी चतुर उपायसे पाण्डवोंको वारणावतमें खदेड़ दीजिये, ऐसा करनेसे उनसे हमको फिर कोई भय नहीं रहेगा। पुत्रकी बात सुनकर उन्होंने क्षणभर चिन्ता की, पीछे बोले कि धर्म्मशील, पांडु सम्पूर्ण ज्ञातियोंसे विशेष सुझसे सदा धर्म्म अनुसार व्यवहार किया करते थे; उनको भोजन वस्त्र किसी विषयमें चाह नहीं थी। वह सदा व्रतधारी होकर मेरे हाथ सब राज्य सौंप दिये रहते थे। अब उनके पुत्र भी उनके समान धर्म्मशील गुणवन्त भूमण्डलमें प्रसिद्ध और पुरवासियोंके प्यारे हुए हैं, सो उस पाण्डुनन्दनको हम क्यों कर पैत्रिक राज्यसे खदेड़ सकते हैं? विशेष वह सहाय वञ्चित नहीं हैं; महाराजा पाण्डु मन्त्रियोंको सेनाको और उनके बेटे पोतोंको सदा पालते पोषते थे; ऐ बेटा! जब नगरके सब लोग पाण्डुसे सत्कृत हुए हैं, तब उनके पुत्र युधिष्ठिरके लिये वे क्यों हमको और हमारे बान्धवोंको न बिगाड़ेंगे? दुर्य्योधन बोले, कि हे पिता! आपकी बात ठीक तो है, पर मेरे आपके वर्त्तमान अहितको सोचकर सब प्रजाओंको धनमानसे पूजित करनेसे, वे हमारे बड़पनके लिये अवश्यही सहाय होंगी, क्योंकि हालमें धनकोष और मन्त्रीवर्ग हमारेही हाथमें हैं। अतएव हे पृथ्वीनाथ! आप किसी कोमल उपायहीसे शीघ्र पाण्डवोंको वारणावतमें भेजिये। हे राजन् जब कुछकाल पीछे राज्य मेरे हाथ लगेगा, तब पाण्डवगण कुन्तीके साथ फिर यहां लौटेंगे। धृतराष्ट्र बोले, कि हे दुर्य्योधन! तुमने जो बात कही मैंभी चित्तमें उसका तर्क उठाये रहता हूं, पर इसे पाप अभिप्राय जानकर प्रकाश नहीं करता। भीष्म, द्रोण, कृप, विदुर इनमें कोईभी कदापि सम्मत नहीं होंगे, कि पाण्डवगण खदेड़े जायं। बेटा! कुरुवंशियोंमें हम और पाण्डव दोनों समान हैं, इसमें सन्देह नहीं है; सो वे महानुभाव लोग कभी दोनों पक्षोंमें किसीको घट बढ़ करना नहीं चाहेंगे! सुतरां पाण्डवोंको भगाकर हम कौरवोंसे, उन महात्माओंसे यहां तक कि निःसन्देह पृथ्वीभरके लोगोंसे वध किये जानेके योग्य होंगे।

दुर्य्योधन बोले, कि भीष्म हम दोनों पक्षोंको समान स्नेह करते हैं। द्रोणके पुत्र अश्वत्थामा मेरेही पक्षमें हैं, सो इसमें सन्देह नहीं है, कि आचार्य्य द्रोणको इसीपक्षमें रहना पड़ेगा, जिस पक्षमें उनके पुत्र हैं; और जिस पक्षमें यह पिता पुत्र दोनों रहेंगे, शारद्वत कृपभी अवश्य उसी पक्षमें रहेंगे; क्योंकि वह कभी भाञ्जा और द्रोणको नहीं छोड़ सकेंगे। विदुर हमारे अर्थसे आबद्ध हैं, और छिपकर पाण्डवोंसे मिलभी जावें, तो वह अकेले पाण्डवोंके पक्षमें होकर हमारी कोई हानि नहीं कर सकेंगे; अतएव आप निशङ्क चित्तसे

पाण्डवोंको उनकी माताके सहित यहांसे दूर करिये। ऐसा प्रयत्न कीजिये, कि वे आजही वारणावतमें जायं ; निद्रानाशी शोकाग्नि मानों कठोर शूलोको भांति मेरे हृदयमें गड़ गया है, आप यह कामकर उसको निकाल लीजिये ।

जतुगृहपर्व्वमें एकसौ तैंतालिस अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर राजा दुर्य्योधन अपने छोटे भाइयोंसे मिलकर सम्मान और धन देकर क्रमशः प्रजावर्गको वशमें लाये। कई एक कार्य्यदक्ष मन्त्री धृतराष्ट्रकी आज्ञासे वारणावत नगरकी सुन्दरता कह कह यह प्रशंसा करने लगे, कि हालमें वारणावतमें बहुत सुन्दर पशुपतिका महोत्सव आ गया है,उस उत्सवका समाज नाना रत्नोंसे भर जायगा, उस नगरको देखतेही उसपर हर मनुष्यका चित्त झुक जाता है। हे नरनाथ! वारणावत नगरको सुन्दरता इस प्रकार कही जानेपर वहां जानेके लिये पाण्डवलोगोंका मन दौड़ा। अम्बिकापुत्र राजा धृतराष्ट्रने जब समझा, कि वारणावत नगरको देखनेको पाण्डवोंका मन चला है, तब उनसे बोले, कि पुत्रो! यह सब लोग मुझसे बार बार कहा करते हैं, कि भूमण्डलमें वारणावत नगर बड़ा सुन्दर है, तुम वहां उत्सव देखना चाहो, तो परिवार और साथियों समेत वहां जाकर देवोंकी भांति आनन्द लूटो और गवैयों और ब्राह्मणोंको मनमाना धन रत्नादि देते रहो। इस प्रकारसे परम तेजस्वी सुरोंके समान कुछकाल विहारकर अच्छी प्रीति लाभ करो और अन्तको कुशलसे इस हस्तिनापुरमें लौट आना। युधिष्ठिरने धृतराष्ट्रका अभिप्राय समझकर और अपनेको असहाय जानकर उनको यह उत्तर दिया, कि आप जैसी आज्ञा करते हैं, वही होगा। अनन्तर उन्होंने शान्तनुपुत्र भीष्म,महामति विदुर, द्रोण, वाह्लीक, कौरव सोमदत्त, कृप, आचार्य्यके पुत्र अश्वत्थामा, भूरिश्रवा और दूसरे माननीय जनों और मन्त्रियों, ब्राह्मणों, तपोधनों, पुरोहितों, पुरवासियों और यशस्विनी गान्धारीसे दीनतापूर्व्वक कोमल भावसे कहा, कि हम राजा धृतराष्ट्रकी आज्ञासे साथियों समेत जनोंसे भरे अति सुन्दर वारणावत नगरमें जायंगे ; आप प्रसन्नचित्तसे पुण्य वचन कहिये, कि आपके अशीस से हम बुद्धिको प्राप्तकर पापयुक्त न होवें ! सम्पूर्ण कौरव युधिष्ठिरकी यह बात सुनकर पाण्डवोंकी इच्छानुरूप यह बोले, कि पथमें सर्व्वभूतोंसे सदा तुमलोगोंका मङ्गल होवे। हे पाण्डवो! तुमपर कोई अहित न होने पावे। अनन्तर पाण्डव स्वस्त्ययन करके राज्य लाभके लिये सम्पूर्ण कर्त्तव्य कर्म्मोंको पूराकर वारणावत नगरकी यात्राके लिये प्रस्तुत होने लगे।

जतुगृहपर्व्वमें एकसौ चौवालिस अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भारत! राजा धृतराष्ट्रके पाण्डवोंको ऐसी आज्ञा देनेपर दुरात्मा दुर्य्योधनको हर्ष हुआ। आगे पुरोचन नामक मन्त्रीको निरालेमें बुलाकर उसका दहिना हाथ थाम करके बोला, कि पुरोचन ! यह धन भरी धरती मेरे वशमें है, इसपर मेरा जितना अधिकार है, तुम्हारा भी उतनाही है, सो तुमको उसकी रक्षा करनी चाहिये ; देखो, तुमसे अधिक विश्वासी सहायक मेरा कोई दूसरा नहीं है, कि जिससे मिलकर ऐसा परामर्श करूं, जैसा तुमसे कर सकता हूं ; सो तुम इस परामर्शको भले प्रकार छुपाकर मेरे शत्रुको नष्ट कर डालो। मैं जो कुछ कहता हूं, वह कौशलयुक्त अच्छे उपायोंसे पूरा करो। राजा धृतराष्ट्रने पाण्डवोंको वारणावत नगरमें जानेकी आज्ञा दी है, वे धृतराष्ट्रकी आज्ञासे पाशुपत उत्सवमें वहां विराजेंगे ; अतएव तुम ऐसा

करो, कि आजही खच्चरयुक्त शीघ्रगामी रथ पर वारणावतमें जासको! वहां जाकर नगर के छोरमें अनेक अर्थ खर्च कर भली प्रकार घेरा हुआ एक चौपाल घर बनवाओ; सन, धूपआदि जितनी आग बालनेवाली वस्तु हैं, उनसेही वह घर बनवाना; आगे घृत, तेल, चर्बी और अधिक लाहके साथ कुछ मिट्टी मिलाकर उसकी भीतोंको पोतवा रखना; और सन, तेल, घृत, लाह और लकड़ी यह सब वस्तु उस घरमें हर स्थानमें गिरा रखना। पर ऐसा करना, कि पाण्डवलोग वा कोई दूसरे विशेष परीक्षासे यह समझ न पावें, कि वह गृह आगसे जलनेवाला है। इस प्रकार गृह बनवा करके पाण्डवों और मित्रोंके साथ कुन्तीको आदरपूर्वक वहां पाण्डवोंके लिये सुन्दर शय्या, आसन और यान इस प्रकार बनवा रखना, कि पिता सन्तुष्ट होवें। और यह करना, कि वारणावत नगरका कोई भी मनुष्य इस विषयमें कुछ जानने न पावे। आगे ठीक समय आनेपर अर्थात पाण्डवोंको उस गृहमें अच्छे विश्वास पूर्व्वक सोते और निःशङ्क होते देखने पर उस गृहके द्वारमें आग लगाना; इसमें सन्देह नहीं, कि उससे पाण्डव जल मरेंगे। अनन्तर प्रजा समझेंगी, कि पाण्डव उनके घरमें आग लगनेहीसे जल मरे; सो पाण्डवोंके लिये वह कभी हमारी निन्दा नहीं कर सकेगी। पुरोचन दुर्य्योधनसे उस बातकी प्रतिज्ञा कर उच्छे अच्छे खच्चरयुक्त शीघ्रगामी रथ पर चला। हे राजन्! पुरोचन दुर्य्योधनकी आज्ञासे शीघ्रतापूर्व्वक वारणावतमें पहुंचकर राजकुमार दुर्य्योधनके कहे हुए सब काम पूरा करने लगा।

जतुगृह पर्व्वमें एकसौ पैंतालिस अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर व्रतशील पाण्डव लोग कुछ रथोंमें पवन समान वेगवान् अच्छे अच्छे घोड़े जोतकर चढ़नेको कातर होकर भीष्म, राजा धृतराष्ट्र, महात्मा द्रोण, विदुर, कृप दूसरे बड़ोंके पांव छूने लगे; इस प्रकार अपनेसे बड़े सब कौरवोंको प्रणाम किया और अपने जोड़ियोंको गलेसे लगाया। आगे बालकोंका प्रणाम लेकर सब मातायोंकी आज्ञासे और उनको सम्भाषण पूर्व्वक वारणावत नगरको चले। महाप्राज्ञ विदुर तथा दूसरे कौरवोंमें प्रधान लोग और पुरवासीवृन्द शोकाकुल होकर पुरुषोंमें व्याघ्ररूपी पाण्डवोंके पीछे पीछे चले। उनमेंसे कुछ पुरवासी और जनपदवासी पाण्डवोंके चित्तको मलिन देखकर अति दुःखसे कहने लगे, कि कुरुवंशी राजा धृतराष्ट्र दुष्टबुद्धिवश सब प्रकारसे पक्षपात कर रहे हैं; वह एकबार भी धर्म्मकी ओर दृष्टि नहीं देते हैं। पापरहित पाण्डुपुत्र कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर, महाबली भीम और धनञ्जय, यह कभी विद्रोह रूपी पाप कर्म्मको इच्छा नहीं करते, सो महात्मा माद्रीकुमार भी चुप रहेंगे। हाय! कैसा गहरा दुःख है! पाण्डवोंका पितृराज्यका पाना भी धृतराष्ट्रसे सहा नहीं जाता! इस अति अधर्म्मयुक्त कर्म्ममें फिर भीष्महीने क्योंकर अनुमति दी? ऐसे अन्याय पूर्व्वक पाण्डवोंको दूर करनेमें क्योंकर उनकी सम्मति हुई? पहिले शान्तनुनन्दन राजर्षि विचित्रवीर्य्य और कुरुपुत्र पाण्डुने हमको पिताके समान पाला था। उन पुरुषव्याघ्र पाण्डुके स्वर्गको सिधारने पर अब धृतराष्ट्र इन बालक राजकुमारों पर द्वेषयुक्त हो गये। क्या ऐसे अत्याचार पर हमारी सम्मति हो सकती है? चाहे जो कुछ हो, युधिष्ठिर जहां जायंगे, हम सब गृहको तजकर इस नगरसे वहीं जायगे। पुरवासीलोग दुःखित होकर ऐसा आन्दोलन कर रहे थे, कि धर्म्मराज युधिष्ठिर मनहीमनमें कुछकाल सोचकर दुःखयुक्त चित्तसे उनसे बोले, कि पृथ्वीनाथ

धृतराष्ट्र हमारे पिता, माननीय, तथा गुरु हैं, और वही प्रधान हैं; हमारा व्रत यह है, कि उन्होंने जो कुछ कहा है, उसे हम बिना शङ्का पूरा करेंगे। आप हमारे हितकारी हैं, हमपर कृपा करके अशीस दे देखकर निज निज घरको लौट जावें। जब आप लोगोंसे हम लोगोंका कोई आवश्यकीय काम आ पड़ेगा, तब आप हमारे उस कामको प्रिय और हितयुक्त जानकर करना। पुरवासीलोग युधिष्ठिरकी यह बात सुनकर प्रदक्षिणा पूर्ब्बक आशीस दे दे कातरभावसे नगरको पधारे। उनके सम्पूर्ण रूपसे लौटनेपर सर्ब्ब नीतियोंके जानकार विदुर पाण्डवोंमें प्रधान युधिष्ठिरकी सावधान करनेके लिये कहने लगे। इसलिये कि, दूसरे समझ न सकें, म्लेच्छ भाषाकी जाननेवाले विदुर म्लेच्छ भाषाकी समझाते हुए युधिष्ठिरसे म्लेच्छ भाषामें इशारेसे बोले, कि जो शत्रुके चेष्टित विषयको नीति शास्त्रके अनुसार ज्ञात हो सकें, उनको समझकर ऐसा काम करना चाहिये, कि विपद्से बच सकें। जो लोग ऐसे अस्त्रोंको, कि जो बिना लोहेसे बना हो पर शरीरको नष्ट कर देता हो और उससे बचनेके उपायको जाननेमें समर्थ हैं, उनको शत्रु बिगाड़ नहीं सकते। कक्षघ्न अर्थात् तृणनाशी और हिमनाशी वस्तु महाकक्षमें अर्थात् बड़े वनके भीतर बिलमें रहनेवाले जीवोंको जला नहीं सकतो हैं, इस नियमको आश्रयकर जो अपनी रक्षा करते हैं, वही जीते रहते हैं। जो आंखोंसे नहीं देखते हैं, वह न तो पथ जान सक्ते हैं, और न दिशा निश्चयकर सकते हैं; जिनको धीरज नहीं है, वह ऐश्वर्य्य नहीं प्राप्तकर सकते हैं। तुम मेरे इस उपदेशको भली भांति स्मरण रखना। जो पुरुष शत्रुओंके बिनालोहेके बने शस्त्रके वशमें नहीं हैं, वह साहसीके घरकी भांति दोनों ओरसे निकलनेके पथयुक्त बिलोंके द्वारा आगसे बच सकते हैं और घूमने घामनेहीसे पथ जाने जा सकते हैं, नक्षत्रसेभी दिशाओंका निश्चय हो सकता है, और जो मनुष्य अपनी पांच वस्तुओंको बुद्धिपूर्ब्बक बचा सकते हैं, वह शत्रुओंसे पीसे नहीं जाते। पाण्डुपुत्र धर्म्मराज युधिष्ठिर विप्रवर विदुरकी यह बात सुनकर बोले, कि मैं समझ गया।

विदुर पाण्डवोंको उक्त उपदेश देकर कुछ दूर पीछे चल प्रदक्षिणा पूर्ब्बक सम्भाषण कर गृहको लौटे। भीष्म, विदुर और पुरवासी सबोंके लौट जाने पर कुन्ती अजातशत्रु युधिष्ठिरके निकट जाकर बोली, कि विदुरने सबोंके सामने अप्रकाशित अर्थयुक्त जो बात कही, और तुमनेभी उनसे जैसी बात कही मैं उसे समझ नहीं सकी; यदि वह हमारे जानने योग्य हो और यदि उसे जाननेसे हानि न होनेवाली हो, तो तुम दोनोंमें जो बात हुई, उसका अभिप्राय मैं जानना चाहती हूं। युधिष्ठिर बोले, कि विदुरने कहा है, कि गृहसे आग जल उठेगी, तुम यह जानकर पहिलेसे सावधान होओ; कोई पथ तुम्हारा अनजाना नहीं है। जो जितेन्द्रिय होंगे, वही भूमण्डल भरका अधिकार पावेंगे। धर्म्मशील विदुरके मुझसे इतना कहने पर मैंने उनसे कहा है, कि मैं सब समझ गया। श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि उसके अनन्तर पाण्डवोंने फागुनके महीनेके आठवें दिनको रोहिणी नक्षत्रमें वारणावतकी यात्रा की। आगे वहां पहुंचे हुए पाण्डवोंसे नगर-वाले जनोंकी भेंट हुई।

जतुगृह पर्ब्बमें एकसौ छियालिस अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर वारणावत नगरीकी सब प्रजा पाण्डवोंके शुभ आगमनको सुनकर सुस्तीको छोड़ शास्त्रके अनुसार माङ्गल्य पदार्थ लेकर नाना प्रकारके अगणित यानों पर चढ़ उनके निकट जा पहुंची। वे पाण्डवोंके

निकट जाकर जय जयकारके साथ अशीस देते हुए चारों ओर खड़े हुए। देव सदृश पुरुषव्याघ्र धर्म्मराज युधिष्ठिर तब नगरके जनोंसे घेरे जाकर सुरनायके समान शोभा पाने लगे। निष्पाप पाण्डवलोग पुरवासियोंसे सत्कार पाकर उनकी यथायोग्य अभ्यर्थना और नाना अलङ्कारोंसे सत्कार पाकर उनको यथायोग्य अभ्यर्थना कर नाना अलङ्कारोंसे अलंकृत जनोंसे भरे वारणावत नगरमें जा पहुंचे। वीर पाण्डव-नन्दन पुरमें प्रवेश कर पहिले वेद पठन आदि स्वकर्म्ममें नियुक्त ब्राह्मणोंके घरोंमें गये। आगे क्रमसे नगरपाल, रथी वैश्य और शूद्रोंके घरोंमें भी गये। हे भरतश्रेष्ठ! पाण्डुपुत्रगण पुरवासियोंसे पूजे जाकर पीछे अगुया पुरोचनके साथ घरमें गये। पुरोचन उनको अच्छी अच्छी भोजन और पीनेकी वस्तु, शय्या, उत्तम आसनादि देने लगा। बहुत मूल्ययुक्त पहिरावा पहिरे हुए पाण्डवगण पुरोचनकी सेवा और पुरवासियोंकी उपासना पाकर वहां वसने लगे। इस प्रकार दश दिनोंके व्यतीत होनेपर पुरोचनने उनको शिव नामक उस अशिव गृहकी बात सुनायी। गुह्यक लोग जिस प्रकार कैलाशकी चोटी पर चढ़ते हैं, वैसेही पाण्डव-लोग पहिरावेसे सुशोभित होकर पुरोचनके वचन सुनकर उस गृहमें प्रविष्ट हुए। परम धार्म्मिक युधिष्ठिर उस गृहको भले प्रकार देखकर भीमसेनसे बोले, कि यही गृह आग लगनेवाली वस्तुओंसे बना होगा। हे शत्रुनाशि। घृत और लाहसे मिली हुई चर्ब्बीकी गन्धकी सूंघनेसे स्पष्ट प्रकाश होता है, कि यह गृह आग लगनेवाली वस्तुओंसे बना है। घर बनानेमें दक्ष और विपश्चियोंके विश्वासी शिल्पियोंने सन, धूप, सरकण्डा, तृण और वांस आदिको बटोर करके घृतमें डुवा कर उनसे यह घर बनाया है। सुयोधनका वशीभूत कुमति पुरोचन यह समझे हुआ है, कि मुझमें विश्वास आते देखकर हमको जलावेगा। हे पार्थ! महामति विदुर जान सके थे, कि यह विपत आपड़ेगी; इस लिये उन्होंने पहिले मुझको सावधान कर दिया था। उन छोटे चचाजोने स्नेहसे हमारे हितेच्छुक होकर जताया था, कि दुर्य्योधनके वशीभूत नीच स्वभावके लोगोंने इस अहित गृहको भले प्रकार बनाया है। भीमसेन बोले, कि जब कि आपने जान लिया है, कि यह गृह आग बालनेवाली वस्तुओंसे बना है, तब हम पहिले जहां वसे थे, वहीं जायं तो हमारा मङ्गल हो सकता है। युधिष्ठिर बोले, कि हम यत्नसे सावधान हो यहीं रहकर बाहिरी देखनेमें कोई चेष्टा न करके बाहर निकलनेका पथ ढूंढ़ेंगे। पुरोचन हमारे आकार वा किसी भावसे जान जायगा, तो उसी क्षण शीघ्रतापूर्व्वक एकायक हमको जला मारेगा; क्योंकि पुरोचन लोकनिन्दा वा अधर्म्म से भय खानेवाला नहीं है, वह बुरी बुद्धियुक्त दुर्य्योधन की आज्ञासे ऐसा अनिष्ट करनेको प्रवृत्त हुआ है। फिरभी हमारे यहां जल जानेसे पितामह भीष्म क्यों क्रोधमें होने चले, वह क्रोधित होकर क्यों कौरवोंको क्रोधयुक्त करेंगे; हां, ऐसा हो सकता है, कि जितने दूसरे कौरवश्रेष्ठ हैं, वे धर्म्मके नामसे क्रोध प्रकाश कर सकते हैं; और हम जलनेके भयसे भय खाकर भाग जावें, तो राज्यलोभी सुयोधन दूतोंके द्वारा हम सबोंको मरवा सकता है; क्योंकि वह दुरात्मा राजपदपर बना, सहाययुक्त और बड़े ऐश्वर्य्यका अधिकारी है; और हम पदके बाहर, सहायरहित और ऐश्वर्य्य वर्ज्जित हैं; सो इसमें सन्देह नहीं है, कि वह हमको नाना उपायोंसे नष्ट कर सकेगा। अतएव हम पापात्मा पुरोचन और सुयोधनको ठगकर अनेक स्थानोंमें इसप्रकार छिपकर बास करेंगे, कि भागनेके काल हमारा पथ अज्ञात नहीं रहेगा, बड़ेही

गुप्त भावसे आज ही, धरतीके नीचे एक बिल खोदेंगे। गुप्त-रूपसे ऐसा करनेसे हमको आशङ्का नहीं रहेगी; अतएव हम सजग होकर ऐसा करेंगे, कि पुरोचन वा कोई दूसरे पुरवासी हमारा अभिप्राय न जान सकें। जतुगृह पर्व्वमें एकसौ सैंतालीस अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे महीपाल! एक मनुष्य जो विदुरका मित्र और मिट्टी खोदनेमें दक्ष था, आनके निरालेमें पाण्डवोंसे बोला, कि मैं खनिक हूं, भूमि भली भांतिसे खोद सकता हूं; विदुरजीने मुझको यह कह भेजा है, कि तुम जाकर पाण्डवोंका प्रिय कार्य्य करो; सो पूछता हूं, कि आपका कौनसा काम करना पड़ेगा? उन्होंने मेरा विश्वास कर कहा है, कि तुम पाण्डवोंका हित करो, अब आज्ञा कीजिये कि क्या करना है। हे पाण्डव! पुरोचन आपके इस गृहके द्वारपर कृष्णपक्षकी चतुर्द्दशीको रात्रिको आग लगा देगा। कुमति दुर्य्योधनने निश्चय किया है, कि पुरुषश्रेष्ठ पाण्डवोंको माताके साथ जला मारेंगे। विदुरने म्लेच्छ भाषामें आपसे कुछ कहा था, उससे आपनेभी उनको वैसाही उत्तर दिया था; यह बातही मुझपर आपके विश्वास होनेका कारण है। सत्यशील कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर बोले, कि हे सौम्य! मैं जान गया, कि तुम विदुरके प्रिय मित्र, शुद्ध स्वभावी और विश्वासी हो, और उनपर सदा तुम्हारी बड़ी भक्ति है; वह सब जानते हैं, कोई काम उनका अनजाना नहीं है; तुम विदुरके जैसे प्यारे हो, हमारेभी वैसेही प्रिय हो, इसमें कुछ विशेष नहीं है। अतएव तुम उनको जैसा समझते हो, हमकोभी वैसाही समझकर हमारी रक्षा इस प्रकारसे करो, कि जैसे वह करते थे। मुझकोभी समझ आ गयी, कि दुर्य्योधनके मतसे पुरोचनने हमारे लिये ही यह अग्निघर बनवाया है; यह पापात्मा कुमति दुर्य्योधन धनयुक्त और सहाय सहित है, सो सदा हमको नष्ट करनेकी चेष्टा करता है। अब तुम यत्नपूर्व्वक हमको इस अग्नि-घरसे बचाओ। और भी इसमें सन्देह नहीं है, कि हम यहां जल मरें, तो सुयोधनकी आशा पूरी होगी। देखो, यह उस दुरात्माकी बड़ी भारी अस्त्रशाला है। इसे आश्रयकर यह बड़ा गृह ऐसा बना है, कि भीतको जड़से अन्ततक बाहर निकलनेका कोई पथ नहीं है। विदुरने दुर्य्योधनके जिस सङ्कल्पित अनुचित कर्म्मको पहिले निश्चय रूपसे जानकर हमको सावधान किया था, अब वही विपद आ पड़ी है; अतएव ऐसा करो, कि हम पुरोचनसे गुप्तभावसे भाग सकें। खनकने वह प्रतिज्ञाकर यत्नसे एक बड़ा बिल खोदना आरम्भ कर दिया। हे भारत! उस गृहके भीतर औरोंका अनजाना एक बड़ा बिल खोदकर उसमें ऐसा द्वार लगाया, कि भूमिसे समान हो गया और पुरोचनके भयसे उस बिलका मुंह लीप दिया। हे भूपाल! कुत्सित बुद्धियुक्त पुरोचन उस गृहके द्वारपर सदा रहा करता था। पाण्डव गणभी रात्रिको अस्त्र शस्त्र लेकर उस गृहके भीतर रहते और दिनको वनमें घूम घाम मृगया करते फिरते थे। हे राजा! वे पुरोचनको ठगनेके लिये टुकभी विश्वास न रख करके भी विश्वासीके समान, सदा असन्तुष्ट हो करकेभी सन्तुष्टकी भांति और अति विस्मित होकर वहां बसने लगे। पर विदुरके मन्त्री उस खनिकके बिना किसी नगरवासीने उनका अभिप्राय नहीं जाना।

जतुगृहपर्व्वमें एकसौ अड़तालीस अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर उनके उसप्रकार वर्षभर वहां बस जानेपर पुरोचन

उनको विश्वास रखनेवालोंकी नाईं निःशङ्क जानकर मनहीमनमें आनन्द करने लगा। कुन्तीपुत्र धर्म्मवीर युधिष्ठिर उसको प्रसन्न देखकर भीम, अर्ज्जुन, नकुल और सहदेवसे बोले, कि इस पापात्मा पुरोचनने समझ लिया है, कि हममें पूरा विश्वास आगया है, सो इस कुटिलको हमने ठग लिया है; अब हमारे भागनेका काल आगया है। हम अस्त्रशालामें आग लगा करके पुरोचनको जलाके यहां छः मनुष्योंको छोड़कर लोगोंसे छुपकर भागेंगे!

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि महाराज! अनन्तर कुन्तीने एक दिन दान देनेके मिससे रात्रिको ब्राह्मणोंको भोजन कराया, इस कामके लिये वहां की बहुत स्त्रियां वहां आई थीं। हे भारत! स्त्रियां रात्रिको वहां पूरे सुखसे खा पीकर आनन्द पूर्व्वक कुन्तीकी आज्ञासे निज निज घरको पधारीं, दैववश कालकी प्रेरणासे एक बहेलिन पांच पुत्रोंके साथ मनमाने उस भोजमें खाने की इच्छासे आई थी। हे पृथ्वीनाथ! वह बहेलिन अपने बेटोंके साथ मदिरा पीकर उन्मत्त और नशेसे विह्वल होकर उस घरहीमें सो गयी। वह एकवारही अचेत होकर मरीसी वहां पड़ी थी। अनन्तर रात्रिको बड़ी हवा बह रही थी, और नगरके लोग सोगये थे, कि ऐसे समयमें भीमसेनने उस गृहमें जहां पुरोचन सोता था आग लगायी, आगे क्षण भरमें जतुगृहके द्वारको जलाकर अन्तमें उस गृहके चारों ओर आग लगायी। शत्रुनाशी पाण्डव चारो ओरसे गृहको जलते हुए देखकर माताके साथ बिलमें जा घुसे। अनन्तर जलती हुई आगका कठोर तेज और घोर शब्द फैलने लगा। उससे पुरवाले जन उस गृहको जलते देखकर मलिनमुखसे कहने लगे, कि दुर्य्योधनके रखे हुए कुमति पापात्मा पुरोचनने स्वजनोंको नष्ट करनेके लिये ही यह गृह बनवाया था, अब उसमें आग लगायी। हाय! धृतराष्ट्र की बुद्धि कैसी कच्ची है! उनकी इस बुद्धिपर धिक्कार है, जिस बुद्धिसे उन्होंने निष्पापी पाण्डुपुत्रोंको शत्रुके सदृश जला दिया! पर जिस पापिष्ठ पुरोचनने विश्वासयुक्त और निर्द्दोषी नरोत्तम पाण्डवोंको जलाया, अब वह दुरात्मा अपने कर्म्मफलसेही जल मरा है।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि वारणावतवाले इस प्रकार विलपते हुए उस रात्रिको गृहको चारों ओरसे घेरकर खड़े रहे। इधर शत्रुनाशी पाण्डवलोग माताके साथ अति दुःखी चित्त होकर लोगोंसे छिपकर उस बिलसे निकलकर दृढ़ताके साथ शीघ्र चलने लगे; पर वे सब निद्राके झोंकों और भयके कारण माताके साथ एकायक शीघ्र नहीं चल सके। हे राजेन्द्र! तब भीमगामी तथा भीम पराक्रमी भीमसेन माता और सम्पूर्ण भाइयोंको लेकर चलने लगे। अति बल वीर्य्यवन्त और हवाकी नाईं वेगवान् तेजस्वी वृकोदर जानेके कालमें माताको कन्धेपर, नकुल और सहदेवको गोदमें और युधिष्ठिर तथा अर्ज्जुनके हाथ पकड़कर छातीसे पेड़ोंको तोड़ते और पावोंसे धरतीको फोड़ते हुए चले।

जतुगृहपर्व्वमें एकसौ उनचास अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर इस समय सर्व्वज्ञ विदुरने एक पवित्र मनुष्यको इसप्रकारसे, कि पाण्डवोंके मनमें उसपर विश्वास हो, उस वनको भेजा। हे कुरुनन्दन! वनमें जहां पाण्डवलोग माताके साथ नदीके जलको नाप रहे थे, विदुरके भेजे हुए पुरुषने वहां जाकर उनको देखा। अति बुद्धिमान महात्मा विदुर गुप्त दूतके सहारे पापिष्ठ दुर्य्योधनके चेष्टित उन सब कामोंसे ज्ञात हुए थे, इसीहेतु उन्होंने उस विद्दज्जनको वहां भेजा था। उस पुरुषने तब मङ्गलमय भागीरथीके

तट पर विश्वासी जनोंसे बनी, पवनके सहन-हारी यन्त्रवाली, भण्डोंसे सुहावनी और मन या हवाकी नाईं शीघ्रगामिनी पूर्व्व कथित नावको उन्हें दिखाया और विश्वासके लिये कहा, कि हे युधिष्ठिर! विदुरने इशारेसे जो कुछ कहा था, वह सुनिये। कक्षनाशी और हिमनाशी वस्तु महाकक्षके बिल भीतर स्थित जनको नष्ट नहीं कर सकती हैं; इसप्रकार जो जन अपनी रक्षा कर सकता है, वह जीता रहता है। हे पाण्डव! मैं विदुरका विश्वासी और कामोंका जानकार हूं। उन्होंने मुझको इशारेको उस बातको कहकर यहां भेज दिया है। उस बहुत देखेभाले महाशयने यहभी कह दिया है, कि हे कुन्तीपुत्र! तुम रण-स्थलमें कर्ण, भाइयोंसमेत दुर्य्योधन तथा शकुनिको अवश्यही परास्त करोगे। अब इसमें सन्देह नहीं है, कि जलमें रखी हुई, सुखसे जानेवाली इस नावपर आप इस स्थानसे बच जायंगे। आगे उस पुरुषने नरोत्तम पाण्डवोंको माताके साथ दुःखीचित्त देखकर नावपर चढ़ा करके गङ्गाजीसे उनके साथ चलने लगा और फिर बोला, कि विदुरने आपके नाम लेकर सिर चूमकर गले लगाकर बार बार कहा है, कि तुम पथमें न घबड़ाकर बिना विघ्न मङ्गलपूर्व्वक जाओ। हे राजेन्द्र! विदुरके भेजे हुए उस पुरुषने नरश्रेष्ठ वीर पाण्डवोंसे वह बात कहते हुए नावपर गङ्गाजीको पार किया; आगे उनके अन्यपारमें पहुंचनेपर वह जय जयकारके साथ उनको अशीस देकर अपने स्थानको गया। महात्मा पाण्डवलोग गङ्गाजीको पारकर उस पुरुषहीसे विदुरके यहां पलटा समाचार देकर किसीसे न देखे जाकर वेगपूर्व्वक जाने लगे।

जतुगृहपर्व्वमें एकसौ पचास
अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर रात्रि बीतनेपर सम्पूर्ण नगरवाले पाण्डवोंकी भेंटके लिये शीघ्रतासे वहां आये! उन्होंने आग बुझाकर मन्त्री पुरोचनको जतुगृहके साथ जला हुआ पाया। आगे रोते हुए चिल्लाकर कहने लगे, कि निश्चय जान पड़ता है, कि पापात्मा दुर्य्योधनने केवल पाण्डवोंको नष्ट करनेके लियेही ऐसा किया है। इसमें सन्देह नहीं है, कि दुर्य्योधनके पाण्डवोंको जलानेके विषयमें धृतराष्ट्रकी सम्मति थी, उनकी सम्मति नहीं रहती, तो वह मना करते। और शान्तनुनन्दन भीष्म, द्रोण, विदुर, कृप और दूसरे कौरवोंनेभी इस विषयमें धर्मपर दृष्टि नहीं दी है। अब हम दुरात्मा धृतराष्ट्रसे कहे भेजते हैं, कि तुम्हारी बड़ी आशा पूरी हुई, तुमने पाण्डवोंको जला मारा। अनन्तर उन्होंने पाण्डवोंको ढूंढ़नेके लिये अग्निको उठाकर बुझाते हुए, पांचों पुत्रके सहित जलीभुनी बहेलिनको देखा। उस समय विदुरके भेजे हुए, उस पूर्व्वोक्त खनिकने उस गृहको साफ करनेके मिससे दूसरोंके न देखनेमें उस बिलका द्वार तोप दिया। इसके अनन्तर नगरवालोंने धृतराष्ट्रके निकट जाकर यह कह सुनाया, कि पाण्डवगण मन्त्री पुरोचनके साथ जल मरे हैं। राजा धृतराष्ट्र पाण्डवोंके विनाश-रूपी अति अप्रियसमाचारको सुनकर दुःखीचित्तसे विलपते हुए कहने लगे, कि हाय! आज उन सब वीरोंके माता समेत जल जानेसे मेरे भाई बड़े यशस्वी पाण्डु सत्यही मरे! कौरवलोग वार-णावतमें जाकर उनवीरों और कुन्तीराज-पुत्रीका अग्नि संस्कार करें; मेरे कुलकी प्रथाके अनुसार जितने शुभ तथा बड़े बड़े कर्म्म हैं, उनकोभी भले प्रकार करें और जिन जिन लोगोंने वहां पर देह छोड़ी हैं, उनके बान्धवभी वहां जावें। इस दशामें पाण्डव और कुन्तीके लिये जितने हितकार्य्य हो सकें, सब धनके

सहारे कर डालें। अम्बिका पुत्रने ऐसा कह-कर ज्ञातियोंके साथ पाण्डवोंकी जलक्रिया की। सब कौरव एकत्र मिलकर अति शोकसे हाय हाय कर रोने लगे। किसीने हा कुरु-कुलभूषण युधिष्ठिर! किसीने हा भीम! किसीने हा फाल्गुन! किसो किसीने हा नकुल! हा सहदेव! अथवा किसोने हा कुन्ति! इस प्रकार कातर स्वरसे शोक करते हुए, उदकक्रिया पूरी की और दूसरे पुरवासी पाण्डवोंके शोकसे बहुत कातर हुए। विदुर अल्प शोक दिखाने लगे, क्योंकि वह रुचे समा-चार जानते थे।

इधर महाबली पाण्डवगण माताके साथ वारणावत नगरसे निकल करके गङ्गाजीके किनारे जाकर मल्लाहोंके भुजबल, स्रोतके वेग और सहाय वायुके सहारे बड़े शीघ्र अन्य पारको जा पहुंचे। वे नौकाको छोड़ कर रात्रिको तारोंके सहारे पथ जानकर दक्षिण ओर चलने लगे। हे राजन्! उनको बड़ी बड़ी चेष्टा से अन्तको एक तपोवन मिला। तब नौंदसे अन्धे थके और प्यासे पाण्डवोंने भीमसेनसे कहा, कि देखो इससे अधिक और क्या कष्ट हो सकता है, कि हम इस सघन वनमें आपड़े हैं, अब नतो दिशा निश्चय होती हैं और न चल सकते हैं। नहीं जानते वह पापात्मा पुरोचन जला वा नहीं; वह जलभी गया हो, तो हम औरोंके बिना दिखे क्योंकर इस गहरी विपतसे पार होंगे? हे भारत! अकेले तुम्ही हम सबोंसे बली और पवनसम वेगवान हो, सो फिर हम सबोंको पूर्ववत ले चलो। धर्मराजके ऐसा कहनेपर महाबली भीमसेन कुन्ती और भ्राताओंको लेकर शीघ्र चलने लगे।

जतुगृहपर्व्वमें एकसौ एकावन
अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि महाबली भीम-सेनके जानेके कालमें शाखापत्रवोंसे भरा हुआ, वह बन उनकी उरुको चोटसे डोलता हुआ, मानो घूमने लगा। जिस प्रकार जेठ और आषाढ़ महीनोंमें प्रबल हवा बहती रहती है, वैसेही उन महाबलीकी जांघकी चोटसे पवन सनसनाने लगी; इससे निकटकी लता और वृक्ष टूट फूटकर अच्छा पथ बनने लगा। वह उस पथके निकटके फूल फलवाले बन-स्पति और लतायोंको खूंदते हुए, चलने लगे। गहन आदि तीन प्रकारके अङ्गोंसे गलित अहं-कृत षाठवर्ष अवस्थायुक्त, क्रोधित गजराज जिस प्रकार वनके बड़े बड़े पेड़ोंको तोड़ता हुआ चला जाता है, वैसेही वह बड़े बड़े पेड़ोंको तोड़ते हुए, चलने लगे। गरुड़ और पवन समान वेगवान भीमसेनकी गतिके वेगसे युधि-ष्ठिर आदि अचेतनकी भांति होगये थे। वह दोनों भुजरूपी पल्लवोंसे पथमें गङ्गाजीकी बहती धारको बार बार पार कर दुर्य्योधनके भयसे छिपकर गये थे। नदीतटके ऊंचे नीचे स्थानमें यशस्विनी कोमलाङ्गी माताको पीठ-पर लेकर वह अति कष्टसे चले। हे भरत-श्रेष्ठ! अनन्तर ऐसे एक भयानक निर्जन वनमें जहां फल फूल जल मिलने योग्य नहीं है और हिंसक पशु पक्षी बसते हैं, सन्ध्याके समय आनपहुंचे। वहां गाढ़ी अंधेरीसे भरी सन्ध्या आयी। भयावने पशुपक्षियोंके शब्द सुनाई देने लगे और दिशायें दिखी नहीं गयीं, और बड़ी प्रचण्ड अकालिक पवन बह रही थी; उससे वहांके गले सड़े पत्ते और सूखे फलवाले छोटे बड़े पेड़ तथा लता कुछ टूटने और कुछ नीचे गिरने लगीं; तब कौरवलोग नौंदसे जकड़े थके और प्यासे बने आगे चल नहीं सके, पानभोजन-रहित होकर उस बड़े भारी वनहीमें बैठ गये। आगे कुन्ती प्याससे मारे विकल होकर पुत्रोंसे बोली, कि मैं पांच पाण्डवोंकी माता

होकर पांचों पाण्डवोंके बीचमें रहकरके भी जल की प्याससे कातर हो गयी। कुन्ती बार बार यह कहने लगी। भीमसेनका हृदय उसे सुनकर मातृस्नेह तथा करुण भावसे पूरित हुआ। वह फिर चलने लगे। उसके अनन्तर निर्ज्जन घोर महावनमें प्रवेशकर दूरतक छांह देनेवाले एक सुन्दर बड़को देखा। हे प्रभो! भरतश्रेष्ठ भीमसेन उन सबों को वहां उतारकर बोले, कि आप यहां बिराजें मैं जल ढूंढ़ लाऊं। यहां जलमें चरनेवाले सारस पक्षियों का कलाला सुन पड़ता है, मुझको जान पड़ता है, कि यहां बड़ा जलाशय होगा। आगे वह बड़े भाईकी आज्ञासे उधरको चले, जिधर जलमें चलनेवाले पक्षियोंकी ध्वनि सुनी जाती थी।

हे भरतश्रेष्ठ! उन्होंने वहां जाकर नहा करके जल पीया। आगे भ्रातृप्रिय भीम भाइयोंके लिये दुपट्टे में जल लेकर लौट चले। अनन्तर वेगसे उन दो कोसोंकी दूरीसे लौट आकर माताको और देखकर शोक और दुःखके मारे विह्वल होकर उरग की भांति लम्बी शांस छोड़ी। वृकोदर माता और भाइयोंको धरती पर पड़े और सोये देखकर अतिशयकरके विलपने लगे, कि इससे और अधिक कष्ट क्या होना है, कि मुझ दुर्भाग्यको भाइयोंको धरती पर सोते हुए देखना पड़ता है! पहिले वारणावत नगरमें बड़े बड़े मूल्यके बिस्तरोंपर जिनको नींद नहीं आती थी, आज वे मिट्टी पर पड़कर सोते हैं। देखो, जो शत्रु दलके नाशनेवाले वसुदेवकी बहिन राजा कुन्तीराजकी बेटी, विचित्रवीर्य्यकी पुत्रवधू महात्मा राजा पाण्डुकी स्त्री और हमारी माता हैं, जो सर्व्व अच्छे लक्षणोंसे सुशोभित पद्म-गर्भ सदृश रूपवती, बड़ी कोमलाङ्गी और बड़े मूल्यवान बिस्तरों पर सोने योग्य हैं, क्या उस कुन्तीको आज मिट्टी पर सोना सजता है? जिन्होंने धर्म्म, इन्द्र और पवन इन सब देवोंसे यह सब सन्तान प्राप्त की हैं और सदासे बड़े बड़े भवनोंमें सोती आई हैं, वह आज थकावटके मारे धरती पर लोटती हैं! फिर इससे मेरे लिये और कौन दुःख देखा जायगा, कि मैं आज इन पुरुषोत्तमोंको मिट्टी के बिछौने पर पड़े हुए देखता हूं। धार्म्मिकवर राजा युधिष्ठिर जो तीनों लोकोंके अकेले अधिकारी होनेके योग्य हैं, हाय! वह आज क्यों कर सामान्य जनकी भांति थकावटके मारे मिट्टीपर सोते हैं! इससे और क्या अधिक दुःख होना है कि, नीले बादल समान श्रीमान अर्ज्जुन, जिनकी बराबरी करनेवाला इस मर्त्यलोकमें कोई नहीं है, आज छोटेसे मनुष्यको नाईं मिट्टी पर पड़े हैं! और यह दो जिलहे भाई जो रूप सम्पदमें देवोंमें अश्विनीकुमारोंके सदृश द्युतिमान हैं, वे साधारण लोगों की भांति धरती पर लोट रहे हैं! जिसके कुलनाशी भयानक ज्ञाति अर्थात् पटेत नहीं है, वह ग्रामके वृक्ष ऐसा अकेला सुखसे दिन काट सकता है। देखो, ग्राम भरमें ज्ञातियोंसे खाली फल पत्तोंसे सुशोभित एकाही वृक्ष रहे तो, वह वृक्ष चैत्य करके भले प्रकार पूजा जाता है, अथवा इस भूलोकमें जिनके धार्म्मिक वीरवर बहुत ज्ञाति रहते हैं, वे भी बिना क्लेश सुखसे काल काटते हैं और बहुतेरेभी बली ऐश्वर्य्ययुक्त और मित्र बान्धवोंको आनन्द देते हुए वनमें उपजे हुए वृक्षोंकी भांति एक दूसरेके सहारे परम सुखसे काल व्यतीत करते हैं, पर कुबुद्धि धृतराष्ट्र और दुर्य्योधनने हमको खदेड़ा है; किन्तु दैववश हम किसी तरह जलनेसे बचे। उस आगसे बचकर कठोर क्लेश भोगते हुए इस वृक्षके आसरेमें आये हैं, अब फिर किधर जावें? रे कुबुद्धे! अल्पदर्शिन्! धृतराष्ट्रपुत्र! तू अब अपनी आशा पूरीकर। सन्देह नहीं है, कि तुझपर

देवगण प्रसन्न हैं। रे कुमते! युधिष्ठिर तुझे मार डालनेकी आज्ञा नहीं देते, इस लिये तू जीता है! क्या आजही मैं कोपाविष्ट होकर तुझको वेग, मन्त्री, कर्ण, छोटे भाईलोग और शकुनिके साथ यमराजके घर नहीं भेज सकता? पर क्या करूं, धर्मात्मा पाण्डवोंमें श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर तुझ पर क्रोधित नहीं होते हैं! महाभुज वृकोदरने इस प्रकार क्रोधके मारे चित्तको मलिन करके हाथसे हाथ रगड़ दुःखके मारे लम्बो श्वांस छोड़ी; आगे बुझी हुई आगकी नाईं फिर दीन चित्तसे भाइयोंको ओर देखकर सोचने लगे, कि यह लोग विश्वाससे साधारण जनोंको भांति सो रहे हैं। मुझको जान पड़ता है, कि इस बनके पासही नगर है, जो जगाना चाहिये; पर यें सोगये हैं, सो मैं जग रहूं। इनकी थकावट दूर होनेसे जब यह जागेंगे, तब जल पीयेंगे! भोमसेन तब ऐसा निश्चय कर स्वयं जागने लगे।

एकसो बावन अध्यायमें जतुगृह पर्व्व समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि वे जहां सोते थे, वहांसे थोड़ी दूर पर एक सालके वृक्षपर नरमांस पर जीता हुआ बड़ा वीर्य्यवन्त अति पराक्रमी वर्षाके बादलकी भांति काला देखनेमें भयानक और भूखा हिड़िम्ब नामका एक कुटिल राक्षस था। उस मांसभोजीका जङ्घामूल और पेट बहुत बड़ा, दोनों नेत्र पिङ्गले, दाढ़ी और केश लाल, मुख बड़े बड़े दांतोंसे बड़ा विकराल, गला और गर्द्दन बड़े वृक्षके कन्धेकी नाईं और दोनों कान शङ्कुकी भांति थे। देखनेमें बड़ा भयानक उस बेढब पिङ्गली आंखयुक्त मांसखोर भूखा करालरूप राक्षसकी दृष्टि एकायक सोते हुए पाण्डवों पर जापड़ी। बड़ा, भारी, अति बली, घने बादलके समान, कटीले दांत वाला और जलता हुआ मुखयुक्त वह मांसखोर मनुष्योंकी गन्ध संघकर उंगली उठाकर सिर खुजलाता रूखे केश डुलाता लम्बा चौड़ा मुह खोल बार बार उनको देखता हुआ नरमांस खानेकी आशासे बहिनसे बोला, कि बहुत दिन पर आज मेरा बड़ा प्यारा खाना आ पहुंचा है; मांसखानेका सुख आने पर मेरी जीभसे रस गिर रहा है। मेरे आठ दांतोंका अगला भाग बड़ा तेज है; यह बड़े दांत जिस पर जा लगते हैं, इनकी चोट उससे सही नहीं जाती; उन दांतोंको आज बहुत दिनपर कोमल मांसवाली देहमें घुसाऊंगा। आज मैं मनुष्यका गला पकड़ नसें निकाल बहुत गर्म्म घना रक्त पीऊंगा। तुम वहां जाओ और जानो, कि वे कौन, क्यों इस वनमें सोते हैं? मुझको निश्चय जान पड़ता है, कि वे मनुष्य होंगे; क्योंकि मनुष्यकी तेज गन्ध मेरी नाकको सुख पहुंचा रही है, सो तुम उन मनुष्योंको मार कर मेरे पास लेती आओ। वे मेरे अधिकारमें सो रहे हैं, उनसे तुम कुछ भय मत खाना। हम दोनों एकत्र होकर उन मनुष्योंको देहसे मांस चुन चुन कर मनमाना खावेंगे, तुम तुरन्त मेरी बात मानकर काम करो। आज हम मनमाना मांस खाकर दोनों एकत्र होकर भांति भांतिके ताल देते हुए नाचेंगे। तब राक्षसी हिड़िम्बा हिड़िम्बकी यह बात सुनकर जहां पाण्डवलोग विराजते थे, वहां झट चली गयी और पहुंचकर देखा, कि पाण्डवलोग और पृथा सोती हैं और जयके अयोग्य भीमसेन जागते हैं। राक्षसी नये सालवृक्षके समान उदित और धरती भरमें अनुपम रूप सौन्दर्य्ययुक्त सुन्दर पुरुष भीमसेनको देखतेही कामदेवके वशमें हो गयी और समझा; कि यह गौरवर्ण महाभुज सिंहगर्द्दन अति द्युतिमान शङ्खग्रीव पद्मनेत्र पुरुष मेरे पति होनेके योग्य है। मैं कभी निष्ठुर भाईको बात न मानंगी, क्योंकि पति पर स्नेह

जितना बल करता है, उतना भाईपर कभी नहीं करता, और इनको मारनेसेभी भइया और मुझको क्षणभर सुख मिलेगा, पर न मारनेसे सदा इनसे आनन्दको उमङ्गमें बड़ा सुख पा सकूंगी। ऐसा समझकर कामरूपा राक्षसी सुन्दर मानवीरूप धरकर महाभुज भीमसेनके पास धीरे धीरे जा पहुंची। आगे सुन्दर आभूषणोंसे सजी हुई वह राक्षसी नम्रभावसे लज्जिता सी कुछ मुसकिराती हुई भीमसेनसे बोली, कि हे पुरुषश्रेष्ठ! आप कौन हैं, कहांसे आये हैं! और जो यह देवरूपी पुरुषगण सोये हैं, वे कौन हैं? हे अनघ! यह जो तप्त सुवर्णके रङ्गकी कोमलाङ्गी रमणी घरमें रहनेकी भांति विश्वासपूर्व्वक इस वनमें लेटकर सो रही हैं, यह आपकी कौन लगती हैं! क्या वह नहीं जानतीं, कि इस वनमें राक्षस रहते हैं, यहां हिडिम्ब नामक पापात्मा राक्षस बसता है, वह राक्षस मेरा भाई है। हे देववत मनुष्यगण! उस मांस भोजीने आपके मांस भोजन करनेके लिये बुरे अभिप्रायसे मुझे भेज दिया है, पर मैं आपसे सच कहती हूं, कि देववत आपको देखकर आपके बिना किसी दूसरेको पति बनाया नहीं चाहती। हे धर्म्मशील! इसपर ध्यान देकर मुझपर यथोचित व्यवहार करिये। मेरा मन और अङ्ग सब कामके बाणसे घायल हुए हैं। मैं आपको भज रही हूं, आप मुझपर कृपा करें। हे महाभुज! मैं आपको इस पुरुषभोजी राक्षससे बचाऊंगी। हे अनघ! आप मेरे पति होवें। हम दोनों पहाड़ पर दुर्गमें रहेंगे। मैं आकाशमें उड़नेवाली हूं; इच्छानुसार आकाशादि सब स्थानोंमें चलती फिरती हूं, आप मेरे सङ्ग उन सब स्थानोंमें घूमकर अपार आनन्द लूटेंगे। भीमसेन बोले, कि राक्षसि! इन्द्रिय निग्रहवाले मुनिके समान कौन माता और बड़े तथा छोटे भाइयोंको त्याग कर सकता है? और मेरे सदृश कौन मनुष्य कामसे पीड़ितकी भांति सुखसे छोटे भाई और माताको राक्षसके भोजनके लिये छोड़कर चला जा सकता है? राक्षसी बोली, कि आप जैसा चाहेंगे मैं वही करूंगी आप; इनको जगावें, मैं सहजहीमें सबोंको मनुष्यखोर राक्षसके हाथसे मुक्त कर दूंगी। भीमसेन बोले, कि हे राक्षसी! तुम्हारे दुरात्मा भाईके भयसे इस वनमें सुखसे सोये हुए भाइयों और माताको नहीं जगा सकूंगा हे भीरु सुनेत्रे! मनुष्य, गन्धर्व्व, यक्ष वा राक्षसमें कोईभी मेरा पराक्रम रुद्ध नहीं सकता है। हे भद्रे! तुम चाहे जाओ वा रहो, अथवा तुम जो चाहती हो करो, किम्वा हे सुन्दरि! तुम अपने उस पुरुषभोजी भाईको भेजो; मैं न तो कोई विधि करूंगा और न मना करूंगा।

हिड़िम्बवधपर्व्वमें एकसौ तिरपन अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर लालनेत्र, महाभुज, केश ऊपर छढ़ाया हुआ, लम्बे चौड़े मुहवाला घने बादलसमान काला और तेज दांतवाला वह विकराल आकारयुक्त राक्षसनाथ हिड़िम्ब हिड़िम्बाको बड़ी देरी देख उस वृक्षसे नीचे उतर पाण्डवोंके पास शीघ्र आने लगा। हिड़िम्बा उसे निकट राक्षसको गिरते देखकरकेही भयसे घबराकर भीमसेनसे बोली, कि वह देखो, दुष्टात्मा पुरुष नाशी क्रोधित होकर उतर रहा है; अब मैं जैसा कहती हूं, आप भाइयोंके साथ वह करें। हे वीर! मैं अपनी जातिके बलवीर्य्य रखनेके हेतु मनमाने सर्व्वत्र जा सकती हूं। आप मेरी कमरपर चढ़लें, आपको आकाशमें लेतो जाऊं। हे शत्रुनाशि! आप इन सोती हुई माता और भाइयोंको जगावें, मैं सबोंको

लेकर आकाश मार्गमें जाऊंगी ; भीमसेन बोले, कि ऐ सुन्दरी ! तुम भय मत खाओ ; मुझको निश्चय जान पड़ता है, कि मेरे लिये वह राक्षस बड़ा तुच्छ है ; वह मेरी हिंसा नहीं कर सकेगा। ऐ सुन्दरी ! तुम देखलो, तुम्हारे सामने ही मैं उसको नष्ट करता हूं। रो भीरु ! उस नीच राक्षसकी क्या कहती हो ; जितने भर राक्षस हैं, सब भी आवें, तो मेरे साथ लड़नेमें समान होकर नाश-लीलासे नहीं बचेंगे। हस्तीकी सूंड़से यह दो भुज, लोहेके मुद्गर समान दो जांघ और बड़े तथा कड़े दांतोंको देखो। ऐ सुन्दरि। तुम आज महेन्द्रकी भांति मेरे विक्रमको देखोगी। ऐ चौड़ी कमरवाली ! तुम मुझको मनुष्य मानकर कम न समझना। हिड़िम्बा बोली, कि हे नरव्याघ्र ! आप देवरूपी हैं, मैं आपका अनादर नहीं करती, पर मनुष्यपर राक्षसका जितना प्रभाव है, वह मैं देख चुकी हूं

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भारत ! भीमसेन हिड़िम्बासे यह बातें कर रहे थे, कि ऐसे समय मनुष्यखोर हिड़िम्बने क्रोधपूर्व्वक आनकर वह बातें सुनलीं और देखा, कि हिड़िम्बाने सुन्दर मनुष्यका स्वरूप लिया है। उसके केशोंमें फूलहार लगे हैं, मुह पूर्ण चन्द्रमासा शोभायमान है भौंहे, नाक, नेत्र और केश सब सुशोभित हैं, नख और त्वचा कोमल हुए हैं और सुन्दर पतला वस्त्र तथा सम्पूर्ण आभूषणोंसे सर्व्व शरीर बने ठने हैं। उसको ऐसा सुन्दर मानवी स्वरूप लिये देखकर पुरुष चाहनेवाली जान करके वह बड़ा कोपाविष्ट हुआ। हे कुरुश्रेष्ठ ! तब वह क्रोधके मारे अपनी बड़ी आंखोंको निकाल कर बहिनसे बोला, कि मैं भोजन चाहता हूं, किसकी ऐसी कुमति हुई, कि मेरी उस इच्छामें विघ्न डाला चाहता है ? हिड़िम्बे ! तू मोहित हो गयी क्या ? मेरे क्रोधसे भय नहीं खाती ? रो असति ! तू पुरुषकी चाहसे मेरे अप्रिय काममें हाथ डालती है ? तुझ पर धिक्कार है ! तुझसे पहिलेके श्रेष्ठ राक्षसोंके यशरूपी चन्द्रमा पर कलङ्क के धब्बे लगी ! तू जिसके भरोसे मेरा बड़ा अप्रिय करने पर उद्यत हुई है, आज मैं अभी तेरे सहित उसका काम पूरा करे देता हूं। राक्षसश्रेष्ठ हिड़िम्ब आंखे लालकर हिड़िम्बासे उस प्रकार कह करके दांतसे दांत पीसता हुआ पाण्डवोंके बधके लिये दौड़ा। मारनेमें दक्ष तेजस्वी भीमसेन उसको आते देखकर लाञ्छनके साथ "तिष्ठ तिष्ठ" ऐसा बोले।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि भीमसेन उस राक्षसको बहिन पर क्रोधित होते देखकर हंसते हुए बोलने लगे, कि रे कुमति नरखोर ! तुझे हिड़िम्बासे क्या प्रयोजन है और इन सब सुखसे सोये भाइयोंके जगाने हो को भी क्या आवश्यकता है ? तू तुरन्त मेरे पास आ और मुझको मार। स्त्रीको मारना तुझे नहीं सोहता। विशेष एकके दोषसे दूसरेको मारना ठीक नहीं है ; इस बालाने आज अपने वशमें रहकर मुझे कामना नहीं की है। कामदेवने इसके शरीरमें घुसकरकेही इस ओर झुकाया है। रे राक्षसकुलके यशनाशी दुराचारी अधम राक्षस ! तेरी बहिनने तेरेही नियोगसे यहां आनकर मेरा रूप देखके मुझे कामना की है, सो यह भीरु अबला तेरे पास दोषी नहीं बन सकती, कामदेवनेही यह दोष किया है ; अतएव तुझे इस सुन्दरीको लाञ्छन करना नहीं चाहिये। रे दुष्टात्मा ! मेरे रहते तू इस नारीको मार नहीं सकेगा। रे नरभोजी ! तू अकेला है, अकेले मेरेही साथ तू लड़, मैं अकेलाही आज तुझको यमराजके पाहुना बनाऊंगा। आज तेरा सिर मेरे भुजबलसे ऐसे पीसे जाकर चूर हो जायगा, कि मानो बलवन्त हाथीके पांवोंसे कुचल गया हो।

आज रणभूमिमें तेरे मारे जानेसे काक, गीध, और गोमायु आनन्दसे नीचे उतरकर तेरे शरीरको खींचने लगेंगे। पहिले तूने सदा मनुष्य खाकर जिस वनको दूषित किया था, आज मैं क्षणभरमें राक्षससे उस वनको खाली बना दूंगा। रे राक्षस! सिंह जिस प्रकार बड़े गजपर चढ़ जाता है, वैसेही आज पर्व्वतवत तुझको तेरी बहिनके देखनेमें मैं बार बार खेंचूंगा। रे राक्षस-कुलमें अधम! तेरे मारे जाने से इस वनमें रहनेवाले लोग बिना बाधा इस वनमें रहेंगे। हिडिम्ब बोला, कि रे मनुष्य! तेरे इस व्यर्थ गर्जन और व्यर्थ बातें के कहनेसे क्या होना है? जैसा कह रहा है, उसे कर दिखाके अपनी बड़ाईको प्रगट कर, देर मत कर। तू अपनेको बली और पराक्रमी समझता है; पर तू कितना बल और वीर्य्य-वाला है, वह आज मुझसे मिलनेहीसे समझ सकेगा। मैं इस समय उनको नहीं मारूंगा, वे सुखसे सोये रहें। रे कुबुद्धे! कालमें तेरे समान कड़ी बात कहनेवालेहीको नष्ट करूं। पहिले तेरी देहसे रक्त पीऊंगा; फिर आगे उनको मारूंगा; अन्तमें इस अप्रिय करनेवाली-कोभी मार डालूगा। वैशम्पायन बोले, कि नरमांस खानेवाला राक्षस यह बात कहके हाथ बढ़ाकर क्रोधसे शत्रुनाशी भीमसेनपर दौड़ा। भीम-पराक्रमी भीमने हंसते हुए, उसीक्षण दौड़े आते हुए उस राक्षसके वेगसे चलाये हुए हाथोंको पकड़ लिया। वह बलपूर्व्वक उन फैलाये हुए हाथोंको थामके तथा उसको इस प्रकार खैंचके, कि जैसा सिंह छोटे मृगको पकड़ता है, वहां से आठ धनु अर्थात् बत्तीस हाथको दूरीपर ले गये। अनन्तर राक्षस बलपूर्व्वक पाण्डव भीमसेनसे पीड़ित होकर उनको कसके लपेटकर बड़े शब्दसे चिल्लाने लगा। कहीं उस शब्दको सुनके सुखसे सोये हुए भाइयोंकी नींद न टूटे, इस लिये महाबली भीमसेनने फिर बलपूर्व्वक उसे पकड़ा। तब हिडिम्ब और भीमसेन दोनों दोनों पर विक्रम प्रकाश करते हुए बलसे एक दूसरेको पकड़ने लगे। वे दोनों साठ वर्षके क्रोधित गजोंके समान वृक्षोंको तोड़ने तथा लताओंको उखाड़ने लगे। उनके उस बड़े कोलाहलसे नरश्रेष्ठ पाण्डवोंने माताके साथ जगकर सामने खड़ी हिडिम्बाको देखा।

हिडिम्बवधपर्व्वमें एकसौ चौवन अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि कुन्ती और पुरुष-श्रेष्ठ पाण्डवोंने जगकर हिडिम्बाका अलौकिक रूप देखकर अचरज माना। आगे कुन्ती उसको ओर भली भांति ताकके रूपकी शोभा देखकर अचरज मान शान्त और मीठी बातोंमें धीरे धीरे बोली, कि ऐ देवकन्या समान सुन्दरी! तुम कौन हो? ऐ वरवर्णिनि! तुम किसकी स्त्री हो? तुम किस कामके लिये और कहांसे यहां आयी हो? यदि तुम इस वनकी देवी वा अप्सरा हो, तो मुझसे कहो कि क्यों यहां खड़ी हो?

हिडिम्बा बोली, कि नीले बादलकी भांति जो यह हिडिम्ब नामक राक्षस है और मेरे वसनेका स्थान है, ऐ भामिनि! मैं उस राक्षस-नाथ हिडिम्बकी बहिन हूं। मेरे भाईने आपकी और आपके पुत्रोंकी हिंसा करनेको मुझको भेजा था। ऐ आर्य्ये! मैंने उस कुटिलबुद्धि भाईकी बातसे यहां आके कांचे सुवर्ण समान अङ्गयुक्त आपके महाबली पुत्रको देखा। ऐ शुभे! जो सर्व्वजीवोंके मन-मन्दिरमें घूमा फिरा करते हैं, मैं आपके पुत्रको देखतेही उसी मन्मथके वशमें होगयी हूं। मैंने मदनबाणको मनसे निकालना चाहा, पर किसी प्रकार समर्थ नहीं हुई;

तुमको पुत्र नहीं होगा, तवतक तुम्हारे साथ मिलूंगा। श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर राक्षसी हिड़िम्बा यह मानकर भीमसेनको ले करके उसीक्षण आकाश मार्गको चली गयी। आगे मनके समान तेज चलनेवाली वह राक्षसी परम मनोहर रूप धारणकर सर्व्व आभूषणोंसे बनठनकर और मीठी बोली बोलती हुई समय समय पर नाना स्थानोंमें भीमसेनके साथ आनन्द लूटने लगी। कभी सुन्दर पहाड़की चोटी पर, कभी मृग पक्षियोंके शब्दसे गूंजते हुए मनोहर देवमन्दिरमें, कभी वन-दुर्गमें, कभी फूले वृक्षोंसे सुहावनी सानुमें कभी नीले तथा लाल पद्मसे सुशोभित सुन्दर सरोवरमें, कभी वैदुर्य्यमणि और नदीके वालू-पूरित द्वीपमें कभी सुन्दर वन और अमृत समान जलसे सुशोभित अच्छे तीर्थ पहाड़ी नदीमें, कभी फलवाले पौधे और लतासे सुहावने वनमें, कभी हिमाचलके कुञ्जमें कभी खिले कमलोंके समान सोहते हुए अमल जल भरे तालमें, कभी मणिसुवर्ण पूर्ण सागर खण्डमें, कभी मनोहर नगर और उपवनमें, कभी पहाड़ोंकी कन्दरामें, कभी गुह्यकोंकी वास-भूमिमें, कभी तपस्वियोंके स्थानमें, अथवा कभी सदासे फलफूलयुक्त मनोहन मानस सरोवरमें क्रीड़ाकर पाण्डव भीमसेनको आनन्द देने लगी। आगे उस राक्षसीने भीमसेनसे भीमाकार बड़ा भारी, अति बलवीर्य्यवन्त, बड़ा चापधारी, महान् सत्त्ववान्, बड़े बड़े हाथयुक्त अति वेगवान, बड़ी माया रचनेवाला, शत्रु-नाशी अमनुष्य पर मनुष्य वीर्य्यसे उत्पन्न एक पुत्र प्रसव किया। उस पुत्रकी आंखे बड़ी विकट, मुंह बड़ा भारी, कान शङ्कुके समान, स्वर अति भयानक, होठोंका रंग तामेकी भांति, दांत कटीले, नाक लम्बी, छाती चौड़ी और पिण्डिका अर्थात पावोंके डिम्ब बढ़े और ऊंचे हुए थे। वह कुमार सम्पूर्ण पिशाच और राक्षसोंमें बड़ा विक्रमी हुआ। हे राजन्! उस बलवन्त वीरपुत्रने बालक होने परभी यौवनको प्राप्त किया और उसकी मनुष्य लोकमें प्रचलित सम्पूर्ण अस्त्रोंमें अति उन्नति हुई। राक्षसी जिस दिन गर्भ धरती है, उसी दिन प्रसव करती है और प्रसव किया हुआ बालकभी जन्म लेतेही बहुरूपी होकर मन-माना रूप धर सकता है। कमर, गर्द्दन, मुख, कान, और केश इन सब अङ्गोंके वेढब होने परभी अनेक प्रभायुक्त और बड़ा चाप-धारी हिड़िम्बाकुमार जन्म लेतेही प्रणाम करनेको पिता माताके पांवों पर गिरा; उन्होंनेभी उसका नाम रख दिया। उस बालकके घटके ऐसे उत्कच अर्थात् खड़े केश थे, सो हिड़िम्बाने उसको देखकर ऐसा कहा कि "इसके उत्कच घटकी भांति हैं।" इस लिये भीमसेनने उसका नाम "घटोत्कच" रखा; घटोत्कच स्वाधीन होने परभी पाण्डवोंका बड़ा प्रेमी था पाण्डवलोगभी उसका बड़ा स्नेह करते थे। आगे हिड़िम्बाने नियम के अनु-सार कामकर यह कहके कि "कि पतिसे रहनेका काल बीता" पाण्डवोंको सम्भाषण-पूर्व्वक अपना रूप ले लिया। राक्षसोंमें श्रेष्ठ घटोत्कचभी पितरोंसे यह कह कर कि "काम आनेसे आपहुंचगा" सम्भाषण पूर्व्वक उत्तर ओर पधारा। महात्मा महेन्द्रने विरुद्ध-वीर्य्य वर्ज्जित कर्णकी एक पुरुष मारनेवाली शक्तिके लिये इस महारथी घटोत्कचको विरोधी योद्धा बनाया था।

हिड़िम्बवध पर्व्वमें एकसौ छप्पन अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर वे महा-रथी महात्मा वीर पाण्डवगण जटाधारी होकर मृगचर्म्म तथा बल्कल पहिन कर माता कुन्तीके साथ तपस्वीका वेष लेकर शीघ्रतासे चलगया

करते हुए एक वनसे अन्यवनको, फिर उस-वनसे वनान्तरमें गमन करने लगे। जानेके समय पथमें मत्स्य, त्रिगर्त्त, पाञ्चाल, और कीचक देशोंके भीतरके सुन्दर सुन्दर वनखण्ड और नाना प्रकारके ताल तालाव देखने लगे। वे कहीं कहीं शीघ्रताके लिये कुन्तीको उठा लेते थे; और कहीं कहीं सहज चालमें सुखसे चलकर पीछे शीघ्र चलते थे। एक समय वे सम्पूर्ण वेद वेदाङ्ग और नीतिशास्त्र पढ़ रहे थे, ऐसे समयमें पितामह व्यासजीको देखा। महात्मा कृष्णद्वैपायनको देखतेही शत्रुनाशी पाण्डवगण माताके साथ उनको प्रणाम कर दोनों हाथ जोड़के सामने खड़े हुए। व्यासजी बोले, कि हे राजगण! मैंने पहिलेही जाना है, कि धृतराष्ट्रके पुत्रोंने अधर्म्मसे तुमको निकाल बाहर किया है। इसी लिये तुम्हारे परम मङ्गलके निमित्त यहां आया हूं! तुम उस विषयमें दुःखी मत होओ, यह सब तुम्हारे सुखके लियेही होरहे हैं। इसमें सन्देह नहीं कि, धृतराष्ट्रके बेटे और तुम, दोनों पक्ष मेरे समान स्नेहके पात्र हो, पर जो पक्ष दीन और बालक होता है, मानवलोग उस परही अधिक स्नेह प्रगट करते हैं! इस हेतु तुम पर इस समय मेरा अधिक स्नेह हो गया है। सुनो, इसीसे मैं तुम्हारा हित कार्य्य करना चाहता हूं। वह सामने सुन्दर विनारोगका नगर दीख पड़ता है, वहां हमारे लौटनेकी बाट ताकते हुए छिपकर वसे रहना। वैशम्पायन बोले, कि सत्यवतीसुत धर्म्मात्मा प्रभु व्यासजी पाण्डवोंको भली भांति ढाढ़स देकर संग लेकर उस देखी जाती हुई एकचक्रानगरीको जाने लगे और और कुन्तीसेभी फिर समझाकर बोले कि ऐ बेटि! जीती रहो, तेरे पुत्र धर्म्मशील महात्मा पुरुषोत्तम धर्म्मराज युधिष्ठिर धर्म्मानुसार धरतीमण्डलको जय कर पृथ्वी भरके सब भूपोंका शासन करेंगे। इसमें सन्देह नहीं है, कि वह भीमसेन और अर्ज्जुनके भुजबलसे सागरतक भूमण्डलको जीतकर भोग करेंगे। तुम्हारे महारथी पुत्र और माद्रीके कुमारगण सदा अपने राज्यमें प्रसन्न मन होकर सुखसे आनन्द करेंगे। यह राजसिंहगण धरती-मण्डलको जयकर राजसूय और अश्वमेधादि अनेक प्रचुर दक्षिणायुक्त यज्ञ करेंगे और भोग, ऐश्वर्य्य तथा सुखसे मित्रवर्गको कृपा दिखाकर परम आनन्दपूर्व्वक पितामहका राज्य भोगेंगे।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि महर्षि द्वैपायन यह कहकर उनको एक ब्राह्मणके घरमें वसा-कर युधिष्ठिरसे बोले, कि तुम यहां मेरी अपेक्षामें रहो, मैं फिर आऊंगा। तुम देश कालको समझकर काम करते रहोगे, तो परम हर्ष प्राप्त करोगे। हे नराधिप! उन सबोंने हाथ जोड़ जोड़ उनको बात मान ली। अनन्तर भगवान् महर्षि व्यास जहांसे आये थे, वहांको पधारे।

एकसौ सतावन अध्यायमें हिड़िम्ब
वधपर्व्व समाप्त।

जनमेजय बोले, कि हे द्विजश्रेष्ठ! उसके पीछे महारथी कुन्तीपुत्र पाण्डवोंने एकचक्रा नगरीमें रहकर क्या किया? वैशम्पायनजी बोले, कि महारथी कुन्तीपुत्र गण एकचक्रा नगरीमें ब्राह्मणके घर कुछ काल वसे। हे पृथ्वीनाथ! उनदिनों वे नित्य नाना सुन्दर प्रदेश, सरोवर और नदी देखते हुए भिक्षा-पूर्व्वक वहां के सब स्थानोंमें घूमते थे। क्रमशः वे अपने गुणसे नगरवालोंके प्रिय हुने। वे दिनको जो भिक्षा पाते थे। कुन्ती उनको उस भिक्षासे मिली हुई वस्तुको अलग अलग बांट देतीथी, तब वे भोजन करते थे। भिक्षासे जो कुछ मिल जाता था, उसका आधा भाग

युधिष्ठिर, अर्जुन, नकुल, सहदेव, कुन्ती भोजन करते थे और आधाभाग भीमसेन खा लेते थे। हे भरतश्रेष्ठ! महात्मा पाण्डवोंके इस प्रकार उस राज्यमें बसते हुए कुछ काल बीत गया। अनन्तर एकदिन युधिष्ठिर आदि सब भिक्षाको गये; दैववशसे भीमसेन भिक्षाको न जाकर कुन्तीके साथ घरमें रहे। अनन्तर कुन्तीने उस ब्राह्मणके घरसे अति कठोर रुलाई उठती सुना। हे राजन्! कुन्ती उनको अत्यन्त रोते और विलपते सुनकर अच्छे स्वभावके कारण चुपचाप बैठे नहीं रह सकी; उसका हृदय दुःखसे पूरित हुआ। तब कल्याणी कुन्ती भीमसेनसे करुणाभरी बातमें बोली, कि बेटा! हम लोग धृतराष्ट्रके पुत्रोंसे छिपकर इस ब्राह्मणसे सत्कार पाय और शोक-रहित होकर सुखसे बस रहे हैं; इससे मैं सदा इस सोचमें रहा करती हूं, कि जिस प्रकार दुर्व्वासा आदि महात्मालोग जिसके घरमें बसते हैं, उसका कोई हित काम कर देते हैं, वैसेही मैं क्योंकर इस ब्राह्मणका पलटेमें उपकार करूं। बेटा! उपकार करनेसे जो उसके पलटेमें उपकार करता है, वही पुरुष है; और जो जितना उपकार करता है, पलटेमें उसका उतना अधिक उपकार करना चाहिये। मुझको निश्चय जान पड़ता है, कि इस ब्राह्मणके घरमें कोई दुःख आपड़ा होगा, उस दुःखके दूर करनेके लिये यदि इनकी कुछ सहायता कर सकें, तौभी पलटेसे उपकार करना होगा। भीमसेन बोले, कि इस ब्राह्मण पर जिस कारण दुःख आ खड़ा हुआ है, उससे आप ज्ञात होवें; आगे मैं जानलेने पर कठिन भी हो, तो उसके दूर करनेका प्रयत्न करूंगा।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे पृथ्वीनाथ! वे इस प्रकार बात चीत कर रहे थे, कि ऐसे समयमें फिर उस ब्राह्मण और ब्राह्मणीकी कातर रुलाईकी ध्वनि सुन पड़ी। अनन्तर कुन्तीने इस प्रकार वेगसे कि कामधेनु अपने बछड़ेके बंधे रहनेसे जिस प्रकार उसके पास जाती है, उस महात्मा ब्राह्मणके अन्तःपुरमें जाकर देखा, कि ब्राह्मण महाराज मलिन मुख किये बैठे हैं और स्त्री, पुत्र तथा कन्याके सहित कहते हैं, कि यह संसार केवल दुःखकी जड़, अन्याधीन और अति हानिकारी है; अतएव ऐसे व्यर्थ जीवन पर धिक्कार है! देखो, जीने होसे परम दुःख और परम पीड़ा भोगनी पड़ती है, क्योंकि जीते हुए मनुष्यको निश्चयही दुःख घेर लेता है, एकही आत्मा धर्म, अर्थ और काम, इन तीनोंको एक दूसरेसे विना विरोध किये सेवा नहीं कर सकती है; सो इनके बुरा प्रयोग होने हीसे अनन्त दुःख आ गिरता है। कोई कोई पण्डित कहते हैं कि मोक्ष ही श्रेष्ठ है; पर हम संसारके प्रेमी हैं, हमसे वह किसी प्रकार होनेकी सम्भावना नहीं है; फिर अर्थ पानेके विषयमें भी सब प्रकारसे दुःख भोगना पड़ता है, देखो उपार्ज्जनकी चाह बड़ी दुःखदायी होती है, और उपार्ज्जन हुआ भी तो औरभी दुःख भोगना पड़ता है; क्योंकि प्राप्त किये हुए धन पर स्नेह बढ़ जाता है, सो यदि किसी प्रकार वह अर्थ नष्ट हुआ, तो पूर्व्वोक्त दुःखसेभी अधिक दुःख घेर लेता है। ऐसा कोई उपायभी नहीं दीखता, कि इस विपतसे बचें; अथवा स्त्री पुत्र लेकर कहीं भाग जावें। ब्राह्मणि! स्मरण करके देखो, कि जहां जहां मङ्गल होना था, मैं तहां जानेका प्रयत्न किया करता था, उस समय तुम मेरी बात पर ध्यान नहीं धरती थी। वह कुबुद्धि तुम्हारी ही है, कि जब कि मेरे बार बार अन्य स्थानमें जानेको चाहने परभी तुमने कहा था, कि "यह मेरी पैतृक भूमि है, यहां मैं जन्म लेकर बुढ़िया होगयी हूं, इसको त्याग नहीं सकती" प्यारी! तुम्हारे पिता, माता और पहिलेके बान्धवोंके स्वर्ग

पाने पर बहुत दिन बीत गये थे, तिस परभी क्यों तुमने यहां बसना चाहा था? तुमने जिस प्रकार वसुकी कामनासे मेरी बात पर ध्यान नहीं दिया था, वैसेही अब तुम्हारे वसु-नाशका समय आ पहुंचा है; इससे मुझको बड़ा दुःख हो रहा है, यहां तक, कि इस समय मेराही नाश उपस्थित हुआ है; क्योंकि मैं स्वयं जीता रहकर किसी प्रकार वसुको त्याग नहीं सकूंगा। तुम मेरी सहधर्म्मचारिणी, नित्य माता समान स्नेहकरनेवाली गुणवती और परमागति हुई हो। देवोंने तुम्हें मेरी मित्र सदृश निश्चय कर दिया है; पिता माताने तुमको गार्हस्थ्य धर्म्मभागिनी बनाया है, और तुम कुलीना, शीलवती, सन्तान की जननी साध्वी, अनुसारिणी और सदा व्रत-शीला भार्य्या हो; पहिले वरणपूर्व्वक यथा-विधि तुम्हारा पाणिग्रहण कर इस समय अपने जीवनको रक्षाके हेतु क्योंकर त्याग दूंगा? फिर जिस बालकको आज तक दाढ़ी मूछ नहीं निकली है, ऐसे अल्प अवस्थाके पुत्रहीको वा क्योंकर मैं स्वयं त्याग दे सकता हूं; महात्मा विधाताने सुयोग्यभर्त्ताके हाथमें सौंपनेके लिये जिस कन्याको न्यायपूर्व्वक मेरे पास रख दिया है, जिस कन्यासे मैं पितरोंके साथ दौहित्रज-लोकके पानेकी आशा रखता हूं, उस बालि-काको जन्मा कर क्योंकर स्वयं त्याग देनेको उद्यत होऊं। कोई कहा करते हैं, कि पिताका पुत्रही पर अधिक स्नेह होता है; और कोई कोई कहते हैं, कि कन्याही पर अधिक स्नेह होता है, पर मेरे लिये दोनो समान हैं। जिससे सुगति मिलती है, जिससे वंशकी रक्षा होती है, और जिससे नित्य सुख मिलता है, उस पापकी छूतसे रहित बालिकाको क्योंकर त्याग देनेका साहस धरूं? मैं यदि अपने जीवनकी बलि चढ़ाके परलोकको सिधारूं, तौभी दुःखी होऊंगा; क्योंकि मेरे इनको छोड़ जानेसे यह कभी नहीं जी सकेंगे। इसमेंसे किसी एकको भी त्याग देना बड़ा अनुचित और निठुर काम होगा; और अपना जीवन त्यागनेसेभी यह मेरे बिना जीवन देंगे; अतएव मैं गहरी विपतमें पड़ा हूं। हाय! इस विपतसे बचनेका उपाय नहीं दीखता! अहो! मुझ-पर धिक्कार है! आज परिवार-सहित मेरी कोई गति नहीं है, सो परिवार-सहित जीवन छोड़नाही मेरे लिये मङ्गलदायी है; मेरा जीवित रहना कभी उचित नहीं है।

बकवधपर्व्वमें एकसौ अट्ठावन
अध्याय समाप्त।

ब्राह्मणी बोली, कि हे ब्राह्मण! साधा-रण मनुष्यकी भांति शोक करना कदापि आपको नहीं सोहता है; क्योंकि आप विद्वान हैं। अब दुःख करनेका समय नहीं है। भूमण्डल परके सब लोगोंको अवश्यही मरना पड़ेगा, अतएव अवश्य होनेवाले विषयका दुःख करना उचित नहीं है। लोग अपने सुखके लियेही स्त्री, पुत्र, कन्या, इन सबोंकी प्रार्थना करते हैं, अतएव अपनी सुबुद्धिसे मनः-पीड़ा त्याग देवें, मैं स्वयं वहां जाऊंगी। संसारमें नारीके लिये सनातन धर्म्म यही है, कि वह प्राण दे करकेभी पतिका हित करेगी; अतएव उस कर्म्मके किये जाने पर वह इस लोकमें यशदेनेवाला और परलोकमें अक्षय तथा आपकाभी सुखदायी होगा। हे द्विज-श्रेष्ठ! मैं जो कहती हूं, वह श्रेष्ठ धर्म्म है; ऐसा करनेसे आपके लियेभी प्रचुर धर्म्म और अर्थका कार्य्य होगा। देखिये, जिस अभिप्रायसे स्त्रीकी प्रार्थना की जाती है, वह मुझसे आपको सिद्ध होगया है; मैं आपसे पुत्र और कन्या प्रसव कर उऋण हो चुकी हूं। आप इस पुत्र और कन्याके पालने पोसने और रखने

भालनेकी समर्थ हैं ; मुझसे वह भली प्रकार सिद्ध होना कदापि सम्भव नहीं है। आप मेरे प्राण और धन सबके ईश्वर हैं, आपके बिना मैं क्योंकर जीऊंगी? और आपके न रहनेसे क्योंकर दो शिशु सन्तान जी सकेंगी? आपके बिना मैं विधवा और अनाथ होकर जीती रहनेसे भी क्योंकर सुपथमें रहकर इन दो बच्चोंको जिला सकूंगी? आपके साथ वैवाहिक सम्बन्धके अयोग्य कलङ्कित और गर्व्वित जन यदि आपकी इस कन्याकी प्रार्थना करें, तो मैं क्योंकर उसकी रक्षा कर सकूंगी? जिस प्रकार पक्षी मिट्टीपर पड़ी हुई मछलीको चाहते हैं, वैसेही मनुष्यगण पतिहीना रमणीकी कामना करते हैं। हे द्विजश्रेष्ठ! मेरे पतिहीना होनेसे दुरात्मा लोग मेरी कामना कर मेरे चित्तको टाल सकते हैं, ऐसा होनेसे मैं क्योंकर साधुओंके अभीष्ट पथमें रह सकूंगी? और क्योंकर आपके वंशकी एकही कन्या इस निर्दोषी बालाको पितृ पितामहोंके पथमें नियोग कर सकूंगी और क्योंकर फिर उस पूरे अभावके कालमें इस पितृहीन अनाथ बालकको आप जैसे धर्म्मज्ञ हैं, उसके योग्य वाञ्छित विद्या पढ़ा सकूंगी? अयोग्य जन, मुझको हरा कर, शूद्रोंके वेद सुनानेकी प्रार्थनाके सदृश इस अनाथ बालाको मांगेंगे, तिस पर आपके गुणोंसे सुहावनी इस कन्याको यदि मैं अयोग्य वरको न देना चाहूं, तो कौआ जैसे यज्ञकी वस्तु लूट खाता है, तैसेही वे लूट कर इसको बलपूर्व्वक हर ले जायंगे। हे ब्रह्मन्! तब मैं लोकोंमें अनादर की पात्री होऊंगी, और नहीं कह सकती कि मेरी कैसी कुगति होगी ; ऐसी दशामें आपके पुत्रको आपके असदृश होते और आपकी कन्याको अयोग्य जनके वशमें जाते देखकर, इसमें सन्देह नहीं है, कि मैं प्राण छोड़ूंगी। तब कुछभी सन्देह नहीं कि आपके और मेरे बिना यह दो बच्चे बिना जलकी मछलीकी भांति प्राण छोड़ेंगे ; अतएव समझ लेवें कि आपके न रहने से मैं और दो बच्चे इन तीनोंहीके जीवन निश्चय नष्ट होंगे ; सो मेरी समझमें मुझको त्याग देनाही आपको उचित है। हे ब्रह्मन्! धर्म्म जाननेवाले लोग कहा करते हैं, कि पुत्रवाली स्त्रियां यदि पतिके पहिले परलोक को सिधारें, तो वह उनके लिये बड़ा भारी सौभाग्य है। मैं आपके हितके लिये, पुत्र, कन्या, बान्धव और जीवन सब त्यागनेको उद्यत हुई हूं। स्त्रियोंके लिये नाना यज्ञ, तप, नियम और दान इन सब कामोंसे सदा पतिका प्रिय और हित करनाही अधिक फलदायी है ; सो मैंने जिसका करना ठान लिया है, वही इष्ट परमधर्म्म और आपके तथा आपके वंशका मङ्गल करनेवाला है ; पण्डितोंका मत यह है, कि स्त्री, पुत्र, प्यारे मित्र और अर्थ चाहे जितनी इष्ट वस्तु क्यों न हो, वह सब विपतसे बचनेके लिये रखी जाती हैं ; और विपतसे बचनेके लिये धनको रखना चाहिये ; धनके द्वारा स्त्रीको बचाना और आत्माको चाहे धनके द्वारा हो वा स्त्रीके द्वारा हो, सदा रक्षा करनी चाहिये। पण्डितोंने निश्चय किया है, कि दृष्ट और अदृष्ट दोनों फलोंहीके लिये स्त्री, पुत्र, धन और गृह यह सब करना चाहिये एक ओर सम्पूर्ण कुलको और दूसरी ओर आत्माको रखकर तौल करनेसे, सम्पूर्ण कुलभी आत्माके समान नहीं होते ; अतएव हे आर्य्य! आप मुझसे काल पूरा कर लीजिये। बुद्धिके अनुसार अपनी रक्षा कीजिये—मुझको जानेकी आज्ञा दीजिये ; आप इन दो सन्तानों का पालन करना। धर्म्म जाननेवालोंने कहा है, कि स्त्रियोंका वध नहीं करना चाहिये और राक्षस लोग धर्म्मके जानकार होते हैं, सो वह राक्षस मुझको न मारकर त्यागभी दे सकता है।

हे धर्मज्ञ! जब कि यहां पुरुषका वध निश्चय है और स्त्रीके वधके विषयमें सन्देह है, तब मुझको ही भेजना योग्य है। मैंने बहुत सुख कर लिया है, मेरे बहुत कुछ प्रियकार्य हो गये हैं, मैंने बहुत धर्म्मार्जन किया है और आपसे प्यारी सन्तानभी पाचुकी हूं, पर जीवन छोड़नेमें मुझे दुःख नहीं है। मेरी सन्तान हुई हैं, मैं बुढ़ाय गयी हूं, और आपके प्रिय कार्य्य करनेमें सदासे मेरी चेष्टा है, इन सबोंकी आलोचना करकेही ऐसा निश्चय कर लिया है। आप मुझको त्याग देकर दूसरी स्त्री पा सकेंगे; ऐसा करनेसे आपका धर्म्मभी फिर प्रतिष्ठित होगा; हे मङ्गलमय! पुरुषका अधिक स्त्री कर लेनेसेभी अधर्म्म नहीं होता। पर स्त्रीके पूर्व्वपतिको छोड़कर अन्य पुरुषके वशमें जानेसे बड़ा अधर्म्म होता है। आप इन सबोंको भलीप्रकार आलोचना करके अपना नाश करना अनुचित मानकर अपने कुल, इन दो बच्चे और आत्माकी रक्षा करें। वैशम्पायनजी बोले, कि हे भारत! वह ब्राह्मण ब्राह्मणीकी यह बातें सुनकर उसको गले लगाकरके उसके साथ अति दुःखी चित्तसे आंसू बहाने लगा।

वकबधपर्व्वमें एकसौ उनसठ
अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर कन्या उन दुःखी पितामाताकी बात आद्योपान्त सुनकर खेदयुक्त चित्तसे बोली, कि आप क्यों अति दुःखी होकर अनाथके समान रो रहे हैं? सम्प्रति मेरी बात सुनकर जो उचित हो, करें। इसमें सन्देह नहीं है, कि आप धर्म्मके अनुसार मुझको कभी न कभी अवश्य त्याग देंगे, सो मेरे समान अवश्य छोड़ी जानेवालीको त्याग देकर सबकी रक्षा करें। "सन्तानसे तरेंगे" ऐसा समझ करके ही लोग सन्तानकी कामना करते हैं; अतएव आप इस कन्यारूपी नावसे वर्तमान विपतके समुद्रको पार करें। आत्मजसे लोग इस लोक और परलोक सर्व्वत्र विपतसे उद्धार होजाते हैं, इसलिये पण्डित लोग उसको पुत्र कहा करते हैं, पितृलोकोंके उद्धारके निमित्त ही मुझसे नातीकी आशा करते हैं, पर मैं नातीकी अपेक्षा न करके स्वयं पिताका जीवन बचा कर उनका उद्धार करूंगी! हे पिता! यदि आप परलोकको सिधारें, तो इसमें सन्देह नहीं है, कि मेरा शिशु भाई स्वल्प कालहीके बीचमें कालके वशमें हो जायगा, आपके और भाईके न रहनेसे एक बारही पितरोंका पिण्ड लोप होकर बड़ा अनिष्ट होगा; और मैं तब पिता और भ्राताके बिना बड़ी दुःखी हूंगी। मैं तब दुःख पाकर अनुचित मृत्युके वशमें हो जाऊंगी। आपके स्वस्थ होकर इस विपतसे एकबारही मुक्त होनेसे माता, शिशु भ्राता, वंश और सब रक्षित होंगे। विचारिये, कि पुत्र अपना स्वरूप, स्त्री मित्रका स्वरूप और कन्या कष्टका स्वरूप है। सो कष्टके स्वरूप कन्याके द्वारा अपनी रक्षा करें मुझको धर्म्ममें नियुक्त कर देवें। हे पिता! मैं बालिका हूं, सो आपके बिना अनाथ और दीन होकर सदा जहां तहां जाना पड़ेगा; अतएव मैं इस कठिन कामको कर कुलकी रक्षा पूर्व्वक फल प्राप्त करूंगी। हे द्विजश्रेष्ठ! यदि आप मुझे छोड़कर उस राक्षसके आगे जांय, तो मैं बड़ी कातर हूंगी, अतएव मुझ पर कृपादृष्टि करें। हे श्रेष्ठ! मुझको, धर्म्म और वंशकी बचानेके लिये अपनी रक्षा करें। एक समय मुझको तो त्यागनाही पड़ेगा, फिर अबही त्याग देनेमें क्या हानि है अवश्य किये जानेवाले कामके लिये काल गंवाना उचित नहीं है। इससे अधिक दुःखकी बात क्या होगी, कि

आपके स्वर्गको सिधारने पर हमको सदा अन्न मांग मांग कर कुत्तोंकी नाईं फिरना पड़ेगा, और आपके बान्धवोंके समेत इस दुःखसे मुक्त और स्वस्थ होनेसे अमर लोकमें सुखसे बस सकूंगे। यह भी हमारा सुना हुआ है, कि ऐसे अनुचित काममें कन्या देनेसे परभी पितरोंको जल देनेसे वे हित करनेवाले बने रहते हैं; अतएव आप इस काममें मुझको सौंप देकर स्वयं जीवित रहके यदि पितरोंको जल दें, तो वे हित करनेवाले होंगे।

उस कन्याकी इस प्रकार नाना दुःखभरी बातें सुनकर पिता, माता और कन्या तीनों रोने लगे। अनन्तर बालक पुत्र उन सबोंको रोते देखकर प्रसन्न नेत्र और हंसते हुए मुखसे मीठी और अस्पष्ट बातोंमें कहने लगा, कि बाबा! मत रोओ। माओ! मत रो। बहिन! मत रो। यह कहता हुआ हरेकके पास एक एक बार जाने लगा। आगे एक तृण उठाकर आनन्दसे फिर बोला, कि इनसे मैं उस राक्षस को मारूंगा। उसके पिता, माता और बहिन यद्यपि बड़े दुःखसे कातर थीं, तौभी उस समय उस बालककी अस्पष्ट बात सुनकर उनको बड़ा हर्ष हुआ। अनन्तर कुन्ती यह समझकर, कि "यह अभिप्राय प्रकाश करनेका समय है" उनके निकट जापहुंची। अनन्तर मरे हुओंको अमृतसे जिलाने की नाईं उनसे बोलने लगी।

बक बधपर्व्वमें एकसौ साठ
अध्याय समाप्त।

कुन्ती बोली, मैं जाना चाहती हूं कि ऐसे दुःखका कारण क्या है? क्योंकि यदि उससे पार पानेका उपाय बन पड़े, तो करूंगी। ब्राह्मण बोले, कि ऐ तपोधने! तुम जो कहती हो, वह साधुओंके योग्यही है; पर यह दुःख दूर करना मनुष्यकी शक्तिके बाहर है। इस नगरके निकट बक नामक एक महाबली राक्षस रहता है; वह पुरुषादक इस नगर और प्रदेश का अधीश है, मनुष्य मांससे पुष्ट, बली और दुष्टबुद्धि वह असुरराज सदा इस देशकी रक्षा करता है। इस देशके राक्षसी बलसे रक्षित होनेके कारण अन्य देश वा किसी प्राणीसे हमारे भयकी सम्भावना नहीं है। एक गाड़ी अन्न और दो भैंसे और वह मनुष्य जो उन्हें ले जाता है, यह सब उस राक्षसके भोजनके लिये वेतनके स्वरूपमें निर्द्दिष्ट हैं, इस देश का हरेक गृहस्थ अपनी अपनी पारीमें एक एक दिनके हिसाबसे नित्य वह भोजन पहुंचाता है। बहुत बर्षोंके पीछे एक एक गृहस्थके लिये यह कठोर पारी आती है। यदि कभी कोई इससे बचनेकी चेष्टा करता है, तो वह राक्षस स्त्री पुत्रोंके साथ उसको मार कर खाजाता है। इस स्थलमें वेत्रकीय गृह नामक स्थानमें एक राजा है; वह बुद्धिहीन भूप नीतिको आश्रय नहीं करता; यद्यपि राक्षसके बधके लिये वह स्वयं असमर्थ है, पर यत्नसे ऐसा कोई उपाय नहीं ढूंढ़ता, कि इन सब लोगोंके लिये सदा कुशल हो जाय। हमलोग जब उस दुर्ब्बल बुरे राजाके भरोसे सदा भयभीत होकरकेभी उसके अधिकारमें रहते हैं, तब अवश्य ही इस दुःखके भोगनेके योग्य हैं। देखो, ब्राह्मणको कोई अपनी भूमिमें बसा नहीं सकता, क्योंकि वे किसीकी इच्छासे नहीं चलते। वे अपने गुणसे कामचारी पक्षीके सदृश मनमाना वास करते हैं, पर मैंने उसका विपरीत काम किया है और कहाभी है, कि "पहिले भूप, तब स्त्री और पीछे धनार्ज्जन करना, इन तीन विषयोंके सञ्चित होने पर ज्ञाति और पुत्रोंका उद्धार होता है।" इन तीन विषयोंके उपार्ज्जनके विषयमें भी मैंने बड़ा विपरीत काम किया है; सो अब इस विपतके समुद्रमें

गिरकर बड़ा दुःखो हो रहा हूं। आज हमारी कुलनाशी वह पारी आयी है—राचसके भोजनके लिये वेतनके स्वरूपमें एक मनुष्य मुझको देना पड़ेगा। पर मेरे पास इतना धन नहीं है, कि किसी स्थानसे एक मनुष्यको मोल लेकर दूं, और किसी स्वजनको भी नहीं दे सकूंगा, सो ऐसा कोई उपाय नहीं दीखता, कि जिससे उस राचसके हाथसे बच सकूं; इस लिये अति अपार दुःखके समुद्रमें डूबा हूं। अतएव समझता हूं, कि मैं सब बान्धवोंके साथ उस राचसके पास जाऊंगा, कि जिससे वह नीचाशय राचस एक साथ हम सबोंको खा ले।

बकवधपर्व्वमें एकसौ एकसठ अध्याय समाप्त।

कुन्ती बोली, कि हे ब्राह्मण! तुम इस भयसे दुःख मत मानो, मैंने उस राचससे बचनेका उपाय निश्चय किया है। तुम्हारा एक शिशु पुत्र और एकही व्रतशीला कन्या है, उनमेंसे किसीका, तुम्हारी स्त्रीका अथवा स्वयं तुम्हारा जाना मेरी समझमें उचित नहीं है। मेरे पांच पुत्र हैं, उनमेंसे एक तुम्हारे उपकारके लिये उस पापी राचसके यहां जायगा।

ब्राह्मण बोले, कि मैं अपना जीवन बचानेके लिये कभी ऐसा काम नहीं कर सकूंगा, मैं अपने लिये ब्राह्मण और अतिथिके प्राण लेनेका साहस नहीं कर सकता; जो नीच वंशसे उत्पन्न और अधार्म्मिक हैं, वेभी ऐसे काममें हाथ नहीं डालते हैं। ब्राह्मणके उपकारके लिये जो यह विधि बनी है, कि आत्मजको त्याग देना, मुझको वही मङ्गलदायी समझना चाहिये; और मैं वैसाही करना चाहता हूं। ब्राह्मणवध और आत्महत्या इन दोनोंमें आत्महत्याही मङ्गल-युक्त है। क्योंकि, ब्रह्म-वध बड़ा पाप है, उसके करनेसे फिर बचनेका उपाय नहीं रह जाता। मैं समझता हूं, कि अनिच्छासे ब्रह्मवध करनेसे अनिच्छासे आत्महत्या करना मेरे लिये अच्छा है और मैं स्वयं कुछ आत्महत्यामें हाथ नहीं डाल रहा हूं, अन्यजन मुझको मारेगा, इसका पाप नहीं लग सकता है; जान नहीं पड़ता, कि बुद्धिसे अथवा छलपूर्व्वक ब्रह्मवध करके सहजमें पार पा सकूंगा। पण्डितोंने कहा है, कि अतिथि वा शरण लिये हुएको त्याग देना और मांगनेवाले को मारडालना अति निठुर अनुचित कार्य्य है। और आपद्धर्म्मके जानकार पहिलेके महात्माओंने कहा है, कि निन्दित और निठुर कर्म्म कभी मत करना; अतएव आज मैं स्त्रीके साथ प्राण छोड़ूंगा, मेरे लिये यही अच्छा है; मैं किसी प्रकारसे ब्राह्मण-हत्या की सम्मति नहीं दे सकता। कुन्ती बोली, कि हे ब्राह्मन्! मेरा भी यह निश्चय किया हुआ है, कि ब्राह्मणोंकी अवश्य रचा करनी पड़ेगी। सौ पुत्र भी होवें, तौभी पुत्र कभी मेरे अनादरकी सामग्री नहीं होते। मेरे पुत्र वीर्य्यवन्त, तेजस्वी और मन्त्रमें सिद्ध हैं, सो वह राचस उनको नष्ट करनेमें समर्थ नहीं होगा। मुझको निश्चय जान पड़ता है, कि मेरा पुत्र राचसको वह सब खानेकी वस्तु पहुंचाभी देगा और अपनी रचाभी करेगा। मैंने पहिले देखा है, कि बड़े बड़े बली बहुत राचस आकर मेरे पुत्रोंसे यमराजके घर भेजे गये। हे ब्राह्मन्! यह बात तुम किसीसे किसी प्रकार प्रकाश मत करना; प्रकाश होनेसे विद्यार्थी लोग बड़ी इच्छासे इस विद्याके सीखनेके लिये मेरे पुत्रोंको सदा दिक करेंगे मेरे पुत्र गुरु की आज्ञा विना अन्य किसीको जो विद्या देंगे, उस विद्यासे फिर काम नहीं कर सकेंगे। ब्राह्मणने कुन्तीकी यह बात सुनकर स्त्रीके साथ अति प्रसन्न होकर अमृत सदृश उस बातको आदर पूर्व्वक मान लिया। आगे कुन्ती और ब्राह्मणने एकत्र होकर

पवननन्दन भीमको वह कठोर कार्य्य करनेको कहा। भीमसेननेभी उसमें सम्मति देकर प्रत्युत्तर किया था।

बकवधपर्व्वमें एकसौ बासठ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भारत! भीमसेनके उस कामके करने की प्रतिज्ञा करने पर सम्पूर्ण पाण्डव भिक्षाकी वस्तु लेकर गृहको लौट आये। अनन्तर युधिष्ठिरने आकार द्वारा वह सब व्यौरा जानकर निरालेमें बैठकर मातासे पूछा, कि माता! भीम-पराक्रमी भीम किस कामको जा रहा है? क्या आपने इसमें आज्ञा दी है? अथवा भीमने स्वयंही इसके करनेकी इच्छा की है? कुन्ती बोली, कि यह शत्रुनाशी वृकोदर मेरी ही बातसे ब्राह्मणके उपकार और इस नगरको मुक्त करनेके लिये यह भारी काम पूरा करेगा।

युधिष्ठिर बोले, कि आपने यह कैसा कठिन भयानक साहस किया है? साधुगण कभी पुत्र त्यागनेकी प्रशंसा नहीं करते। और दूसरेके पुत्र बचानेके लिये अपना पुत्र त्यागना क्योंकर उचित हो सकता है? आज आपने पुत्र तजकर लोकाचारके विपरीत और वेदके विरुद्ध कर्म किया है। जिनके भुजबलके आसरे में हम सुखसे सो रहे हैं; जिनके भुजबलके भरोसे हम नीचाशय दुर्य्योधनादिसे लूट लिये हुए राज्यको लौटा पानेकी आशामें हैं, जिसके अपरिमित वीर्य्यको स्मरणकर दुर्य्योधन और शकुनिको दुःखके मारे रात्रिको निद्रा नहीं आती; जिस वीरके भुजवीर्य्यसे हम जतुगृहसे और दूसरी विपदोंसे पार पागये हैं और जिससे पुरोचन यमराजके घर भेजा गया; यहां तक कि जिसके भुजवीर्य्यकी आशासे हमको ऐसा विश्वास है, कि मानो हम धृतराष्ट्रके पुत्रोंको मारकर इस हरी हुई धरतीको पा चुके हैं; आपने कैसी बुद्धिसे उन भीमसेनको त्याग देना निश्चय किया है? क्या आपने अपना ज्ञान खो दिया है? क्या दुःखसे आपको बुद्धि जाती रही है? कुन्ती बोली, कि हे युधिष्ठिर! तुम वृकोदरके लिये दुःख मत करो; मैंने बुद्धिकी अल्पतासे इस काममें हाथ नहीं डाला है। बेटा! उस कामके पलटेमें उपकार करनेके लिये, कि ब्राह्मणके घरमें धृतराष्ट्रके पुत्रोंके न जाननेमें सत्कारके साथ हम बिना कष्ट बस रहे हैं, मैंने इस कामका करना निश्चय कर लिया है, क्योंकि उपकार करनेसे जो लोग पलटेमें उपकार करते हैं, वास्तवमें वही पुरुष हैं, विशेष जो जितना उपकार करता है, पलटेमें उसका उससे अधिक उपकार करना ही उचित है। जतुगृहमें भीमसेनका जितना विक्रम देखा है, और उसने जैसे हिड़िम्बको मारडाला है, उससे मुझको विश्वास हो गया है, कि उसके दोनों हाथोंका बल दश सहस्र हाथीके समान है! जिस वृकोदरने हाथीकी भांति तुमको वारणावत नगरसे निकाला था, उस भीमके समान बली इस धरती भरमें दीख नहीं पड़ता। जान पड़ता है, कि मेरा भीम योद्धोंमें श्रेष्ठ वज्रधरनेवाले इन्द्रकोभी युद्धमें परास्त कर सकता है। हे पाण्डवश्रेष्ठ! भीमसेन जन्म लेतेही मेरी गोदसे पहाड़ पर गिर गया था, उससे उसके शरीरकी रगड़से पत्थरके टुकड़े पिसकर चूर चूर होगये थे, इस कारणसेभी मैं भीमका बल जानती हूं, इस लिये ब्राह्मणके शत्रुको नष्ट करनेका संकल्प किया है। मैंने लोभ, अज्ञानता वा मोहसे इस काममें हाथ नहीं डाला है, बुद्धिसेही इस धर्म्मकार्य्यमें प्रवृत्त हुई हूं। हे युधिष्ठिर! इस कार्य्यसे दो प्रयोजन सिद्ध होंगे; एक यह है, कि यहां बसनेसे पलटेमें उपकार और दूसरा महाधर्म्म। मैं निश्चय

जानती हूं, कि जो क्षत्रिय क्षत्रियका प्राण बचाते हैं, वह इस लोक और परलोकमें अत्यन्त यश प्राप्त करते हैं; इसमें सन्देह नहीं है, कि क्षत्रिय होकर वैश्यकी सहायता करे, तो भूम उलमें सर्व्वत्र प्रजा उसकी प्रेमी होती है। क्षत्रिय शूद्र वा शरण लिये हुए जनको विपतसे बचावे, तो वह ऐश्वर्य्ययुक्त राजोंसे पूजे जाने-वाले वंशमें जन्म लेता है। हे पौरवनन्दन! पूर्व्वकालमें अति तेज बुद्धिमान भगवान् व्यास-देवने मुझको यह सब उपदेश किये थे, इसी लिये मैंने इस कामको करनेकी इच्छा की है।

बकवधपर्व्वमें एकसौ तिरसठ अध्याय समाप्त।

माताकी यह बातें सुनकर युधिष्ठिर बोले, कि ऐ माता! आपने इस विपतमें पड़े हुए ब्राह्मण पर कृपा दिखाकर बुद्धिसे जो यह कार्य्य किया है, वह बहुतही अच्छा हुआ है। इसीसे, कि आप ब्राह्मण पर दयावती हुई हैं इसमें सन्देह नहीं है, कि भीमसेन मनुष्य-भोजी राक्षसका नाश कर लौट आवेगा। आप यत्न पूर्व्वक ब्राह्मणसे कहकर यह स्वीकार करा लेवा, कि नगरवाले यह बात न जान सकें। वैशम्पायनजी बोले, कि रात्रि बीतने पर भीम-सेनने भोजनकी सामग्री लेकर वहांकी यात्रा की, जहां वह राक्षस था! अनन्तर उस राक्षसके बसनेके घरमें घुसकर वह सब भोज-नकी सामग्री आपही खाते हुए उसको नाम लेकर पुकारने लगे, इससे बड़ा भारी और अति तेजस्वी वह राक्षस भीमकी बातसे क्रोधित होकर भूमि विदारण करता हुआ वहां आगया, जहां भीम बैठे थे। उस राक्षसकी आंखें, दाढ़ी और केश लाल, मुंह कान तक फैला हुआ और कान शङ्कुके समान थे। ऐसा बिकट भयानक वह राक्षस भीमसेनको अन्न खाते देखकर दांतोंसे होठोंको काटता हुआ तीन रेखाओंके साथ भौंहको ऊपर चढ़ाय दोनों आंखें फैलाके क्रोधसे बोला, कि किस पर यह कुबुद्धि चढ़ी है, कि यमराजके घरको जानेको मेरे भोजनके लिये मंगाया हुआ अन्न मेरे सामनेही खा रहा है? हे भारत! भीमसेन यह बात सुनने परभी हंसतेही हंसते राक्षसका अनादर कर मुंहको फेर कर भोजन करने लगे; उसकी ओर आंख तक नहीं फेरी, तब वह मांसभोजी भयानक शब्दसे दोनों हाथ उठाकर भीमसेनको मार डालनेके लिये दौड़ा। शत्रुनाशी वृकोदर तब राक्षसको अनादरसे एक बार देखकर भोजन करने लगे। राक्षसने तब क्रोधसे जलकर भीमसेनके पीछे खड़ा होके दोनों मुष्टियोंसे पीठ पर मारा! भीमसेनने उस बली राक्षसके दोनो भुजोंकी चोटसे बहुत घायल होने परभी उस पर आंखें नहीं फेरी; एकमनसे भोजनमें प्रवृत्त रहे। आगे महाबली राक्षस अति क्रोधसे अग्निके समान होकर मारनेके लिये वृक्ष उखाड़कर फिर उनपर दौड़ा। उसके अनन्तर महाबली पुरुषेन्द्र भीमसेन धीरे धीरे वह अन्न खा लेकर मुंह धो करके प्रसन्न चित्तसे युद्धके लिये खड़े होगये। क्रोधके वशमें होकर राक्षसके भीमसेन पर उस वृक्षको फेंकनेसे वीर्य्यवन्त भीमसेनने हंस करके उसी क्षण बांये हाथसे उसको थाम लिया। यह देखकर बलवन्त राक्षस भांति भांतिके वृक्ष उखाड़ कर भीम पर फेंकने लगा और भीम भी वैसेही वृक्ष उठा कर उस पर फेंकने लगे। महाराज! तब मनुष्यके साथ उस राक्षसराजका ऐसा भयानक वृक्षयुद्ध होने लगा, कि उससे वनोंके वृक्ष नष्ट होने लगे। आगे मांसभोजी बकने अपना नाम कह कह कर कूदता हुआ महाबली भीमसेनको दोनों हाथोंसे पकड़ लिया। तब महाभुज बलवन्त भीमसेन उस महावीर्य्यवान फुर्तीवाले राक्षसको पूरा बल प्रकट करते देखकर बलसे उसे खैंचने

लगे। राक्षस भीमसे खींचे जाने परभी उनको बलसे खींचने लगा; इससे मनुष्यभोजीही बहुत थकने लगा। उन दोनोंके वेगसे धरती डोली और निकटके बड़े बड़े वृक्ष टूटे। अनन्तर वृकोदर राक्षसको बल खोते देखकर घुटनोंसे धरती पर पीस पीस कर मारने लगे। आगे उसकी पीठ पर घुटनोंको लगा कर पीस करके दहिने हाथसे गलेको और बांये हाथसे कमरको पकड़ा तथा उसको द्विगुणित अर्थात् दो भागोंमें तोड़ डाला; तब राक्षस घोर शब्द करने लगा। हे पृथ्वीनाथ! जब भीमसेनसे विकट राक्षस तोड़ा गया, तब उसके मुखसे रक्तवमन होने लगा।

बकवधपर्व्वमें एकसौ चौंसठ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि महाराज! बड़े भारी पहाड़ समान राक्षस बकने देह टूटने पर बड़ा कोलाहल मचाता हुआ प्राण छोड़ा। उसके परिवारवर्ग उस शब्दसे भय खाकर नौकर चाकरोंके साथ घरसे निकल-कर भीमके पास आगये। मारनेमें तेजमहा-बली भीमसेनने उनको भयभीत और ज्ञान-रहित देखकर समझाया और यह कहकर, उनसे प्रतिज्ञा करा ली, कि तुम फिर कभी मनुष्य न मारना, यदि मारोगे, तो तुमकोभी तुरन्त इसी प्रकार नष्ट होना पड़ेगा। राक्षसोंने वृकोदरकी यह बात सुनकर उस पर सम्मत प्रकाश करके उस नियमको मान लिया। हे भारत! तबसे नगरवाले उस नगरमें राक्षसोंको शान्तस्वभावी देखते थे। अनन्तर भीमसेन उस मरे हुए राक्षसको लेकर नगरके द्वारपर डाल करके लोगोंके न देखनेमें चले गये। राक्षस बकके ज्ञातिवर्ग भीमसे बल-पूर्व्वक उसको मारे जाते देखकर भयसे चित्तको मलिन कर इधर उधर भागे। भीमसेनने उस राक्षसराजको मारकर ब्राह्मणके घरमें जाकर आद्योपान्त सम्पूर्ण कथा कह सुनायी। अनन्तर उस प्रातःकालहीमें नगरवाले नगरसे निकलतेही पर्व्वतकी चोटीके समान बड़े भारी राक्षस बकको रक्तसे न्हाये मारे गये और गिरे हुए देखकर लोमाञ्चित हुए; और एकचक्रानगरीके पुरमें जाकर वह समाचार दिया। हे राजन्! तब सहस्रों नगरवाले राक्षस बकको देखनेके लिये एकत्रित हुए। हे पृथ्वीनाथ! उन सबोंने अलौकिक कार्य्य देखकर अचरज माना और सब लोग देवतोंकी उपासना करने लगे। आगे यह बूझने लगे; कि "आज राक्षसको भोजन देनेकी किसकी पारी थी।" अन्तमें सब ठीक जान-कर सबोंने उस ब्राह्मणके पास जाकर विशेष समाचार पूछा। सम्पूर्ण नगरवालोंके ब्राह्मणसे बार बार पूछने पर विप्रेन्द्र पाण्डवोंको गोपन करनेके लिये बोले, कि मैं राक्षसका भोजन देनेकी आज्ञा पाकर बन्धुओंके साथ रो रहा था, कि ऐसे समयमें एक मन्त्रज्ञ सिद्ध महात्मा ब्राह्मण मुझको उस दशामें देखकर प्रश्न करके इस नगरके घोर क्लेशके वृत्तान्तसे ज्ञात होकर ढाढ़स देकर हंसते हुए बोले, कि मैं उस दुरात्माके निकट यह अन्न ले जाऊंगा, मेरे लिये कुछ भय मत करना। यह कहकर वह अन्न लेकर राक्षस बकके वनमें गये थे। इसमें सन्देह नहीं है, कि उन्होंनेही लोकोंके हितके निमित्त यह काम किया होगा। अनन्तर यह वृत्तान्त सुनकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सब अचरज मानके और प्रसन्न होकर ब्रह्ममहोत्सव करने लगे। नगरवाले उस आश्चर्य्य वृहत लीलाकी बात ज्ञात होकर नगरको लौट गये। पाण्डवलोग वहीं बसे रहे।

एकसौ पैंसठ अध्यायमें
बकवधपर्व्व समाप्त।

जनमेजय बोले, कि हे ब्रह्मन्! सुना चाहता हूं, कि पुरुषसिंह पाण्डवोंने राक्षस बकको मारनेके पीछे क्या किया था।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे राजन्! पाण्डवगण राक्षस बकको वध कर उस ब्राह्मणके घरमें रहकर वेद पढ़ा करते थे। अनन्तर कुछ दिनोंके पीछे एक व्रतशील ब्राह्मण बसनेके लिये उस ब्राह्मणके घरको आये! नित्य अतिथियोंकी सेवा करने वाले उस ब्राह्मणने उस अतिथि ब्राह्मणकी भलीभांति पूजा कर बसनेको घर दिया। वह अभ्यागत द्विज वहां टिके रह कर बातही बातमें भांति भांति की शुभ कथायें कहने लगे। नरश्रेष्ठ पाण्डवगण और कुन्तीने वह सब कथा सुननेके अभिलाषी होकर उनका आदर किया। वह भांति भांतिके आश्चर्य देश, नगर, तीर्थ, सरोवर, अनेक आश्चर्य आश्चर्य राजोंके वृत्तान्त और नाना नगरोंकी कथा सुनाने लगे। हे जनमेजय! उस ब्राह्मणने कथा पूरी होनेके कालमें पाञ्चाल देशमें यज्ञसेनीके अलौकिक स्वयम्बर, धृष्टद्युम्न तथा शिखण्डिका जन्म और राजा द्रुपदके महायज्ञमें कृष्णा की उत्पत्ति इन सब बातोंका समाचार दिया। पुरुष-श्रेष्ठ पाण्डवगण ब्राह्मणसे उन महात्माकी अलौकिक लीलाओंको सुनकर कथा अन्त होने पर उसको प्रसस्तरूपसे सुनना चाहा और कहा कि हे विप्र! अग्निसे क्योंकर द्रुपद कुमार धृष्टद्युम्नकी उत्पत्ति हुई? क्योंकर वेदीमेंसे कृष्णाका अद्भुत जन्म हुआ? फिर क्योंकर धृष्टद्युम्नने बड़े चापधारी आचार्य्य द्रोणसे सर्व्वास्त्रोंकी शिक्षा पायी? और क्योंकर राजा द्रुपदसे द्रोणकी जो मित्रता थी, वह टूटी? श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे राजन्! पुरुषोंमें प्रधान पाण्डवोंसे यह बात सुन कर वह ब्राह्मण द्रौपदीकी जन्म-कथा कहने लगे।

चैत्ररथ पर्व्वमें एकसौ छासठ अध्याय समाप्त।

ब्राह्मण महाराज बोले, कि गङ्गाद्वारके निकट भरद्वाज नामक सदा व्रतशील महाप्राज्ञ, महातपस्वी एक महर्षि रहते थे। एक समय उन्होंने गङ्गा नहानेको जाकर देखा, कि उनके आनेके पहिले घृताची नाम्नी अप्सरा आकर नदीतट पर खड़ी है। उस समय पवनसे उसका वस्त्र उड़ने पर ऋषि उसको नङ्गी देखकर उसी क्षण कामके वशमें होगये। कौमार दशासे ब्रह्मचारी उस महर्षि का चित्त घृताची पर चलते ही उनका रुद्राका बटोरा हुआ वीर्य्य गिर गया। उन्होंने उसीक्षण उसको द्रोण नामक पात्रमें रख लिया। इस प्रकार उस धीमान् ऋषिसे द्रोण नामक कुमारने जन्म लिया। वह कुमार सम्पूर्ण वेद और वेदाङ्गको पढ़ने लगा। उस समय पृषत् नामक एक राजा भरद्वाजके मित्र थे। उनके द्रुपद नामक एक पुत्र हुआ। वह क्षत्रिय पृषत्पुत्र द्रुपद नित्य भरद्वाजके आश्रममें जाकर द्रोणके साथ खेलता और पढ़ता था। आगे राजा पृषत्के स्वर्गको सिधारने पर राजा द्रुपद राज्यपर बैठे। द्रोणने सुना, कि परशुरामजी अपना सब धन दान कर रहे हैं; आगे जब राम सब कुछ देकर वनमें जानेको उद्यत हुए थे, तब भरद्वाज-पुत्र वहां जाकर बोले, कि हे द्विजोत्तम! मेरा नाम द्रोण है, मैं धनकी प्रार्थनासे आपके पास आया हूं। राम बोले, कि हे ब्रह्मन्! मैं सब कुछ दान कर चुका हूं, अब मेरा शरीर और अस्त्रही शेष है, अतएव चाहे मेरे सम्पूर्ण अस्त्र वा शरीर इन दोनोंमेंसे एककी प्रार्थना करो। द्रोण बोले, कि आप प्रयोग और उपसंहारके साथ सम्पूर्ण अस्त्र मुझको दे देवें; ब्राह्मण बोले, कि अनन्तर भृगु-नन्दनने "तथास्तु" कहकर उनको सम्पूर्ण अस्त्र दे दिये। द्रोणने उनको लेकर अपनेको कृतार्थ समझा। वह रामसे परम सम्मत ब्रह्मास्त्र पाकर और सब अस्त्रोंके पानेसे अधिक प्रसन्न

हुए। अनन्तर प्रतापी पुरुषेन्द्र भरद्वाजनन्दनने द्रुपदके निकट आकर कहा, कि मैं तुम्हारा मित्र हूं, द्रुपदने उत्तर दिया कि जो श्रोत्रिय नहीं है, वह कभी श्रोत्रियका मित्र नहीं हो सकता; जो रथी नहीं है, वही कभी रथीका मित्र नहीं हो सकता; और जो स्वयं राजा नहीं है, वह कभी राजाका मित्र नहीं हो सकता; अतएव तुम क्यों मित्र कहकर पुकार रहे हो?

ब्राह्मण बोले, कि द्रोणजी पाञ्चाल द्रुपदकी वह बात सुनकर मनही मनमें बदला लेनेका निश्चय कर कौरवोंके हस्तिनापुर नामक नगरको गये। अनन्तर भीष्मने उन आये हुए द्रोणके निकट पौत्रोंको शिष्य बनानेको दे दिया और नाना धन देकर उनका आदर किया। अनन्तर द्रोण द्रुपदकी हानिके निमित्त शिष्य पाण्डवोंको बुलवाकर सबसे बोले, कि हे निष्पाप राजकुमारो! सत्य कर बोलो, कि तुम्हारे अस्त्रविद्यामें पण्डित होने पर तुम वह गुरु-दक्षिणा दोगे, कि जिसके लिये मैंने मनमें निश्चय कर रखा है। उसको अर्जुन आदि शिष्योंने तथास्तु कहके मान लिया। जब प्रण ठाने हुए पाण्डवोंने अस्त्रविद्याको भली भांति सीख लिया, तब आचार्य्य द्रोणने उनसे गुरु-दक्षिणाके लिये यह कहा, कि द्रुपद नामक राजा पृषत्के पुत्र अहिच्छत्र देशके अधीश हैं, तुम शीघ्र उनसे उस राज्यको छीन कर मुझको दे दो। अनन्तर पाण्डवोंने द्रुपदको युद्धमें परास्त करके मन्त्रियोंके साथ बांधकर द्रोणकी भेंट करी। तब द्रोण द्रुपदसे बोले, कि हे नरनाथ! मैं फिर तुमसे मित्रता चाहता हूं, पर इस समय मैं राजा हूं, तुम राजा नहीं हो, राजा न होनेसे राजासे मित्रता नहीं हो सकती, इसलिये तुम्हारे साथ एकत्र राज्य करनेके विषयमें यह निश्चय किया है, कि तुम भी भागीरथीके दक्षिण किनाराके राजा होओ और मैं उत्तर किनारेका होऊं। ब्राह्मण बोले, कि तब पाञ्चालराज, अस्त्रविद्यामें पण्डित, द्विजवर धीमान् द्रोणकी वह बात सुनकर बोले, कि हे महामति भारद्वाज! तुम्हारा मङ्गल होवे, तुमने जैसा समझ लिया है, वही हो, कि मेरे साथ तुम्हारी मित्रता सदा बनी रहे। शत्रु-नाशी द्रोण और राजा पाञ्चाल एक दूसरे से ऐसा कहकर अनुत्तम मित्रता निश्चय कर निज निज स्थानको चले गये। पर राजा द्रुपदके हृदयसे वह बड़ा अपमान क्षणभरके लिये भी दूर नहीं हुआ। वह उसको सोचमें अति दुःखी और दुबले होने लगे।

चैत्ररथपर्व्वमें एकसौ बासठ अध्याय समाप्त।

ब्राह्मण बोले, कि राजा द्रुपद दुःख और शोकसे विकल होकर योग्य पुत्र पानेकी अभि-लाषासे, कर्म्ममें सिद्ध अच्छे ब्राह्मणोंको ढूंढ़ते हुए एक आश्रमसे दूसरेमें जाने लगे। यह चिन्ता, कि मेरी अच्छी सन्तान नहीं है उनके हृदयमें सदा जगती थी। वह अपने अना-दरके कारण अपने पुत्रों और मित्रोंको धिक्कारते हुए द्रोणका बदला लेनेके लिये सदा लम्बी श्वांस छोड़ा करते थे। वह बदला-लेनेको चाहने पर भी सोचकर निश्चय नहीं कर सके, कि क्षत्रिय-बलसे क्योंकर द्रोणके प्रभाव, नम्रता, शिक्षा और चरित्रसे बढ़ सकते हैं। अनन्तर घूमते घामते गङ्गाके किनारे कल्माषपाद नामक राजाकी पुरीके निकट ब्राह्मणोंके पवित्र स्थानमें जापहुंचे। वहां जो सब ब्राह्मण थे, वे सबके सब स्नातक, व्रत-शील और महाभाग थे। उनमें याज और उपयाज नामक व्रतशील शमगुणी ब्रह्मप्रेमी, संहिता पाठमें नियुक्त, काश्यप गोत्रवाले, ऋषियोंमें श्रेष्ठ दो ब्रह्मर्षियोंको देखकर उनको इच्छानुरूप कार्य्य पूरा करानेके योग्य समझा। आगे वह आलस्यको विसारकर सम्पूर्ण कामनाओंसे उनकी उपासना करने

लगे। अनन्तर उन दोनोंमें कनिष्ठको शक्तिमान जानकर एकान्तमें उनकी शरण ली। वह सम्पूर्ण कामकी वस्तुओंका लोभ दिखा, पांव दाब, मीठी बात कह, अभिलाषा पूरी कर इत्यादि उपायोंसे उन व्रतशील उपयाजको प्रसन्न करने लगे; एक समय द्रुपद विधिपूर्व्वक उपयाजकी पूजा कर बोले, कि हे ब्रह्मन् उपयाज! यदि आप यह कर्म्म करें, कि जिसके करनेसे मेरे द्रोणनाशी पुत्रका जन्म हो, तो मैं आपको एक अर्बुद गौ दूंगा। हे द्विजश्रेष्ठ! यदि आपकी और किसी वस्तुकी अभिलाषा हो, तो इसमें सन्देह नहीं है, कि उसेभी पूराकर दूंगा।" ऋषि बोले, कि मैं यह काम नहीं कर सकूंगा। द्रुपद तिसपरभी उन ऋषिकी उपासनाके लिये फिर सेवा करने लगे। अनन्तर १ वर्ष बीतने पर एकदिन द्विजोत्तम उपयाजने राजा द्रुपदको मीठी बातसे कहा, कि एक समय मेरे ज्येष्ठ भाईने घने वनमें चलते समय ऐसे स्थानसे गिरा हुआ फल उठा लिया, कि वह नहीं जानते थे, कि वह स्थान पवित्र है वा नहीं। मैं उनके पीछे चलता था, सो उन्हें उस अयोग्य कामको करते देखा था। हे राजन्! उन्होंने उस दोषयुक्त वस्तुके लेनेमें कोई विचार नहीं किया। उस फलको देखतेही उसकी पापयुक्त दोषको समझ उनकी बुद्धिमें एकबारभी नहीं आयी; अतएव जिन्होंने एक स्थानमें शौचका विचार नहीं किया, वह अन्य स्थानमें क्योंकर दोष-दर्शी होंगे, अर्थात् वह तुम्हारे अभीष्ट विषयमें दोष नहीं देख पावेंगे! औरभी जब वह गुरुकुलमें रहकर संहिता पढ़ते थे, तब बहुधा औरोंकी जूठी की हुई वस्तुभी खालेते थे, इसमें उनको घृणा नहीं थी; वह सदा अन्नहीका गुण गाया करते थे। उनके उस प्रकार कामोंको देखनेके कारण मैं तर्करूपी आंखसे उनको फलार्थी समझ रहा हूं! हे महाराज! तुम उनके पास जाओ; वह तुम्हारे याजनकार्य्य करनेमें सम्मत होंगे।

राजा द्रुपद याजके चरित्रको सुन निन्दा करनेकी इच्छा होने परभी मनही मनमें अपने कार्य्यके सोचमें उपयाजकी बातसे उनके आश्रमको गये। वहां पहुंचकर पूजनीय याजको सब प्रकारसे पूज कर बोले कि हे विभो! मैं आपको अस्सी सहस्र गौ दान करूंगा, आप मेरा याजन कार्य्य करें। मैं द्रोणकी शत्रुतारूपी आगसे जल रहा हूं, आप कृपारूपी जल सींचकर मुझको शीतल करें। द्रोण ब्रह्मविद्या और ब्रह्मास्त्र दोनोंमें दक्ष है; इस लिये मित्रताकी लड़ाईमें मुझको परास्त किया है। वह बुद्धिमान और कौरवोंके प्रधान आचार्य्य हैं; इस भूमण्डलमें कोई क्षत्रिय उनसे श्रेष्ठ नहीं है। उसका धनुष छः अरत्निके समान बड़ा है; उनका वाण-जाल सर्व्व जीवोंकेही शरीरका नाश कर सकता है। इसमें सन्देह नहीं है, कि वह महानुभव भारद्वाज ब्राह्मणके वेशमें बड़े चापधारी होकर क्षत्रिय-तेजका सत्यानाश कर रहे हैं। वह क्षत्रिय नाशनेके लिये मानों दूसरे परशुराम बने हैं। इस पृथ्वी भरमें कोईभी उनके कठोर अस्त्र-बलको घटा नहीं सकता है। वह आहुतियुक्त प्रज्वलित अग्निकी भांति ब्राह्मतेजके साथ साथ क्षत्रियतेजको मिलाकर शत्रुको जला मारते हैं। उनका ब्राह्मतेज क्षत्रियतेजसे मिलकर श्रेष्ठ होनेपरभी आपका ब्राह्मतेज उनसे श्रेष्ठ है, और केवल क्षत्रियबलधारी मैं उनसे हीन बना हूं; अतएव मैं आपको जो द्रोणसे श्रेष्ठ और वेदके अच्छे जानकार हैं, प्राप्त होकर आपके ब्राह्मतेजकी शरण लेता हूं। हे याज! यह काम करें, कि जिससे मैं लड़ाईमें जयके अयोग्य और द्रोणनाशी पुत्र लाभ कर

सकूं; आपको दश कोटि गोदान करनेको प्रस्तुत हूं।

याज तथास्तु कहकर यागके प्रयोगके विषयमें मनही मनमें ध्यान करने लगे; और उस कार्य्यको कठिन जानके निष्काम उपयाजसे सहायता करनेको कहा। महर्षि याजने जब द्रोणनाशके लिये प्रतिज्ञा करी तब महातपा उपयाजने नरेन्द्र द्रुपदके निकट उनके पुत्र फलके लिये श्रौताग्नि-साध्य कर्म्मकी कथा कह सुनायी और कहा, कि हे द्रुपद! आप जैसे यशस्वी और बल-वीर्य्यवन्त पुत्रकी कामना करेंगे, आपको तैसाही पुत्र मिलेगा। अनन्तर भूपाल द्रुपदने जब द्रोण-विनाशी पुत्र पानेकी युक्ति निश्चयकर कार्य्य साधनेके लिये उस यज्ञके योग्य सम्पूर्ण सामग्री इकट्ठी कर दी, तब उन्होंने यज्ञ आरम्भ कर दिया। आगे याजने हवनकी होजाने पर रानीको यह आज्ञा करी, कि ऐ रानी! पृषतराज वधू! तुम हवि लेनेके लिये शीघ्र मेरे पास आओ; तुम्हारे पुत्र, कन्या उपस्थित हैं। रानी बोली, कि हे ब्रह्मन्! मेरा मुंह कुङ्कुमादि गन्धके पदार्थोंसे पूरित है, अङ्गरागोंसे भूषितभी हूं, अतएव मेरे अभीष्ट पुत्रके लिये आप कुछकाल विलम्ब करें; मैं शुचि हो आती हूं। याज बोले, कि हवनके पदार्थ उपायाजसे मन्त्रयुक्त होकर याजके द्वारा पकाये गये हैं, तुम चाहे आओ वा न आओ अवश्यही उससे कामना पूरी होगी। ब्राह्मण बोले, कि याजने यह कहके अग्निमें संस्कार किये हुए हव्यकी आहुति ज्योंही दी, त्योंही उस अग्निसे ज्वालावर्ण भीमाकृति कोरीटसे सुशोभित सुन्दर कवचयुक्त धनुष्बाणधारी और देवसदृश एक कुमार उत्पन्न हुआ। वह कुमार जन्म लेतेही बार बार सिंह-गर्जन करता हुआ प्रधान रथ पर चढ़ गया और उस रथ पर इधर उधर जाने लगा। यह देखकर पाञ्चाललोग आनन्दित होके इतना चिल्लाकर "साधु साधु" कहके ऐसा भारी शब्द करने लगे, कि मानों धरती उन हर्षयुक्त पाञ्चालोंका भार सम्भालनेको असमर्थ होगयी। तब आकाशवाणी हुई, कि इस राज-कुमारने द्रोणवधके लिये जन्म लिया है। यह पुत्र पाञ्चालोंका यश बढ़ानेवाला, भयनाशी और राजाका शोक दूर करनेवाला होगा।" आगे वेदीके मध्यसे पाञ्चालराजकुमारी सौभाग्यवती श्यामाङ्गी एक कुमारी उठी। उस कन्याके अङ्गोंकी शोभा बहुत सुन्दर, दोनों आंखें नीली, चौड़ी और पद्मपलाशके समान, केश काले और घुंघराले, नख ऊंचे और तामेके रङ्गके, दोनों भौंहें बड़ी शोभा देनेवाली, और स्तन बड़े तथा शोभायुक्त थे; उसकी शोभा देखकर समझ पड़ती थी, कि मानों साक्षात् देवकन्या मानवीके स्वरूपमें प्रगट हुई थी। उसको नीलपद्म समान देहको गन्ध कोस भरकी रीतक पहुंचने लगी। वह देवरूपिणी कन्या ऐसी अनुपम रूपवती हुई कि देव, दानव, यक्ष आदिभी उसकी प्रार्थना करें। उस सुन्दरी कन्याके जन्म लेने परभी आकाश वाणी हुई, कि "यह कृष्णा सम्पूर्ण नारियोंमें श्रेष्ठ और बहुत क्षत्रिय-कुलोंका नाश चाहनेवाली होगी। इस सुन्दरीसे उचित समय पर देवता का कार्य्य पूरा होगा। इसके लियेही कौरवोंमें बड़ा भय उपस्थित होगा।" सम्पूर्ण पाञ्चाल उसे सुनकर हर्षके मारे सिंहोंकी नाईं ऐसी ध्वनि करने लगे, कि मानो धरती उन हर्षित पाञ्चालोंका भार सम्भालनेको असमर्थ हुई।

पुत्रचाहनेवाले राजा द्रुपदकी रानी उस पुत्र कन्याको देखकर याजके निकट जा पहुंची और बोली, आप ऐसा करें, कि यह पुत्र कन्या मेरे अतिरिक्त किसी दूसरीको माता करके जान न सकें। याज राजाके प्रिय कार्य्यको करनेके लिये "तथास्तु" बोले, आगे ब्राह्मणगण

सफल मनोरथ होके बोले, कि राजा द्रुपदका यह कुमार धृष्ट अर्थात् प्रगल्भ, अति धृष्ट अर्थात् विपक्षियोंकी उन्नति न सहनेवाला और द्युम्नादि अर्थात् कवच कुण्डल आदिके साथ उत्पन्न हुआ है, सो इसका नाम धृष्टद्युम्न हुआ, और यह कुमारी काली हुई है, सो इसका नाम कृष्णा रहा। राजा द्रुपदके महायज्ञसे ऐसे पुत्र और कन्याकी उत्पत्ति हुई थी। अनन्तर प्रतापी भारद्वाज, द्रोणने पाञ्चालराजके पुत्र धृष्टद्युम्नको अपने घरमें लाकर अस्त्रोंकी शिक्षा देकर पहिले लिये हुए आधे राज्यको लेनेके पलटेमें उपकार किया। महामति द्रोणने यह समझ कर, कि दैवीभाव लङ्घनयोग्य नहीं है, अपनी कीर्त्तिकी रक्षाके लिये ऐसा कार्य्य किया।

चैत्ररथपर्व्वमें १६८ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर महाबली पाण्डवगण वह वृत्तान्त सुनकर शूलीसे बिंधे जानेकी भांति दुःखी भये। सत्य कहनेवाली कुन्ती पुत्रोंको अनमन देख कर युधिष्ठिरसे बोली, कि हमको इस ब्राह्मणके घर रहे बहुत दिन बीते। इस सुन्दरनगरमें महात्माओंसे भिक्षा ले ले कर खेल कूदकर काल गंवाया है, यहां जितने सुन्दर सुन्दर वन और उपवन हैं, वह सभी वार वार देख चुके हैं। हे वीर कुरुनन्दन! उन स्थानोंको फिर देखनेकी अब वैसी प्रीति नहीं होती, और एक स्थानमें रहनेसे वैसी भिक्षा मिलनेकी भी सम्भावना बनी नहीं रहती; अतएव यदि तुम्हारा मत होवे, तो हम सुखसे पाञ्चाल देशको जायं, वह स्थान पहिले नहीं देखा है, उसके देखनेसे सुख प्राप्त होगा। हे शत्रुनाशि! सुना है, कि पाञ्चालदेश अन्नसे भरा पूरा है और वहांके राजा यज्ञसेनभी ब्रह्मपरायण हैं। फिरभी एक स्थानमें सदा रहना मेरा अभीष्ट नहीं है, यह उचितभी नहीं है। यदि तुम्हारा मत होवे, तो हम उसस्थान को सुख पूर्व्वक पधारें। युधिष्ठिर बोले, कि आपकी जैसी इच्छा होगी, वही हम करेंगे, और वही हमारी मङ्गलदायी होगी; पर नहीं जानते भाईलोग क्या चाहते हैं। वैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर कुन्तीने जब भीम, अर्ज्जुन, नकुल और सहदेवसे वहां जानेकी इच्छा पूछी, तब वेभी उस पर स्वीकृत हुए। महाराज! अनन्तर कुन्ती और उनके बेटे ब्राह्मणसे मिल कर महात्मा भूपाल द्रुपदके सुन्दर नगरको गये।

चैत्ररथपर्व्वमें एकसौ उनहत्तर
अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले; कि जब महात्मा पाण्डवलोग ब्राह्मणके घरमें छिप कर बस रहे थे, तब एक दिन सत्यवतीके पुत्र व्यासजी उनकी भेटके लिये आये। शत्रुनाशी पाण्डवगण उनको आते देखकर उठकरके प्रणाम दण्डवत पूर्व्वक दोनों हाथ जोड़ करके खड़े रहे। आगे उनकी आज्ञासे वे सब बैठ गये। वह उनसे पूजे जाकर प्रीतिपूर्व्वक यह बोले, कि हे शत्रुनाशियो! तुम धर्म्ममार्गमें रहकर शास्त्रके अनुसार अपनी जीविका कर लेते हो न? पूजनीय ब्राह्मण लोग तुमसे पूजित होते जाते हैं? अनन्तर भगवान् कृष्णद्वैपायन धर्म्मार्थयुक्त भांति भांतिकी विचित्र कथा कहकर फिर यह कहने लगे, कि एक तपोवनमें किसी महात्मा ऋषिकी एक कन्या थी; उसकी कमर पतली और भौंह अच्छी थीं और वह बड़ी सुन्दरी और सर्व्व गुणोंसे सुहावनी थी। ऋषिकन्या अपने कर्म्मवश अभागी भई थी, सती और रूपवती होने पर भी पति नहीं मिला, अनन्तर वह चित्तमें दुःख मानकर पति पानेके लिये तप करने लगी। आगे

कड़ी तपस्यासे भगवान् शङ्करको सन्तुष्ट करने पर शङ्कर प्रसन्न होकर बोले; कि हे भद्रे ! मैं, शङ्कर तुमको वर देनेको उद्यत हुआ हूं, वर मांगो, तुम्हारा मङ्गल होगा। ऋषिकन्या अपने हितके निमित्त ईश्वरसे बार बार बोली, कि मैं सर्व्वगुणोंसे भूषित पति मांगती हूं। वाक्पति ईशान उससे बोले, कि ऐ भद्रे ! तुमको पांच भरतवंशी पति मिलेंगे। कन्या वरदाता महादेवजोको यह बात सुनकर बोली, कि हे देव ! हे विभो ! मैं आपकी कृपासे एकही पति मांगती हूं। तब देवदेव फिर यह सुन्दर वाणी, बोले, कि तुमने यह बात कि "पति दो" पांच बार मुझसे कही है, सो अन्य जन्ममें तुम्हारे पांच पति होंगे।

हे भरतकुल-भूषणो ! उस कन्याने इन दिनों द्रुपदकुलमें जन्म लिया है। देवता-समान अनिन्दनीया कृष्णा नाम्नी वह द्रौपदी तुम्हारी पत्नी बननेकी बाट देख रही है; सो अब तुम पाञ्चाल नगरमें जाकर वहां टिके रहो। महाबली पाण्डवो ! तुम निःसन्देह उस कृष्णाको पाकर सुख पाओगे। पाण्डवोंके दादा महातपस्वी, महाभाग व्यासदेव पृथा और पार्थोंसे यह कह कर सम्भाषण पूर्व्वक चले गये।

चैत्ररथपर्व्वमें एकसौ सत्तर अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि भगवान् व्यासके चले जाने पर पुरुषर्षभ शत्रुनाशी पाण्डवगण ब्राह्मणको नमस्कार-पूर्व्वक सत्कार करके प्रसन्न चित्तसे माताको आगे करके पांचाल नगरको ओर चले। वे अपने उद्देशके अनुसार सीधे उत्तर ओरको चलकर, उस सोमाश्रयन नामक तीर्थमें जा पहुंचे, कि जहां भगवान् चन्द्रशेखर विराजते हैं। वहां दिन बीतने पर महारथी धनञ्जय पथ दिखाने और रक्षाके लिये एक जलती हुई लकड़ी उठाकर आगे आगे चले, आगे पुरुषव्याघ्र पाण्डवलोग गङ्गा तट पर जा पहुंचे। वहां ईर्षासे भरा हुआ एक गन्धर्व्वराज जलक्रीड़ाके लिये आकर सुन्दर भागीरथी-जलमें स्त्रियोंके संग निरालेमें खेल रहा था।

पाण्डवगण उस नदीमें उतर रहे थे, कि उस महाबली गन्धर्व्वराजको उनका शब्द मिला और वह क्रोधसे, जल उठे। अनन्तर शत्रुनाशी पाण्डवोंको माताके साथ आते देखकर कठोर शरासनको फैलाकर बोले, कि रात्रि आनेके पहिले जो घोर लाल सन्ध्याकाल होता है उसके अस्सी लवके अतिरिक्त शेष सब मुहूर्तोंही कामचारी यक्ष, गन्धर्व्व और राक्षसोंके विचरनेका काल निर्दिष्ट है; इसके सिवाय शेष सम्पूर्ण काल मनुष्योंके कर्म्माचरणके निमित्त निश्चित है। यदि मनुष्य गण लोभवश घूमते घामते हुए हमारे उस निर्दिष्ट कालमें निकट आते हैं, तो हम उन मूर्खोंको नष्ट कर डालते हैं। इस लिये जो लोग रात्रिको जलाशयमें जाते हैं, वे यदि भूपालभी होवें, तो वेदज्ञ ब्राह्मण उनकी निन्दा करते हैं; अतएव तुम दूर रहो, मेरे पास मत आओ। क्या तुम नहीं जानते हो, कि मैं भागीरथोके जलमें देह डुबा रहा हूं? मैं मानी और कुवेरका मित्र अङ्गारपर्ण नामक गन्धर्व्व हूं; मैं अपने भुजबलहीसे काम पूरा कर लेता हूं, किसीको क्षमा नहीं करता हूं; मेरे अधिकारका यह वन अङ्गारपर्ण नामसे प्रसिद्ध है। मैं इस वनके भीतर गङ्गा और राको नदीमें भांति भांतिकी क्रीड़ा करता हुआ विचरता हूं। मैं कुवेरकी पगड़ीकी भांति अर्थात् बड़ा प्रिय हूं; लक्षणोंसे जान पड़ता है, कि तुम राक्षस, शृङ्गी, गन्धर्व्व अथवा यक्ष नहीं हो, फिर क्योंकर मेरे पास आनेका साहस किया? अर्ज्जुन बोले, कि रे दुर्म्मते। समुद्र, हिमाचलका पार्श्व और गङ्गाजी यह सब स्थान,

चाहे दिन रात वा सन्ध्या समय हो, किसके लिये रुके रह सकते हैं? ऐ व्योमचर! चाहे पेटभरा वा पेट जला हो, किसीके लिये दिन वा रात्रि किसी समय जलभरी गङ्गाजी पर आनेका नियम नहीं है। विशेष कुसमयमें तुमको चिढ़ानेसे हमको क्या हो सकता है? क्योंकि हमें शक्ति है। रे कुटिल! जो लोग लड़नेमें असमर्थ हैं, वेही तुम्हारी पूजा करते हैं। पूर्व्वकालमें यह गङ्गा हिमाचलकी सुवर्ण चोटीसे निकल कर सात भागोंमें बंटके समुद्र-जलसे मिल गयी हैं। जो लोग गङ्गा, यमुना प्लक्षजाता सरस्वती, रथस्था, शरयू, गोमती और गण्डकी इन सात नदियोंका जल पीते हैं, उसके सब पाप कट जाते हैं। ऐ गन्धर्व्व! आकाशमें बहनेवाली पवित्र यह गङ्गा आकाशमें जाकर देवलोकमें अलकनन्दा नामसे और पितृलोकमें पापात्माओंको तारने वाली वैतरणी नामसे प्रसिद्ध हुई हैं। कृष्णद्वैपायनने कहा है, कि स्वर्ग तथा शुभदेनेवाले इस सुरसोतेमें जानेकी किसीको मनाही नहीं है; तुम उस बिनबाधाकी गङ्गाजीको क्या रोकना चाहते हो? यह सनातन धर्म्म नहीं है, अतएव हम क्यों तुम्हारी बात सुनकर उस बाधारहित बिन मनाहीके पवित्र गङ्गा जलको नहीं छूयेंगे?

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अङ्गारपर्ण यह बात सुनकर क्रोधके मारे शरासन चढ़ाकर अति विषयुक्त सर्पके समान तेज वाणोंको बर्षाने लगा! पाण्डुपुत्र धनञ्जयने उस जलती हुई लकड़ी और उत्तम चर्म्मको घुमाकर उनके सब वाणोंको व्यर्थ किया और बोले, कि रे गन्धर्व्व! जो लोग अस्त्रोंके जानकार हैं, उनको विभीषिका दर्शाना उचित नहीं है, क्योंकि उनके निकट वह फेनकी भांति क्षण-भरमें लोप होजाती है। हे गन्धर्व्व! मैं समझता हूं, कि गन्धर्व्व मनुष्यकी जातिसे पराक्रमी हैं, सो मैं तुमसे दिव्य अस्त्रोंके सहारे लड़ूंगा, कपटयुद्ध नहीं करूंगा। पूर्व्वकालमें देवराजके गुरु सबोंके माननीय बृहस्पति जीने अग्नास्त्र भरद्वाजको दिया था। आगे भरद्वाजसे अग्निवेश्यको मिला, अग्निवेश्यसे मेरे गुरु ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ द्रोणको मिला उन्होंने यह सुन्दर अस्त्र मुझको दिया है। श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि पाण्डुनन्दन अर्जुनने यह कहकर क्रोधसे गन्धर्व्व पर उस प्रज्वलित अग्नास्त्रको छोड़कर उनके प्रसिद्ध रथको भस्म किया। वह महाबली गन्धर्व्व अग्नास्त्रके प्रभावसे रथसे च्युत होकर नीचे मुहकर धरती पर गिर रहे थे, कि अर्जुनने उनके मालाओंसे सजे सजाये केश पकड़ लिये; और अस्त्रकी चोटसे अचेत उस गन्धर्व्वको खींच कर भाइयोंके पास ले आये। अनन्तर उस गन्धर्व्वकी कुम्भीनसी नाम्नी स्त्री पतिकी रक्षाके लिये युधिष्ठिरकी शरण लेकर बोली, कि हे महाभाग! मेरी रक्षा करें—मेरे पतिको छोड़ दें। हे प्रभो! मेरा नाम कुम्भीनसी है, मैं गन्धर्व्वी हूं; आपको शरण लेती हूं। तब युधिष्ठिर अर्जुनसे बोले, कि हे शत्रुसंघनेहारे! जो शत्रु युद्धमें हार कर पराक्रम और यशसे रहित होकर स्त्रीसे बचाया जाता है, उसको कौन मार सकता है? भैया! तुम इसको छोड़ दो। अनन्तर अर्जुन गन्धर्व्वसे बोले, कि गन्धर्व्व! तुमको जीवन मिल गया, चले जाओ, शोक मत करना। आज कुरुराज युधिष्ठिरने तुमको बचानेकी आज्ञा दी है। गन्धर्व्व बोले, कि मेरा पर्ण अर्थात् वाहन प्रज्वलित अङ्गारकी भांति दूसरोंके छूनेके अयोग्य था, इसलिये मैं अङ्गारपर्ण नामसे प्रख्यात था; अब तुमसे हार कर यह अङ्गारपर्ण नाम छोड़ देता हूं, क्योंकि जब जनसमाजमें बल और वीर्य्यका मानही नहीं रहा, तब केवल नामके माननीय बने रहनेसे प्रयोजन ही क्या है? आज

मुझे यह एक परम लाभ हुआ, कि मुझको दिव्यास्त्र धरनेवाला मित्र मिल गया, आज मुझे मित्र अर्जुनको गन्धर्व्वी माताको विद्या देनेकी इच्छा हो रही है। मेरा उत्तम विचित्र रथ था, सो मैं चित्ररथ करके प्रसिद्ध था, अब वह रथ अस्त्रकी अग्निसे जल गया, अतएव चित्ररथ होने पर भी, अब मुझको दग्धरथ नाम मिला। हे मित्र! मैंने पहिले तपस्यासे जो गान्धर्व्वी विद्या लाभ की थी, आज वह विद्या तुमको देता हूं, क्योंकि तुम मेरे प्राणदाता और महात्मा हो। जो बलसे शत्रुको हराते मोहित करते और उस हारे हुए मोहित शत्रुके शरण लेने पर उसका प्राण दे देते हैं, वह अवश्यही कल्याण पानेके योग्य है। उस विद्याका नाम चाक्षुषी है; भगवान मनुने वह विद्या सोमको दी थी, सोमने विश्वावसुको दी और मुझको विश्वावसुसे मिली। पर वह गुरुकी दी हुई विद्या इस कायरके हाथसे नष्ट हो गयी। इस चाक्षुषी विद्याके गुरुओंका सिलसिलेवार आगम-वृत्तान्त कहा, अब उसके वीर्य्यकी बात कहता हूं, सुनो। त्रिलोकभरमें चाहे जिस किसी पदार्थको आखोंसे देखना चाहोगे, वही दीख पड़ेगा और उस पदार्थका स्वभाव और दशा जैसी है, वह भी देखना चाहो तो देख लोगे। छमास एक पांवके बल खड़े रह कर तप करनेसे वह विद्या मिलती है, पर तुम्हारे उस व्रतको न किये रहने परभी मैं उसे तुमको दूंगा। हे महाराज! हमलोग उस विद्याहीके बलसे अनुभवदर्शी हो कर मनुष्योंसे विशिष्ट और देवोंके सदृश हुए हैं। हे पुरुषश्रेष्ठ! फिर मैं तुम और तुम्हारे भाइयोंमें हरेकको सौ सौ गन्धर्व्वज घोड़े देता हूं; सुन्दर वरण और मन समान वेगवान वे घोड़े देवता और गन्धर्व्वोंके वाहन हैं; उनकी युवावस्था वा बुढ़ापा नहीं है; वे कभी वेग रहित नहीं होते। पूर्व्वकालमें वृत्रासुरके मारनेके लिये देवराज महेन्द्रका वज्र बना था। वह वज्र वृत्रासुरके सिर पर गिर कर सहस्र भागोंमें बंट गया। देवगण वज्रके उन अनेक भागोंकी उपासना किया करते हैं। इन तीनों लोकोंमें यशरूपी धन उस वज्रका एक भाग है; ब्राह्मण गण जिस हाथसे अग्निमें आहुति चढ़ाते हैं उनका वह हाथ उस वज्रका एक भाग है; क्षत्रियगण जिस रथ पर चढ़कर लड़ाईमें देवता और ब्राह्मणोंके शत्रु नष्ट करते हैं उनका रथ उस वज्रका एक भाग है; वैश्यगण देवता और ब्राह्मणोंको जो दान देकर सुखी होते हैं, उनका वह दानभी उस वज्रका एक भाग है; और शूद्रगण ब्राह्मणोंकी जो सेवा कर निज धर्मकी रक्षा करते हैं, उनकी वह सेवाभी उस वज्रका एक भाग है; अतएव घोड़े क्षत्रियोंके वज्ररूपी रथके अङ्ग होनेके हेतु मारनेके अयोग्य करके कहे गये हैं। पर रथके अङ्ग घोड़े, घोड़ियोंसे उपजते हैं; उनमें जो घोड़े गन्धर्व्व लोकमें जन्म लेते हैं, वे सब शूर हैं और उन का वर्ण इच्छाधीन है तथा वे मनमाने वेगवान और वशीभूत होते हैं; इस लिये मेरे उन घोड़ोंसे तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हुगा।

अर्जुन बोले, कि हे गन्धर्व्व! तुम जीवन नष्ट होनेके भयसे बच जाने पर प्रसन्न होकर मुझको विद्या वा घोड़े देनेको उद्यत हुए हो, सो मैं उन्हें नहीं लिया चाहता। गन्धर्व्व बोले, महानुभाव जनोंसे मिलनाही प्रीतियुक्त होता है, विशेष मैं जीवन पानेसे प्रसन्नभी हुआ हूं, इस लिये तुमको वह विद्या देता हूं! हे भरतश्रेष्ठ जिष्णो! मैं जिस प्रकार तुमको वह विद्या दूंगा, वैसेही पलटेमें तुमसे सनातन उत्तम अग्न्यास्त्र लूंगा। अर्जुन बोले, कि हे गन्धर्व्व! मैं अस्त्र देकर तुमसे घोड़े मांगता हूं, हमारी मित्रता बनी रहे। हे मित्र गन्धर्व्व! बोलो, कि गन्धर्व्वको जातिसे

मनुष्य की जातिको क्यों भय आ पहुंचता है; और यहभी कहो, कि हम सब शत्रुनाशी साधु और वेदज्ञ होने परभी रात्रिको चलते हुए क्यों तुमसे लाञ्छित हुए। गन्धर्व्व बोले, कि हे पाण्डवो! तुम गुरुकुलसे लौट आये पर तौभी विवाह नहीं किया है, सो बिन आश्रम हो; और तुम्हारे सङ्ग ब्राह्मणभी नहीं हैं, इसी लिये, मैंने तुम पर चढ़ाई की थी। यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, पिशाच, उरग और दानव यह सब धीमान हैं, और कुरुवंशकी कथा कहते हैं। हे वीर! मैंनेभी नारदादि देवर्षियोंसे तुम्हारे ज्ञानशील अगले पुरुषोंके गुणोंको कहनो सुनी हैं, और स्वयं इस सागर-जड़ी वहा धरतीमें घूमता हुआ तुम्हारे सुवंशका प्रभाव प्रत्यक्ष देखा है। हे अर्ज्जुन! वेद और धनुर्विद्यामें त्रिलोक भरमें प्रशंसित यशोवन्त तुम्हारे आचार्य्य-पुत्रको भली प्रकार जानता हूं। हे कुरुशार्दूल! तुम्हारे ज्ञान-शील पितृ-पुरुष कुरुवंश बढ़ानेहारे देवोंमें श्रेष्ठ धर्म्म, पवन, इन्द्र और दोनो अश्विनी-कुमार और मानवोंमें श्रेष्ठ पाण्डु इन छओंसे विशेषरूपसे ज्ञात हूं। तुम पांचों भाई सम्पूर्ण शस्त्र विद्याओंमें दक्ष, अच्छे स्वभावी, महात्मा सुचरित्रवान व्रतशील और शूर हो, तुम्हारे मन और बुद्धि बड़ो अच्छी और स्वभाव अति शुद्ध हैं। हे पार्थ! मैं यह सब जानने परभी तुमको लाञ्छन किया था; क्योंकि भुजवल युक्त कोई पुरुष स्त्रीके सामने अपने अपमानको सहन नहीं कर सकता है; विशेष रात्रिकालमें हमारा बल बहुत बढ़ जाता है, इस लिये मैं स्त्रीके सहित क्रोधके वशमें होगया था। हे तापत्य वंश वर्द्धन! मैं जिस विधिके अनुसार तुमसे युद्धमें परास्त होगया हूं, वह कहता हूं, सुनो; हे पार्थ! ब्रह्मचर्य्य परम धर्म्म है; तुम उस धर्म्मको अवलम्बन किये हुए हो, इस लिये तुमसे हार गया। हे शत्रुनाशि! कोई विवाह किया हुआ क्षत्रिय यदि रात्रिकालमें हम लोगोंसे लड़े, तो वह किसी प्रकार जीवित नहीं रह सकता है। हे पार्थ! विवाह कर लेने परभी जो क्षत्रिय वेदसे अलंकृत होकर पुरोहित पर सब कार्य्योंका भार सौंप देता है, वह युद्धमें निशाचरोंको परास्त कर सकता है; हे तापत्य! इस लिये मनुष्योंको मनमाना हरेक शुभ कर्म्ममें दमगुणयुक्त पुरोहित नियुक्त करना चाहिये। हे मित्र! जो वेद और शिक्षादि षडङ्गोंमें पण्डित पवित्र-वंशी, सत्यवादी, धर्म्मात्मा और जितेन्द्रिय हैं, वही राजपुरोहित होनेके योग्य हैं। जिस राजाके धर्म्मज्ञ वाक्‌निपुण सुशील सुवंशी पुरोहित रहते हैं, उनको इस लोकमें सदा जय और परलोकमें स्वर्ग-प्राप्ति होती है। राजाको अनमिले पदार्थके मिलने और मिले हुए पदार्थकी रक्षाके लिये गुणवान पुरोहित नियुक्त करना चाहिये। जो राजा अपने लिये ऐश्वर्य्यकी इच्छा करते हैं, उनको सागर-सहित सम्पूर्ण धरतीको प्राप्त करनेके निमित्त सब प्रकारसे पुरोहितके मतानुसार रहना चाहिये। हे तापत्य! कोई राजा ब्राह्मण वर्ज्जित होकर केवल शूरता वा अभिजात्यसे धरतीको जीत नहीं सकता? अतएव निश्चय जानना, कि जिस राज्यकी कार्य्य-चिन्तामें ब्राह्मणकी प्रधानता रहती है, उस राज्यकी सदा रक्षा होती है।

चैत्ररथ पर्व्वमें एकसौ एकहत्तर अध्याय समाप्त।

अर्ज्जुन बोले, कि हे मित्र! तुमने मुझको तापत्य करके पुकारा, मैं जाना चाहता हूं, कि तापत्य शब्दका अर्थ क्या है। हे साधो! हम कुन्तीकी सन्तान हैं, इस हेतु कौन्तेय करके प्रख्यात हैं; पर तापत्य किसका नाम है, कि तापत्य कहके पुकारे जा सकें। इसका सच्चा तत्व जाननेकी इच्छा हो रही है।

श्रीवैशम्पायनजी बोले; कि गन्धर्व्वराज कुन्तीपुत्र धनञ्जयकी वह बात सुनकर उनके निकट लोकोंमें प्रसिद्ध कथाको कहने लगे। गन्धर्व्व बोले, कि हे सुवीवर! मैं यह मनोहर कथा तुमसे आद्योपान्त सब कहता हूं, जिस कारण तुमको तापत्य कहके पुकारा, उसकी कथा विस्तृत रूपसे कहता हूं ध्यान लगाकर सुनो। इन देवताकी, जिन्होंने अपने तेजसे आकाशमण्डलको भर लिया है, उनको तीनों लोकोंमें प्रशंसित तपस्विनी तपती नाम्नी एक कन्या थी, वह सावित्री की छोटी बहिन थी। तपनदेव जिसप्रकार रूपवान हैं, वह तपती वैसी ही रूपवती थी। कोई उसके रूपकी शोभासे जान नहीं सकता था, कि वह देवकन्या असुर-कन्या, यक्ष-कन्या, गन्धर्व्व-कन्या राक्षस-कन्या, अथवा अप्सरा थी; उस बालाकी दोनों आंखे अच्छी काली और बड़ी थीं और सब अङ्ग यथायोग्य बंटे बंटाये और निन्दाके अयोग्य थे! हे भारत! उसके पिता सविताने उस भाविनी अति रूपवती, और सुचारिणी देखकर जाना, कि उसके सदृश रूप-गुणशील और विद्यायुक्त योग्य वर तीनों लोकमें नहीं हैं, अनन्तर यथा कालमें कन्याको यौवन पर चढ़ते देखकर सन्धान करनेके लिये योग्य वरको चिन्ता करने लगी, किसी प्रकार स्थिर नहीं रह सके। हे कौन्तेय! उन दिनों ऋषिपुत्र कुरुश्रेष्ठ बलवान राजा सम्बरण सूर्य्यकी उपासना किया करते थे। विना अहङ्कार पौरव-नन्दन सम्वरण सेवाशील, नियमयुक्त और शुचि होकर शुद्ध चित्तसे भक्ति-पूर्व्वक नाना तपस्या, उपवास और नियम, तथा अर्घ माला, गन्ध, और दूसरे उपहार देकर दीप्यमान सूर्य्यकी नित्य उपासना करते थे। सूर्य्यदेवने उनको, कृतज्ञ, धर्म्मज्ञ, और अप्रतिम रूपवान जानकर तपतीके योग्य पति समझा। हे कौरव्य! उसके अनन्तर उन्होंने उस प्रख्यात कुलीन नृपोत्तम सम्बरणहीको कन्या सम्प्रदान करनेकी इच्छा की हे पार्थ! जिस प्रकार प्रकाशित किरणयुक्त दिवाकर अपने प्रकाशसे आकाश-मण्डलको प्रकाशित करते हैं, वैसेही भूपाल सम्वरणने अपने तेजसे महीमण्डलको उज्ज्वल किया था। और जिस प्रकार सूर्य्यके उगने पर ब्राह्मणगण उनकी उपासना करते हैं, वैसेही ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि प्रजा भूपाल सम्बरणकी उपासना करती थी। वह श्रीमान भूप मित्र पर कोमल होकर सोमसे और शत्रु पर तेजवन्त होकर आदित्यसे बढ़ चढ़ निकले थे,। हे कौरव! ऐसे गुणशील और चरित्रवान उस भूपालको सूर्य्यदेवने तपती नाम्नी कन्याको दान करना चाहा था।

हे पार्थ! एक समय अति विक्रमी श्रीमान भूपाल सम्बरण मृगयाके लिये पर्व्वतके निकटके वनमें टहल रहे थे, कि ऐसे समय उनके अनुपम अश्वने भूख प्यासके मारे कातर होकर प्राण छोड़े। तब वह वाहनके बिना पैदलही पर्व्वत पर चलने लगे। आगे प्रशस्तनेत्रा अनुपम रूपवती एक कन्या उनकी आखोंके सामने दीख पड़ी। शत्रुबल मथनेहारे भूपश्रेष्ठ उस कन्याको देखकर उस पर एकटक लगाये खड़े रहे। और उसकी सुन्दरता देखकर समझा, कि वह हरिकी प्यारी लक्ष्मी होगी अथवा प्रभाकरको प्रभा प्रभाकरसे पृथ्वी पर गिरकर उस कन्याके स्वरूपमें प्रकाश हुई होगी। उस बालाकी तेज-भरी देहसे मानो अग्निको शिखा और प्रसन्नता तथा कान्तिसे मानो अमल चन्द्रकी रेखा प्रकाश हो रही थी। वास्तवमें वह सुलोचना जिस पर्व्वत पर खड़ी रहकर प्रकाशमयी सुवर्णप्रतिमासी शोभा दे रही थी, तरु लता और गुल्मादि सहित वह पर्व्वत उस कन्याकी अनुपम शोभा और वेशकी बनावटसे सुवर्णका प्रतीत होने लगा। राजा उसको देखकर मनहीमनमें

तीनों लोकोंकी स्त्रियोंका अनादर करने लगी, और दर्शनेन्द्रियको कृतार्थ समझा। विचार कर देखा कि जन्मसे पश्चात जो सब सुन्दर पदार्थ देखे थे, उनमेंसे एकभी इस कन्याके समान रूपयुक्त नहीं है। उस सुन्दरीको देखतेही उसके गुण जालमें महीपालका चित्त और नेत्र फंस गये, सो उनको वहांसे टलनेकी सामर्थ नहीं रही और वह कुछभी समझ नहीं सके। फिर यह समझा, कि विधाताने सुर, असुर और मनुष्य, सबोंको मंथन करके इस विशालाक्षी का रूप आविष्कार किया है; क्योंकि त्रिलोक भरमें इसके रूपकी शोभा की उपमा नहीं है; उस कल्याणीको देखतेही सुकुलीन राजा, काटनेवाले मदन बाणसे घायल होकर सोचने लगे। वह कठोर कामाग्निसे जल कर दक्षभावयुक्त उस मनोहर कन्यासे समझानेकी बातोंमें बोले, कि ऐ रम्भोरु! तुम कौन? किसकी बेटी हो? यहां क्यों खड़ी हो? ऐ सुन्दरि! तुम, इस निर्ज्जन वनमें क्योंकर अकेली रहा करती हो? तुमको सर्व्वाङ्ग सुन्दरी और सर्व्व आभूषणोंसे मनोहरनी देखता हूं। ऐ सुन्दरि! तुम्ही इन सब आभूषणोंकी प्रार्थनीय आभूषणकी भांति हुई हो। तुम देवकन्या, यक्षकन्या, राक्षसकन्या, नागकन्या, गन्धर्व्वकन्या, वा मानवकन्या, जान नहीं पड़ती हो। ऐ मदगर्व्विते! मैंने जितनी स्त्रियां देखीं वा जिनकी कथा सुनी है, उनमें कोईभी तुम्हारे सदृश ज्ञान नहीं पड़ती। ऐ सुमुखी! पद्मपलाश समान दो आंखोंसे सुशोभित और चन्द्रमासे भी कोमल तुम्हारे मुखको लखकर मैं मदनसे मँथा जाता हूं। महीपाल कामपीड़ित होकर निर्ज्जन वनमें उस बालासे इस प्रकार बोले, पर उस कन्याने कुछभी उत्तर नहीं दिया। पृथ्वीनाथके बार बार उस प्रकार कहने पर वह प्रशस्तनयना इस प्रकार अन्तर्हित हुई, कि जिस प्रकार बिजली मेघके भीतर छिप जाती है। भूपाल उस पद्मपलाशलोचना बालाको ढूंढनेके लिये बावलेकी भांति उस वनके चारों ओर घूमने लगे। इसके अनन्तर वह उसको न देखकर अनेक प्रकारसे बिलपनेके पीछे क्षण भर चुप ही रहे।

चैत्ररथपर्व्वमें एकसौ बहत्तर अध्याय समाप्त।

गन्धर्व्व बोले, कि अनन्तर उस नारीके अदृश्य होने पर शत्रुकुलनाशी भूपाल काममोहित होकर धरती पर गिर पड़े। तब सुन्दरहासिनी प्रशस्त पृथुल-नितम्बिनी तपती नाम्नी वह कन्या फिर उनको दिखाई दी और कामवश कुरुवंशी-श्रेष्ठ भूपालसे मुसकिराती हुई मीठी बातोंमें बोली, कि हे शत्रुनाशि! उठो, उठो, तुम्हारा मङ्गल होवे, तुम भूमण्डल भरमें प्रसिद्ध प्रधान भूप हो, तुमको मोहवश होना नहीं चाहिये। तब राजाने यह मीठी बात सुनकर उस नितम्बिनी को ही सामने देखा। अनन्तर मदनकी जलनसे जलाचित्त यह भूपाल श्यामल अपाङ्गयुक्त उस कामिनीसे तुतली बोलीमें बोले, कि ऐ नीलनेत्रे! मैं कामवश होकर तुम्हारी भजना कर रहा हूं, तुम मुझ पर साधुभावसे प्रसन्न होओ, मेरा प्राण निकल रहा है। हे कमल! गर्भभूते विशालाक्षि! मदन मुझको तुम्हारे लिये ही तेज पांच बाणोंसे बिद्ध कर रहा है, किसी प्रकार शान्त नहीं होता है। हे भद्रे प्रफुल्लचित्ते अनङ्गरूपी घोर भुजङ्ग मुझको काट रहा है। हे वराङ्गने पीनायतश्रोणि! तुम उस कठोर सर्प विषसे मेरी रक्षा करो। हे किन्नर गीतानुरूप भाषिणी! मनोहर सर्व्वाङ्ग सुन्दरी पङ्कजानने चन्द्रवदने! अब मेरा जीवन तुम्हारे हाथमें है। ऐ भीरु! तुम्हारे विना मैं जी नहीं सकूंगा। ऐ पद्मपत्राक्षि! रतिपति मुझको बहुत बिद्धकर

रहा है। ऐ विशालाक्षि! मुझ पर कृपा प्रगट करो। हे असित अपाङ्गि! मैं तुम्हारा भक्त हूं, हे अङ्गने! मुझको त्याग देना तुमको नहीं चाहिये; हे भाविनि प्रीति-योगसे मेरी रक्षा करना तुमको अत्यन्त उचित है, क्योंकि तुम्हें देखकर शीघ्र आजानेसे मेरा चित्त डोल रहा है। ऐ कल्याणि! तुम्हारी सुन्दरता देखकरके दूसरी स्त्री देखनेकी मेरी अभिलाषा नहीं होती। हे भाविनि! मैं तुम्हारे वशमें हो जाता हूं, तुम प्रसन्न होओ, इस अधीन भक्त जनकी भजना करो। ऐ वरारोहे विशालाक्षि अङ्गने! मदनने कठोरवाणोंसे मेरा मर्म्मभेद किया है। ऐ कमललोचने! मेरा शरीर कामाग्निसे जल रहा है, तुम प्रेमसंयोगके जलसे उसको ठण्ढाकर दो। ऐ भाविनि! तुम्हारे दर्शनसे उपजा हुआ कठिन कामदेव कठोर पञ्चवाणोंसे मुझको विद्ध कर रहा है, तुम आत्मदान कर उसको आरोग्य करो। ऐ वराङ्गने! गन्धर्व विधिके अनुसार मुझसे विवाह कर लो। ऐ रम्भोरु! कहा है, कि सब विवाहोंसे गान्धर्व विवाह ही श्रेष्ठ है। तपती बोली, कि हे महाराज! आत्मदानमें मेरी प्रभुताई नहीं है। क्योंकि मेरे पिता विद्यमान हैं। यदि मुझपर तुम्हारे चित्तकी प्रीति हो, तो पितासे प्रार्थना करो। हे नरनाथ! मैंने जिस प्रकार तुम्हारा चित्त चुरा लिया है, तुमनेभी देखतेही वैसेही मेरे हृदय पर कोमल वर्त्ताव किया है। हे नृपश्रेष्ठ! स्त्री मात्रही स्वाधीन नहीं हैं, सो अपनी देह पर अधिकार न रहनेसे मैं तुम्हारे पास नहीं गयी; नहीं तो जिनकी कुलीनता सर्व्वलोकोंमें प्रशंसित है, उन भक्तप्यारे लोकनाथ भूपालको कौन कन्या पति प्राप्त करना न चाहती होगी? अतएव तुम योग्य समय आने पर मेरे पिता आदित्यको प्रणाम और नियम पूर्व्वक उपासना कर उनसे मुझे मांगना। हे शत्रुनाशी महाराज! यदि पिता मुझको तुम्हें दान करनेको सम्मत होवें तो मैं सदा तुम्हारी वशीभूत बनी रहूंगी। हे क्षत्रियवर! मेरा नाम तपती है। मैं इन लोक प्रकाशक, आदित्यकी कन्या और सावित्रीकी छोटी बहिन हूं।

चैत्ररथ पर्व्वमें एकसौ तिहत्तर अध्याय समाप्त।

गन्धर्व्व बोले, कि अनिन्दित रूपवती तपती यह कहकर उसी क्षण ऊंचेको चढ़ गयी। राजा फिर उस भूमि पर गिर पड़े। इधर मन्त्री उनके सहगामी और सम्पूर्ण सेना योधोंके साथ राजाको ढूढ़ते हुए उस बड़े वनके भीतर उनको ऐरावतकी भांति धरती पर पड़े पाया। उस बड़े चापधारी भूपालको बिना अस्त्र भूतलपर लोटते देखकर मानो आगसे भुज गये। आगे सम्मान पूर्व्वक वेगसे निकट जाकर काम-मोहित भूपाल-श्रेष्ठको इस प्रकार भूमि परसे उठा लिया, कि जैसे पिता पुत्रको उठावें। प्रज्ञा अवस्था, कीर्त्ति और नीतिमें वृद्ध उन मन्त्रीने उनको उठाकर अपनी पीड़ा दूरकी। अनन्तर वह उठे हुए पृथ्वीनाथसे कल्याणयुक्त मीठी बातोंमें बोले, कि हे अनघ मनुजशार्दूल! आपका मङ्गल होवे, आप भय न मानें। आगे उन भूपालको जो रणभूमिमें शत्रुओंको गिराते हैं थके मांदे और भूखे प्यासे समझा; वह पद्मगन्धयुक्त ठण्ढे जलसे उनको धूलसे रंगो हुई और मुकुटसे खाली देहको धोने लगे। अनन्तर बलिष्ठ भूपने एक उन मन्त्रीके बिना सब दूसरोंको बिदा कर दिया। सब सेनाओंके राजाकी आज्ञासे चले जाने पर राजा फिर उस पर्व्वत पर बैठे। अनन्तर वह शत्रुदमन महाराज पर्व्वतपर शुद्धआचारके साथ सूर्य्यकी उपासना करनेके लिये दोनों हाथ जोड़के सिर ऊंचा कर खड़े रहे और मनही मनमें ऋषिश्रेष्ठ

वसिष्ठको स्मरण करने लगे। हे नराधिप! अनन्तर दिनों रात इस प्रकार खड़े रहने पर बारहें दिनको वसिष्ठजो वहां आये विशुद्धात्मा धर्म्मशील महर्षि योगबलसे उन संयत-चित भूपालका चित तपतीसे हरा गया जान कर उनका कार्य्य पूरा करनेके लिये सम्भाषण-पूर्व्वक समझाया।

अनन्तर सूर्य्यप्रकाशधारी भगवान ऋषि सूर्य्यसे मिलनेके लिये भूपालके सामनेही ऊपरको चढ़ गये; दोनों हाथ जोड़के सहस्रांशुके निकट पहुंच कर यह कहके अपना परिचय दिया, कि मैं वसिष्ठ हूं। अति तेजस्वी विवस्वान मुनिवरसे बोले कि हे महर्षे! तुम्हारा आना शुभ होवे, कहो, क्या चाहते हो। हे महाभाग वाग्मीवर! तुम मुझसे जो कुछ प्रार्थना करोगे, वह बड़ी दुर्लभ भी होवे, तो मैं तुम्हारी उस वाञ्छित वस्तु को दे दूंगा। महातपस्वी ऋषि वसिष्ठ सहस्रांशु विवस्वान की वह बात सुनकर उनको प्रणाम करके बोले, कि हे विभावसो! सावित्रीसे छोटी आपकी जो तपती नाम्नी कन्या है, मैं उसको राजा सम्वरणके निमित्त प्रार्थना करता हूं। हे आकाशपते! वह राजा अति कीर्त्तिशाली धर्म्मार्थ तत्त्वोंके जानकार और उदारबुद्धि हैं, सो वह आपकी पुत्रीके पति होनेके योग्य वर हैं। दिवाकर ऋषिकी यह बात सुनकर सम्प्रदान करना ठान कर आदर-पूर्व्वक उस विप्रसे बोले, कि हे मुने! राजा सम्वरण भूपोंमें श्रेष्ठ हैं, तुम मुनियोंमें श्रेष्ठ हो, और तपती भी नारियोंमें श्रेष्ठा है, अतएव सम्प्रदानके बिना और क्या विचार हो सकता है? अनन्तर सूर्य्यदेवने स्वयं ही सम्वरणके निमित्त महात्मा वसिष्ठके निकट सर्व्वाङ्गसुन्दरी तपतीको दे दिया।

महर्षि वसिष्ठ तपतीको लेकरके सूर्य्यसे विदा होकर उस स्थानको लौट गये, जहां प्रख्यात कीर्त्तिशाली कुरुश्रेष्ठ सम्वरण थे। वह कामसे जले भुने और तपतीके कारण हृदय जलाये राजा देवबालाके समान सुन्दर-हासिनी तपतीको वसिष्ठके संग आते देखकर अति प्रसन्न होकर शोभा पाने लगे। बादलसे गिरी हुई बिजली जिस प्रकार दशों दिशाको उजालेसे छा देती है, वैसेही सुन्दरी तपतीने आकाशसे उतरकर अपनी शोभासे दिशाओंको सुशोभित किया। राजाका बारह रात्रियोंका कठोर नियम अन्त होने पर विशुद्धात्मा भगवान ऋषि वसिष्ठ वहां आये। भूपाल सम्वरणने इस प्रकार तपस्यासे वरदाता ईश्वर सूर्य्यदेवकी उपासना कर महर्षि वसिष्ठके तेजोबलसे तपनपुत्री तपतीको स्त्री प्राप्त किया; अनन्तर उन नर-सिंहने वसिष्ठकी आज्ञासे देव गन्धर्व्वोंसे सेवा किये जाते हुए उस श्रेष्ठ पर्व्वतही पर तपतीसे विधिपूर्व्वक विवाह किया। आगे उस पहाड़-ही पर विहार करनेके अभिलाषी होकर मन्त्री पर नगर राज्य वाहन और सेना आदिके रक्षाकी आज्ञा की। अनन्तर वसिष्ठ उनको जता करके निज स्थानको पधारे। नरदेव सम्वरण देवोंकी भांति उस पर्व्वत पर विहार करने लगे। उन्होंने बारह वर्षतक। पर्व्वतके वन ओर उपवनोंमें विहार की राज-हे भारतश्रेष्ठ! सहस्रनेत्र इन्द्र वर्षा नहीं धानी और राज्यमें बारह [illegible] वृष्टि न होनेसे स्थावर की। हे शत्रुनाशि [illegible] क्षय पाने लगी। विना वृष्टि जङ्गम और स[illegible] [illegible]ल आन पड़ा, कि उनदिनों पृथ्वी ऐसा काल [illegible] तक नहीं गिरा, सो भला अनाज पर [illegible] उपजनेकी कौनसी सम्भावना रहेगी? प्रजा भूखसे विकल और भूली भटकीसी बनकर इधर उधर घूमने फिरने लगी। राज्य और राजधानीके लोग सदा भूखे रहनेके कारण आपसकी मर्य्यादा खोकर स्त्री पुत्र आदि

परिवारोंको छोड़ने लगी। वह देश भूखे तथा मुर्झाए हुए जनोंसे पूरित होकर प्रेत-राजके नगरके समान प्रेत-पूरित प्रतीत होने लगा। हे राजन्! मुनिश्रेष्ठ भगवान् वशिष्ठ उनके राज्यको उस दशामें देखकर उसे रक्षा करनेकी चेष्टा करने लगे। वह वर्षोंतक तपतीके साथ अन्यत्र रहते हुए उस पृथ्वीनाथको लिवाय लाये अनन्तर नृपशार्दूलके पुरमें प्रविष्ट होने पर असुरनाशी प्रभु इन्द्रने उस राज्यपर कृपादृष्टि करी—यथानियम जल वृष्टि कर अनाज उपजाने लगे। जितेन्द्रिय भूपश्रेष्ठके राज्यकी मङ्गल-चिन्तामें नियुक्त रहने पर सम्पूर्ण प्रजा अति प्रसन्न हुई। अनन्तर नरपति सम्वरणने स्त्री तपतीके साथ बारह वर्ष तक ऐसा यज्ञ किया कि जैसा शचीपतिने शचीके साथ किया था। हे पार्थ! उस तपती नाम्नी तपनकन्याके वंशमें तुमने जन्म लिया है, इसी लिये तुमको तापत्य कहके पुकारा है। हे शत्रुसन्तापन! राजा सम्वरणने उस तपतीसे कुरु नामक पुत्रका जन्म दिया था। उस कुरुवंशमें तुम्हारे जन्म लेनेके कारण तुम तापत्य कहे जा सकते हो।

चैत्ररथपर्व्वमें एकसौ चौहत्तर
अध्याय समाप्त।

वै[illegible]

अर्जुन गन्धर्व्वसे बोले, कि हे भरतवंशश्रेष्ठ! पूर्व्वक्त पूर्ण चन्द्रमा[illegible] कथा सुनकर परम भक्ति महा चापधारी कुरुश्र[illegible]ति शोभा पाने लगे। तपोबलसे अचरज मानकर गन्ध[illegible] अर्जुन वसिष्ठके [illegible] बोले, कि मित्र! तुमने जिन ऋषिका नाम [illegible] सिष्ठ कहके कहा है, मैं उनका वृत्तान्त सुना चाहता हूं, तुम आद्योपान्त कहके सुनाओ। हे गन्धर्व्वनाथ! सुखसे बोलो, कि वह भगवान् ऋषि, जो हमारे अगले पुरुषोंके पुरोहित थे कौन थे। गन्धर्व्व बोले, कि ऋषि वसिष्ठ ब्रह्माके मानस-पुत्र हैं; उनकी पत्नीका नाम अरुन्धती है, जिस काम और क्रोध पर देवोंनेभी जय नहीं पायी है, वे दोनों उनकी तपस्यासे परास्त हो सदा पांव दाबकर फिरते थे। अति क्रोधित होने परभी उन उदारचित्त महर्षिने कुशिक-वंशको उखाड़ नहीं डाला था। वह महात्मा विश्वामित्रसे पुत्र-नाश-रूपी खेद पाकर शक्ति रहनेके कारण कठोर कार्य्यमें प्रवृत्त नहीं हुए थे; उन्होंने यमालयसे मृतपुत्रोंको न लौटा लाकर यमराजकी मर्य्यादाकी इस प्रकार रक्षा की थी, कि जैसे समुद्र अपने तटको नष्ट नहीं करता है। इक्ष्वाकुवंशके भूपालोंने उन जितेन्द्रिय महात्माको प्राप्त कर इस धरती भरका पूरा अधिकार लाभ किया था। हे कुरुनन्दन! उन सब राजाओंने ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठको पुरोहित पाकरकेही नाना यज्ञ किये थे। हे पाण्डवश्रेष्ठ! उन्होंने उन महाराजोंकी यज्ञक्रिया इस प्रकार निर्व्वाह करायी थी, कि जिस प्रकार बृहस्पति देवोंका यज्ञ कराते हैं। अतएव तुमभी धार्म्मिकवर वैदिक धर्म्मके जानकार कोई पुरोहित ढूंढो! हे पार्थ! पृथ्वी जय करनेकी इच्छा रखने वाले क्षत्रियको राज्य वृद्धिके लिये पहिले पुरोहित नियुक्त करना चाहिये, क्योंकि पृथ्वीजयेच्छुक राजाका ब्राह्मणको सामने रखना उचित है। अतएव धर्म्म, काम और अर्थके तत्त्वज्ञ जितेन्द्रिय विद्वान् और गुणवान कोई ब्राह्मण तुम्हारे पुरोहित होवें।

चैत्ररथपर्व्वमें एकसौ पचहत्तर
अध्याय समाप्त।

अर्जुन बोले, कि निज निज दिव्याश्रमोंमें रहनेवाले विश्वामित्र और वसिष्ठमें क्योंकर आपसमें शत्रुता उभड़ी, वह हमसे कहो। गन्धर्व्व बोले, कि हे पार्थ! यह वसिष्ठको

कथा सर्व्वलोकोंमें पुराण करके कही जाती है, मैं यथार्थ रीतिसे कहता जाता हूं, सुनो। हे भरतश्रेष्ठ! कान्यकुब्ज देशमें कुशिक-पुत्र गाधिके नामसे प्रख्यात एक राजा थे; उन धर्म्मात्माके विश्वामित्र नामके एक पुत्र थे; उन विश्वामित्रकी अनगनि सेना तथा वाहन थे और वह शत्रुओंके मथनेहारे थे। वह एक समय मन्त्रीके साथ घने वनमें और सुन्दर निराली तथा वृक्षोंसे खाली भूमि पर मृग और वाराह विद्ध करते हुए मृगयाकरते फिरने लगे। हे नृपश्रेष्ठ! वह मृग पानेकी चेष्टामें थककर और प्यासे बनकर वसिष्ठके आश्रममें जा पहुंचे। ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठने नरश्रेष्ठ विश्वामित्रको आते देखकर, अतिथिकी सेवाके लिये स्वागत किया। हे भारत! उन ऋषिने कुशलक्षेम पूछ करके पाद्य, अर्घ, आचमनीय; वनके फल फूल और पुरोडाश आदि भोजनकी सामग्री देकर उनका आतिथ्य सत्कार किया। हे अर्ज्जुन! महात्मा वसिष्ठकी कामदुघा एक गौ थी; ऋषि जब उस गौको कुछ कामनाकी वस्तु देनेको कहकर दूहते थे, उसी क्षण उसे पाते थे। उस दिन वसिष्ठकी कामनाके अनुसार कामधेनुको दोहनेपर ग्राम तथा वनकी ओषधि, दुग्ध, अमृत समान छओं रस, उन रसयुक्त विशेष विशेष वस्तुओं-मेंसे अमृत समान सुमिष्ट बहुविध भोजन-की, पीनेकी, चबानेकी, चाटनेकी चूसनेकी सामग्री और बड़े बड़े मूल्यवान् वस्त्र और रत्नादि प्राप्त हुए। मन्त्री और सेनाके साथ भूपालने उन सब सम्पूर्ण काम्य वस्तुओंसे सत-कृत होकर अति सन्तोष प्राप्त किया। और उस मनोरमा कामधेनुको देखकर बड़ा अच-रज माना। कामधेनुके शरीरकी बनावट बहुत सुन्दर थी, उसका मेरुदण्ड, पूंछ और चारो स्तन ऊंचे, पार्श्व और उरुदेश सुन्दर, कान और लिलार स्थूल, आंखें स्थूल और मेढ़ककी नाईं ऊंची, थन चौड़ा, पूंछ मनोहर, दोनों कान कीलोंको समान, सींग देखनेमें बहुतही सुन्दर और सिर तथा गला मोटा और चौड़ा था। हे राजा! ऐसी सुघर नन्दिनी नाम्नी उस कामधेनुको देखकर भूपाल गाधिकुमार अति सन्तुष्ट चित्तसे उसकी प्रशंसा कर ऋषिसे बोले, कि हे ब्रह्मन्! तुम मुझसे दश करोड़ गौ लेकर मुझको यह नन्दिनी दो; अथवा हे महामुने! तुम नन्दिनीको देकरके मेरे राज्यको लेकर भोगो। वसिष्ठ बोले, कि हे अनघ! यह दुधारी नन्दिनी देवता, अतिथि, पितर और यज्ञके लिये रखी गयी है, सो तुम्हारे राज्यको ले करके भी मैं इसको नहीं दे सकता। विश्वामित्र बोले, कि मैं क्षत्रिय तुम तपस्वी और वेद पढ़नेवाले ब्राह्मण हो, प्रशान्तचित्त संयत ब्राह्मणकी सामर्थ्य कहां? अतएव यदि तुम दश करोड़ गौ लेकर मुझे इच्छा की हुई गौ नहीं दोगे, तो मैं अपना धर्म्म नहीं छोड़ूंगा,—बलसे छीन ले जाऊंगा। वसिष्ठ बोले, कि तुम बलिष्ठ क्षत्रिय राजा और भुजवीर्य्य युक्त हो, अतएव तुम जैसा चाहो वैसाही करो, अधिक विचारका प्रयोजन नहीं है। गन्धर्व्वराज बोले, कि हे पार्थ! विश्वा-मित्र उनकी उस बातको सुनकर सूर्य्य चन्द्र-की प्रकाशमती उस नन्दिनीको कोड़ोंकी मारसे कातर कर और इधर उधर बांध बांध कर बलसे हर ले जानेको उद्यत हुए। हे पार्थ! कल्याणी नन्दिनी हम्भा शब्द करती हुई भग-वान् ऋषि वसिष्ठके सामने आकर ऊंचे मुंह करके खड़ी रही और बहुत खदेड़ी जाकरके भी उस आश्रमसे नहीं गयी। तब वसिष्ठ बोले, कि ऐ भद्रे नन्दिनी। तुम वार वार जो चिल्लाती हो, वह मैं सुनता हूं, पर ऐ भद्रे! जब राजा विश्वामित्र तुमको बलसे हर रहे हैं, तब मैं क्या करूंगा! क्योंकि मैं क्षमाशील ब्राह्मण हूं।

गन्धर्व्वराज बोले, कि हे भरतश्रेष्ठ! नन्दिनी विश्वामित्र और उनकी सेनाओंके भयसे घबराकर वसिष्ठके बहुत निकट आगयी और बोली, कि हे भगवन्! मैं विश्वामित्र-की भयानक सेनाओंके कोड़ोंकी मारसे घायल होकर अनाथके समान रो रही हूं, आप मेरी क्यों उपेक्षा कर रहे हैं? गन्धर्व्वराज बोले, कि नन्दिनी कातर होकर इस प्रकार रोने लगी, पर नियमशील महामुनि तिस परभो क्षुब्ध वा अधीर नहीं हुए। वह नन्दिनीसे बोले, कि क्षत्रियका बल तेज और ब्राह्मणका बल क्षमा है; सो मैं क्षमा गुणसे आक्रष्टहो रहा हूं, सो यदि तुम चाहो, तो जाओ। नन्दिनी बोली, कि हे भगवन्! क्या आपने मुझको त्याग दिया, कि ऐसा कहते हैं! हे ब्रह्मन्! आपके न त्यागनेसे मुझको कोई बलपूर्व्वक नहीं लेजा सकेगा; वसिष्ठ बोले, कि हे कल्याणि! मैं तुमको नहीं त्यागता हूं, यदि तुम रह सको तो रह जाओ, वह तुम्हारे बछड़ेको कठिन रस्सीसे बांध कर ले जा रहा है।

गन्धर्व्वराज बोले, कि दुधारी नन्दिनो तब [illegible]की "रह जाओ" यह बात सुनतेही सिर [illegible] वसिष्ठ[illegible] [illegible] अधोर्य [illegible]कर भयानक मूर्त्ति [illegible]और गला ऊपर उठा[illegible] [illegible]नार बार [illegible]भर क्रोधके मारे नेत्र लालकर [illegible] हम्बा रव [illegible]रती हुई विश्वामित्रकी सेना-ओंको चारो ओ[illegible] खदेड़ने लगी। तब फिर सेनाओंके कोडोंकी [illegible]से घायल होकर और चारो ओरसे बांधी जा[illegible] अति क्रोधित होकर जलती हुई देहको दुपहरके सूर्य्यकी भांति देखनेके अयोग्य बनाया और पूंछसे बार बार बड़े बड़े अङ्गारोंकी वृष्टि करने लगी; आगे पूंछसे पह्लवगण, थनसे द्राविड़ और शकगण, गोबरसे काञ्चीगण, पार्श्वभागसे शवर-गण और फेनसे पौण्ड्र, किरात, यवन, सिंहल, बर्व्वर, खस, चिबुक, पुलिन्द, चीन, हुन, केरल आदि नाना म्लेच्छोंको बनाया। नाना वेश पहिनने वाले, नाना अस्त्र धरे हुए, वह सब उपजे हुए म्लेच्छोंकी सेना उसक्षण उत्साहित होकर विश्वामित्रके सामनेही इधर उधर फैल गयी; और उनमेंसे पांच पांच वा सात सातने विश्वामित्रके एक एक योद्धेको घेर लिया। आगे विश्वामित्रके देखतेही देखते उनकी सेना उन लोगोंको गहरी अस्त्र-वृष्टिसे घायल होकर और भय खाकर इधर उधर भागने लगी। हे भरतश्रेष्ठ! वसिष्ठकी सेनाने युद्धमें पूर्ण क्रोधित होने परभी विश्वामित्रकी सेनामें किसीके प्राण नष्ट नहीं किये; नन्दिनी ने केवल उनको दूरको खदेड़ा। वे तीन योजन दूर भगायी जाकर घबराहटके मारे रोने लगीं और ऐसा किसीकोभी नहीं देखा, कि उनकी रक्षा करे। तब विश्वामित्रने ब्रह्मतेजकी उस बड़ी आश्चर्य्यलीलाको देखकर क्षत्रियधर्म्मसे विरक्त होकर यह कहा, कि क्षत्रिय-बलपर धिक्कार है, ब्रह्मतेजका बलही बल है, बलाबल निश्चय करना है, तो तपस्याही उत्कृष्ट कही जायगी। अनन्तर उन्होंने बड़े भारी राज्य और प्रज्वलित राजलक्ष्मीको छोड़ करके भोगसे विरत होकर तपमें मन लगाया। आगे तपमें सिद्ध और प्रदीप्त तेजस्वी होकर अपने तेजसे तीनों लोकोंको छायकर सम्पूर्ण [illegible]ब्राह्मणकी[illegible]करके ब्राह्मण बने। आगे लोकोंको ता[illegible] उन कुशिकनन्दनने इन्द्रके साथ सोमरस पान भी किया था!

चैत्ररथ पर्व्वमें एकसौ छिहत्तर

अध्याय समाप्त ।

गन्धर्व्वराज बोले, कि हे पार्थ! कल्माष-पाद नामक अनुपम तेजःपूर्ण इक्ष्वाकुवंशी एक राजा थे। एक समय वह मृगयाके निमित्त नगरसे बनको गये। शत्रु मर्दनेहारे भूपाल घोर वनमें मृग और बराहोंको काटकूट कर

घूमने लगी। वह दूरतक ऐसा करके थककर मृगयासे निवृत्त हुए। इसके पहिले प्रतापी विश्वामित्रने उनको यजमान बनाना चाहा था। युद्धमें अजेय राजा कल्माष-पाद भूख प्यासके मारे विकल होकर एकही मनुष्यके चलने योग्य सङ्कीर्ण पथसे चल रहे थे, कि सामने आते हुए ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठपुत्र महात्मा मुनि शक्तिको देखा। वसिष्ठकुलके बढ़ानेवाले महाभाग शक्ति महात्मा वसिष्ठके सौ पुत्रोंमेंसे बड़े थे। राजा उनसे बोले, कि तुम मेरे पथसे हट जाओ। ऋषि मीठी वातोंमें उनको समझा कर बोले, कि महाराज! यह मेरा पथ है। सम्पूर्ण धर्मशास्त्रोंमें यह सनातन धर्म करके कहा है, कि ब्राह्मणोंको पथ देना राजाका कर्तव्य है। वे पथके लिये आपसमें इस प्रकार बकवाद करने लगे और एक दूसरे को "हटो" यह कहने लगे। ऋषि धर्मके पथिक होकर पथसे नहीं हटे, राजाने भी मान और क्रोधके वश मुनिको पथ नहीं दिया। अनन्तर ऋषिके पथ न छोड़ने पर राजाने मोहसे राक्षसकी भांति मुनिके कोड़े मारे। तब मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठपुत्रने कोड़ोंकी चोटसे घायल और क्रोधसे अचेत होकर यह कहके उन भूपालको शाप दिया, कि रे नराधम! जोकि मुझ तपस्वीको तूने राक्षस समान मारा, तू आजसे राक्षस होगा, तू नरमांस पर आसक्त होकर पृथ्वी पर टहला करेगा; रे क्षत्रियाधम! अब जा। तपोबलयुक्त शक्तिने यह कह कर पथ छोड़ दिया। इससे पहिले उस कल्माषपाद राजाको याजन-क्रियाके विषयमें विश्वामित्र और वसिष्ठमें आपसकी शत्रुता हो गयी थी; इसलिये विश्वामित्र वसिष्ठको लक्ष्य कर राजाके निकट गये। हे पार्थ! राजा और शक्ति उस प्रकार झगड़ रहे थे, कि ऐसे समय कठोर तपस्वी प्रतापी विश्वामित्र उनके समीप जा पहुंचे। अनन्तर नृपश्रेष्ठ कल्माषपादने वसिष्ठके समान तेजस्वी ऋषि शक्तिको वसिष्ठ-पुत्र करके जाना। हे भारत! आगे विश्वामित्र अपनी प्रिय इच्छाको सिद्ध करनेके लिये अपनेको अन्तर्हित करके उन दोनोंको लांघ गये। नृपोत्तम कल्माषपादने शक्तिसे शापग्रसित होकर उनको प्रसन्न करनेके लिये उनकी उपासना कर शरण ली। हे कुरुश्रेष्ठ! विश्वामित्रने उन राजाके भावको समझकर राक्षसको उनके शरीरमें घुसनेकी आज्ञा दी। किङ्कर नामक राक्षस उन विप्रर्षिके शाप और विश्वामित्रकी आज्ञासे राजाके शरीरमें जा घुसा। हे शत्रु-दमन! मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र राजाको राक्षस जानकर वहांसे चले गये। हे पार्थ! राजा शरीर स्थित राक्षससे अत्यन्त पीड़ित होकरके कुछ समझ नहीं सके। अनन्तर वह वनको लौट जा रहे थे, कि ऐसे समयमें भूखे एक ब्राह्मणने उनको देखकर उनसे मांसयुक्त भोजनकी सामग्री मांगी। मित्र पालनेवाले राजा उनसे बोले, कि हे ब्रह्मन्! मुहूर्त भर यहां ठहर कर मेरे लौटनेकी बाट देखते रहें, मैं लौट कर आपको इच्छानुरूप भोजन दूंगा। राजा यह कह चले गये। ब्राह्मण वहां राजाकी प्रतीक्षामें ठहरे रहे। हे पार्थ! महानुभव महाराजने सुखसे मनमाना घूम-घाम कर लौट करके अन्तःपुरमें प्रवेश किया। आगे वह आधी रातको उठकर ब्राह्मणसे स्वीकार किये हुए विषयको स्मरण कर उसी क्षण रसोइयेको बुलवाकर बोले, कि उस वनमें एक ब्राह्मण भोजनकी इच्छासे मेरी बाट ताकते हैं, तुम अब वहां जाकर उनको मांस-सहित अन्न दे आओ।

गन्धर्व्व बोले, कि रसोइयेने राजाकी आज्ञाको सुनकर कहीं मांस न पाकरके पीड़ितचित्त होके उनसे वह बात कह सुनायी। राजा राक्षसयुक्त थे, सो विनासोच समझके

बार बार कहा, कि तुम नरमांस लाकर उस ब्राह्मणको खिलाओ। रसोइयां "तथास्तु" कहकर वेगसे बिना भय वध्यघातियोंके घरमें जाकर नरमांस लाया। आगे अन्नके साथ उस नरमांसको विधिपूर्व्वक पका कर बिना विलम्ब उन भूखे तपस्वी ब्राह्मणके निकट जाकर उनको दे दिया। ब्राह्मणने सिद्ध नेत्रोंसे उस अन्नको देखकर क्रोधयुक्त नेत्रोंसे कहा, कि यह अन्न भोजन योग्य नहीं है; जिस नृपाधमने मुझको भोजनके अयोग्य अन्न दिया है,उस मूर्खको नरमांस पर लालसा होगी; पहिले ऋषि शक्तिने जैसा कहा था, वैसाही होगा—यह राजा नरमांस पर आसक्त होकर जीवोंमें घबराहट लाकर इस पृथ्वीपर घूमा करेगा। इस प्रकार राजा पर दूसरी बार शाप लगनेसे वह अति बलयुक्त हुआ; उससे राजाने शरीरमें घुसे हुए राक्षसके बलसे चेत खो दिया। हे भारत! अनन्तर राक्षससे इन्द्रियोंके चुराये जाने पर नृपश्रेष्ठ कुछ-काल पीछे शक्तिको देखकर बोले, कि तुमने मुझको अनुचित शाप दिया है, सो मैं पहिले तुम्हीसे आरम्भकर मनुष्य खानेको प्रवृत्त होता हूं। राजा यह कह कर उसी [illegible] उनके प्राण नष्ट कर उनको इस प्रकार [illegible] गये, कि जैसे व्याघ्र मनमाने पशुको खा लेता है। विश्वामित्र वसिष्ठ-पुत्र शक्तिको मरते देख कर [illegible] बार राक्षसको वसिष्ठ-जीके पुत्रोंको खानेकी [illegible] देने लगे। वह राक्षसयुक्त राजा क्रोधित होकर महात्मा वसिष्ठके दूसरे पुत्रोंको क्रमसे इस प्रकार खा गये, कि जैसे सिंह छोटे मृगको खाले। वसिष्ठने विश्वामित्रके द्वारा उन पुत्रोंके नष्ट होनेकी बात सुनकर पुत्र-विच्छेदके कठोर शोकको इस प्रकारसे सहन किया, कि जैसे महाद्रिका भार धरती सम्हाले। उन महा-मति मुनिश्रेष्ठने आत्मघात करना निश्चय किया, पर तौभी कौशिक वंशके उखाड़नेकी चेष्टा नहीं की। उन्होंने सुमेरुकी चोटी परसे अपनेको गिराया पर उससे उनको कोई क्लेश नहीं पहुंचा; उनका पर्व्वतपरके पत्थर की ढेर पर गिरना मानों रूईके फाहे पर गिरनेके सदृश हुआ। हे पाण्डव! वह भग-वान् महर्षि पहाड़की चोटी परसे गिरकर न मरनेके हेतु महावनमें आग बाल कर उसमें जा घुसे। परन्तु तब जलती हुई आगने तेजसे जलने परभी उनको नहीं जलाया। हे शत्रु-नाशि! उनको वह आग ठण्ढी जान पड़ी। अनन्तर पुत्र शोकसे विकल महामुनि समुद्र देखकर अपने गलेमें भारी पत्थर बांध करके उसके जलमें जा गिरे, उसपरभी न डूब कर समुद्रकी लहरके बलसे तट पर उठाये गये। तब किसी प्रकार उनकी मृत्यु न होने पर वह दुःखी चित्तसे आश्रमको लौट गये।

चैत्ररथ पर्व्वमें एकसौ सतहत्तर
अध्याय समाप्त।

गन्धर्व्व बोले, कि अनन्तर भगवान् मुनि अपने आश्रमको पुत्रोंसे खाली देखकर अति दुःखी चित्तसे फिर आश्रमसे निकले। हे कौरवनन्दन पार्थ! वह शोकयुक्त ऋषि वर्षामें नये जलसे भरी हुई एक बहती हुई नदीको तट परके नाना वृक्षोंको हरते देखकर फिर सोचने लगे कि मैं इस जल में डूबकर प्राण छोड़ूं। आगे उन्होंने रस्सीसे अपनेको दृढ़रूपसे बांधकर उस बड़ी नदीके जलमें डुबाया। हे शत्रुबल-मर्द्दनेहारे! तब उस नदीने उनकी रस्सीको काटकर बन्धनको तोड़के स्थल पर छोड़ दिया; इससे उन्होंने बन्धनसे मुक्त हो और उठकर उस नदीका "विपाशा" नाम रखा। अनन्तर वह शोकसे विकल एक स्थान पर रह नहीं सके; पर्व्वत, नदी और तालोंमें घूमने फिरने लगे। एक समय

हैमवती नाम्नी नदीको अति क्रोधी हिंसक जलजन्तुओंसे भरी हुई और भीषणाकार देखकर उसके सोतेमें जा गिरे। वह बड़ी नदी विप्रवरको अग्निवत् अनुभव कर सैकड़ों भागोंमें द्रुतवेगसे बह चली इस लिये तभीसे उस नदीका नाम "शतद्रू" प्रसिद्ध हुआ है। महर्षि उस भयानक नदीमें गिरकेभी अपनेको स्थल पर उठाये जाते देखकर यह समझ करके कि "इच्छानुसार प्राणत्याग नहीं कर सका," फिर आश्रम की ओर चले। वह भांति भांतिके पर्व्वत और देशोंसे होकर अन्तमें आश्रमको आ रहे थे, कि ऐसे समयमें अदृश्यन्ती नाम्नी उनकी पुत्रवधु उनके पीछे जा रही थी। तब उन ऋषिने निकट होनेके कारण पीछेसे षड्ङ्गसे अलंकृत पूर्णार्थयुक्त वेदपठनकी ध्वनि सुनकर पूछा, कि कौन मेरे पीछे आ रहा है। पुत्रवधू बोली, कि हे महाभाग। मैं शक्तिकी तपोयुक्ता तपस्विनी स्त्री अदृश्यन्ती, आपकी पुत्रवधू हूं। वसिष्ठ बोले, कि पुत्रि! मैंने पहिले शक्तिके मुखसे जिस प्रकार साङ्गवेदकी ध्वनि सुनी थी। अब किसके मुखसे वेद पठनकी वैसी ध्वनि सुन पड़ी? अदृश्यन्ती बोली, कि हे मुने! तुम्हारे पुत्र शक्तिके वीर्य्यसे मेरे गर्भमें एक सन्तान है; वह पुत्र बारह वर्षसे ऐसा वेदाभ्यास कर रहा है; आपने उसीसे वेदकी ध्वनि सुनी है। गन्धर्व्व बोले, कि हे पार्थ! श्रेष्ठ भाग्यमान् ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठ अदृश्यन्तीकी उस बातको सुनकर प्रसन्न होकर यह समझ कर, कि "मेरा वंश है," मृत्युकी इच्छासे निवृत्त हुए। हे अनघ! वह लौटकर पुत्रवधुके संग जा रहे थे, कि ऐसे समय निरालेमें बैठे हुए कल्माषपादको देखा। हे भारत! उस कठोर राक्षसयुक्त राजा कल्माषपादने मुनिको देखकर उसीक्षण क्रोधसे उठ करके खा जाना चाहा; अदृश्यन्ती सामने उस कुटिल कर्म्मवालेको देखकर भयसे घबराकर वसिष्ठसे बोली, कि हे भगवन्! वह कठोर राक्षस कठोर दण्डधारी साक्षात यमराजके समान लकड़ी उठाकर इधर आ रहा है। हे सर्व्ववेद-निपुण महाभाग! धरती भरमें आपके बिना कोई भी इसके रोकनेको समर्थ नहीं है। हे भगवन्! इस कठोर भयावने आकारके पापात्मासे मेरी रक्षा करें! मुझको निश्चय जान पड़ता है, कि वह राक्षस हम दोनोंको खाजानेको उद्यत हुआ है। वसिष्ठ बोले, कि बेटि! भय मत खाओ, राक्षससे कोई भय नहीं है। तुम जिससे वर्त्तमान भय देखती हो, वह राक्षस नहीं हैं, जो कल्माषपाद नामक भूमण्डलमें प्रसिद्ध राजा हैं, वही इस वनमें अति भयङ्कर आकार धारणकर राक्षसके स्वरूपमें वास कर रहे हैं;

गन्धर्व्व बोले, कि हे भारत! तेजस्वी भगवान ऋषि वसिष्ठने उनको आ गिरते देखकर घोरनादसे रोका। आगे मन्त्रसे पवित्र किये हुए जलसे उनको नहला कर उस घोर शापसे मुक्त किया। वह राजा बारह वर्षतक वसिष्ठ-पुत्र शक्तिके तेजसे इस प्रकार ग्रसित थे, कि जिस प्रकार सूर्य्य राहुसे ग्रासित होता है, अब शापसे मुक्त होकर ऐसे तेजसे उस बड़े वनको सुशोभित किया कि जैसे सूर्य्यदेव सन्ध्याकालके बादलको रंग देते हैं। तब राजा ज्ञान प्राप्तकर प्रणाम-पूर्व्वक दोनों हाथ जोड़कर ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठसे बोले, कि हे महाभाग! मैं सुदास-राजाका पुत्र आपका यजमान हूं! हे मुनि-श्रेष्ठ! कहिं अब आपकी क्या इच्छा है, मैं उसको पूरी कर देता हूं। वसिष्ठ बोले, कि हे मानवेन्द्र! मेरी जो इच्छा थी, वह कालके क्रमसे पूरी हो गयी है, अब तुम राजधानीमें जाकर राज्य शासन करो, फिर कभी ब्राह्मणका अनादर मत करना! राजा बोले, कि हे महाभाग! मैं कभी ब्राह्मणका अनादर

नहीं करूंगा, आपकी आज्ञाधीन रहकर ब्राह्मणोंकी भली भांति पूजा करूंगा। हे सर्व्ववेद निपुण द्विजोत्तम! मैं आपसे वह वस्तु पानेकी इच्छा करता हूं, जिससे इक्ष्वाकुवंशके ऋणसे छुटकारा पाजाऊं! हे श्रेष्ठ! आप इक्ष्वाकुवंशको बढ़ानेवाला रूपगुणशील अच्छा पुत्र मुझको देवें। गन्धर्व्वराज बोले, कि सत्यशील द्विजोत्तम वसिष्ठने यह कहकर कि "पुत्र दूंगा" उन बड़े चापधारी राजासे अङ्गोकार किया। हे मनुजेन्द्र! अनन्तर वसिष्ठ कालानुसार उन राजाके साथ अयोध्या नाम्नी प्रसिद्ध नगरीको गये। प्रजाओंने पापमुक्त महात्मा राजाको आते देखकर इस प्रकार प्रसन्न चित्तसे स्वागत किया कि, जैसे देवगण देवराजको आते देखकर प्रमुदित होते हैं। नरेन्द्रने बहुत दिनोंके पीछे महात्मा वसिष्ठके साथ पुण्य लक्षणोंसे भरी हुई नगरीमें प्रवेश किया। तब अयोध्यावासी जन पुरोहितके साथ उन महीपालको उगे हुए सूर्यको भांति देखने लगे। उन भूपतिने अपनी शोभासे अयोध्या नगरीको इस प्रकार छा लिया कि जैसे शरत्कालमें उगा हुआ चन्द्रमा आकाशमण्डलको सुशोभित करता है, उस कालमें राजमार्ग जलसे भिङ्गोया गया और भली प्रकार साफ किया गया था और नगरके स्थान स्थानमें फहराती हुई ध्वजा और पताका सोह रहीं थी, सो नगर देखकर राजाका चित्त आनन्दके समुद्रमें डूब गया। हे कुरुनन्दन! तब तुष्ट और पुष्ट जनोंसे छायी हुई वह नगरी भूपाल कल्माषपादसे इस प्रकार शोभा पाने लगी, कि जिस प्रकार अमरावती अमरनाथसे सुशोभित होती है। अनन्तर राजर्षिके अपूर्व्व पुरीमें प्रवेश करने पर उनकी आज्ञासे देवी राजराणी वसिष्ठको उपासना करने लगी। महर्षिश्रेष्ठ वसिष्ठ दिव्यविधिके अनुसार नियम करके उससे मिले। अनन्तर राजराणीके गर्भ होने पर महर्षि राजाके प्रणामसे पूजे जाकर आश्रममें लौट आये। आगे बहुत दिन बीत गये, तिसपर भी राणीको सन्तान नहीं हुई, तब यशस्विनी राजराणीने अश्म अर्थात् पत्थरकी चोटसे कोखको फाड़ डाला। इस लिये बारह वर्षतक गर्भमें स्थित उन पुरुषश्रेष्ठने अश्मक नामक राजर्षि होकर जन्म लिया, कि जिन्होंने पौदन्य नामक नगरको बसाया था।

चैत्ररथ पर्व्वमें एकसो अटहत्तर
अध्याय समाप्त।

गन्धर्व्वराज बोले, कि हे राजन्! अनन्तर आश्रममें स्थित अदृश्यन्ती दूसरे शक्तिके समान शक्तिका वंशबढ़ानेवाला पुत्र प्रसव किया। हे भरतश्रेष्ठ! मुनिश्रेष्ठ भगवान वसिष्ठने स्वयं उस पोतेकी जात-कर्म्मादि क्रिया की। वह पुत्र जब गर्भमें था, तब वसिष्ठने परासु होना अर्थात् जीवन त्याग देना निश्चय किया था, सो वह पराशर नामसे भूमण्डलमें प्रसिद्ध हुए। धर्म्मात्मा पराशर जन्मसे मुनि वसिष्ठको पिता जानकर उनपर पिताके सदृश व्यवहार किया करते थे। हे शत्रु-मंथन कुन्तीनन्दन! एकदिन उन्होंने माता अदृश्यन्तीके सामने विप्रर्षि वसिष्ठको पिता कहके पुकारा; अदृश्यन्ती उनको मोठी बोलीसे स्पष्टरूपसे पिता कहते सुन करके आंखोंमें आंसू भरकर बोली, कि बेटा! तुम अपने दादाको पिता कहके मत पुकारना। हे पुत्र! एक राक्षसने वनमें तुम्हारे पिताको खा लिया है। हे अनघ! तुम जिनको पिता समझ रहे हो, वह तुम्हारे पिता नहीं हैं, पिताके पिता हैं। सत्यवादी ऋषिश्रेष्ठ पराशरने यह बात सुन करके दुःखी होकर सर्व्व लोकोंको नष्ट करना निश्चय किया! महा तपस्वी, वेदमें पण्डितोंसे श्रेष्ठ, परिणामदर्शी मैत्रावरुणि ऋषि वसिष्ठने उनको सर्व्वलोक नष्ट करनेका प्रण ठानते देख कर रोका; उन्होंने जिस रीतिसे रोका वह कहता हूं, सुनो।

वसिष्ठ बोले, कि पहिले कृतवीर्य्य नामक-प्रख्यात भूपालश्रेष्ठ पृथ्वीनाथ वेदज्ञ भृगुवंशके यजमान थे। हे पृथ्वीनाथ! उन्होंने सम-यज्ञके अन्त होने पर अग्रभुक्त ब्राह्मणोंको बहुत धन-धान्यसे सन्तुष्ट किया था। अनन्तर उस नृप शार्दूलके स्वर्गको सिधारने पर उनके वंशके राजाओंको धनका प्रयोजन हुआ। तब वे राजा भार्गवोंके बहुत धन है, जानकर याचककी भांति उनके पास जा पहुंचे। भार्गवोंमेंसे किसी किसीने यह सोचकर कि हमारा धन क्षय न होने पावे धनको धरतीमें गाड़ रखा, किसी किसीने क्षत्रियोंसे भय खाकर अपना अपना धन ब्राह्मणोंको दान दे दिया; किसी किसीने और कुछ समझ कर उन क्षत्रियोंको मनमाना धन दे दिया। ऐ बेटा! अनन्तर किसी क्षत्रियने भार्गवोंके घर खोद कर बहुत धन पाया। तब बड़े चापधारी क्षत्रियलोग सब मिलकर उस अतुल धनको देखकरके शरण लिये हुए भार्गवोंको अनादरपूर्व्वक तेज वाणोंसे मारने लगे; यहां तक कि वे भार्गवोंके गर्भमें स्थित बालकोंको भी नष्टकर पृथ्वी भरमें घूमने लगे। इस प्रकार भृगुवंशके उखड़ जाने पर भार्गवोंकी स्त्रियां भय खाकर जानेके अयोग्य हिमाचल पर भाग गयीं। उनमेंसे किसी एक सुन्दरी नारीने पतिकुलकी रक्षाके लिये क्षत्रियके भयसे एक जांघमें अति वीर्य्यवन्त एक गर्भको धारण किया। अनन्तर एक ब्राह्मणीने उस गर्भका हाल जान कर भयके मारे क्षत्रियोंसे यहां चल कर कह दिया। क्षत्रिय लोग यह सुनतेही उस गर्भको नष्ट करनेको उद्यत होकर चले और गर्भवती ब्राह्मणीको उसके तेजसे जलती हुई देखा। उस समय गर्भमें स्थित बालक ब्राह्मणीकी जांघको भेद-कर दुपहरके तेज सूर्य्यकी भांति क्षत्रियोंकी आंखें झुलस कर निकला। राजा लोग नेत्रके बिना दृष्टि चली जानेसे मोहके वशमें होकर चलनेके अयोग्य पहाड़की चारों ओर घूमने लगे; आगे दृष्टि प्राप्त करनेकी आशासे उस ब्राह्मणीकी शरण ली। उन्होंने बुझी हुई शिखायुक्त अग्निकी भांति ज्योतिसे हाथ धो और अचेत होकर दुःखी चित्तसे महा भाग्य-वती ब्राह्मणीसे कहा, कि हम आपकी कृपासे नेत्र, पावें, तो इस पापकर्म्मसे निवृत्त होकर सब घरको जायं। ऐ शोभने! आप पुत्र-सहित हम लोगों पर प्रसन्न होवें आंख देकर इन राजाओंको रक्षा करें।

चैत्ररथपर्व्वमें एकसौ उनासी अध्याय समाप्त।

ब्राह्मणी बोली कि हे पुत्रो! मैं क्रोधित नहीं हुई हूं और न मैंने तुम्हारी दृष्टि हरली है; पर सन्देह नहीं है, कि मेरी जांघसे पैदा हुआ यह भृगुवंशी कुमार तुम पर क्रोधित हुआ है। हे पुत्रो! इस महात्मा बालक-होने बन्धुओंका नाश स्मरण कर क्रोधयुक्त चित्तसे तुम्हारी आंखें हरली हैं! हे पुत्रो! जब तुमलोग भार्गवोंके गर्भस्थित बालकोंकोभी नष्ट करने लगे, तबसे मैंने सौवर्षतक यह गर्भ धारण किया है। भृगुवंशके फिर हितानुष्ठान के निमित्त छओं अङ्गोंके साथ सम्पूर्ण वेद इस बालकके हृदय-मन्दिरमें प्रविष्ट हुए हैं। इस बालकने पितरोंके बधके कारण निश्चयही तुम लोगोंको नष्ट करनेकी इच्छा की है; इसीके दिव्य तेजके बलसे तुम्हारी आंखें नष्ट हुई हैं। हे पुत्रो! तुम लोग इस मेरी जांघसे पैदा हुए बालकसे प्रार्थना करो; वह तुम्हारे प्रणामसे प्रसन्न होकर आंखें दे सकता है। वसिष्ठ बोले, कि अनन्तर सब राजालोग यह बात सुनकर उस जांघसे पैदा हुए बालकसे कहने लगे, कि "प्रसन्न होवें, प्रसन्न होवें", तब और्व्वने प्रसन्न होकर उनको आंखें दीं। इन साधुश्रेष्ठ विप्रर्षिने ऊरुको भेदकर जन्म लिया था, इसलिये वह और्व्व नामसे लोकोंमें

प्रख्यात हुए। राजोंके आंखे पाकर अपने स्थानको चले जाने पर भार्गव और्व्वने सर्व्वलोकोंका परास्त करना निश्चय किया। हे बेटा! भृगुवंशके शत्रुओंको नष्ट करनेकी चाहनेवाले महानुभाव भृगुनन्दन और्व्वने सर्व्वलोक नष्ट करनेके लिये कठोर तपस्यामें नियुक्त होकर अपने मनको सम्पूर्ण रूपसे निविष्ट किया। यह सोचकर कि पितामहोंको आनन्द पहुंचावेंगे कठोर तपसे सुर, असुर और नर इन सब लोगोंको तापित करने लगे। हे बेटा! अनन्तर उनके सब पितर लोग यह जानकर पितृलोकोंसे आन करके कुलके आनन्द देनेवाले, और्व्वसे बोले, कि हे पुत्र और्व्व! तुम तपोबलसे कठोर हुए हो, तुम्हारा प्रभाव हमने प्रत्यक्ष किया है; अब तुम सम्पूर्ण लोकों पर प्रसन्न होओ—अपने क्रोधको त्याग दो। पहिले जब क्षत्रियोंने भार्गवोंको हिंसा की थी, तब जितेन्द्रिय भार्गवोंने अपने बधको तुच्छ समझा था; वे उसके प्रति-विधान करनेमें असमर्थ नहीं थे। आयु बहुत बढ़ जानेसे जब हमको क्लेश होने लगा, तब हमने स्वयंही क्षत्रियोंसे मारे जानेकी अभिलाषा की थी। इस लिये भार्गवोंने घरमें धन गाड़कर उनको क्रोधित किया था। हे द्विजोत्तम! हम स्वर्ग चाहनेवाले हैं, हमको धनसे क्या प्रयोजन है, कुवेरने हमारे लिये बहुत धन बटोर रखा है। जब हमने देखा, कि मृत्यु किसी प्रकार हमको ले नहीं सकी, तब हमने इस उपायको अच्छा समझा; हे बेटा! आत्मघाती पुरुष शुभलोक नहीं पाता है, इसकी आलोचना कर हमने आत्मघात नहीं किया था। हे बेटा! तुमने जो कर्म्म करनेकी इच्छा की है, वह हमारा प्रिय नहीं है! अतएव तुम सर्व्वलोकोंके परास्त करनेकी इच्छा रूपी पाप कर्म्मसे मनको निवृत्त करो। हे पुत्र! तुम तपके तेजसे दूषित इस जन्मे क्रोधको त्याग दो, सातों लोक तो दूरकी बात है, क्षत्रियोंकोभी नष्ट मत करना।

चैत्ररथ पर्व्वमें एकसौ अस्सी अध्याय समाप्त।

और्व्व बोले, कि हे पितरो! मैंने क्रोधित होकर सर्व्व लोकोंके विनाशके लिये जो प्रतिज्ञाकी है, वह कभी व्यर्थ नहीं होगी; मैं व्यर्थ क्रोध और व्यर्थ प्रतिज्ञा करना नहीं चाहता। यदि मैं इस प्रतिज्ञाको पूरो न करूं, तो क्रोधकी आग मुझको इस प्रकार जलावेगी, कि जैसे अग्नि वनको जलाता है। क्रोध किसी कारणसे आजाय, तो जो उसको रोक लेता है वह कभी पूरी रीतिसे धर्म्म अर्थ काम इन तीन वर्गोंको पालन नहीं कर सकता है और सर्व्वजय चाहनेवाले भूपभी विशेष विशेष स्थानमें क्रोध दिखावें, तो उस क्रोधसे दुष्टका शासन और सुजनका पालन होता है। पहिले क्षत्रियोंने जब भार्गवोंको नष्ट किया था, तब मैंने उरुके भीतर गर्भशय्या पर लेटे रहकर भार्गवोंकी चिल्लाहट सुनी थी। जब क्षत्रिय-कुलपांशु लोग गर्भमें स्थित बालक तक सब भार्गवोंको नष्ट करने लगे, तभीसे मैं क्रोधित हो गया। मेरे पितृगण और पूर्णगर्भवती माता जब शोकसे विकल और भयसे कातर हुई थीं तब तीनोंलोकमें किसीने उनकी रक्षा नहीं की थी। जब किसीने भृगुपत्नियोंको रक्षा नहीं की, तब मेरी शुभलक्षणयुक्ता इस माताने एक उरुसे मुझको धारणकर रखा था। देखो, इस भूमण्डलमें एक मनुष्य पापकर्म्मका नष्ट करने वाला रहे, तो कोई भी पाप कर नहीं सकता, जो लोकोंमें कोई पापकर्म्मका दण्ड करनेवाला नहीं रहे, तो बहुतेरे पापकर्म्ममें प्रवृत्त होते हैं। जो जन शक्तिमान और पाप रोकने योग्य होने परभी जान बूझकर पापकर्म्म नहीं रोकता है, वह उस पापमें लिप्त होता है। पर राजालोग

और समर्थजनगण उस पापकर्म्मके रोकनेको सामर्थ रखने परभो इस लोकमें अपने जीवनको अभीष्ट जानकर मेरे पितरोंको रक्षा नहीं कर सके; मैंने इसी हेतु क्रोधित होकर उन सब लोगोंके उस पापकर्म्मका प्रतिविधान करनेका उद्योग किया है, सो आपकी आज्ञा मान नहीं सकता। मैं प्रतिविधानके यत्नश होकरकेभी यदि प्रतिविधानका प्रयत्न न करूं, तो लोकोंपर फिर अत्याचारके कारण बड़ा भय आन पड़ेगा। मैंने जिस क्रोधाग्निसे लोकोंको जलानेकी इच्छा को है, यदि उसे अपने तेजसे रोक लूं, तो वह अग्नि मुझकोहीज ला मारेगा। हे प्रभुगण! मैं जानता हूं कि आप सर्व्व-लोकोंके हित चाहनेवाले हैं, सो ऐसी आज्ञा करें, कि मेरा और सर्व्वलोकोंका मङ्गल होवे। पितृगण बोले, कि सबही लोक जलपर प्रतिष्ठित हैं, अतएव तुम्हारा जो क्रोधाग्नि सर्व्वलोकोंको खालेना चाहता है तुम उसको जलमें डाल दो, तबही तुम्हारा मङ्गल होगा। हे द्विजश्रेष्ठ! सब रस जलपूर्ण हैं, और सम्पूर्ण जगभी जलपूर्ण है, सो तुम इस क्रोधाग्निको जलमें छोड़ दो, तुम्हारा क्रोधाग्नि महासमुद्रमें रहकर जलको जलाने लगेगा। हे विप्र! जब सम्पूर्ण लोक जलपूर्ण हैं, तब तुमने जैसा संकल्प किया है, वह पूरा नहीं होगा। हे अनघ! ऐसा होनेसे तुम्हारो प्रतिज्ञा भो सच्ची ठहरेगी और देव तथा मानवोंको परास्त भी नहीं होना पड़ेगा। वसिष्ठ बोले, कि अनन्तर और्व्वने अपने क्रोधसे उपजे हुए अग्निको समुद्रमें छोड़ दिया। वह अग्नि समुद्रमें रहकर जल पीया करता है। वेदके जानकार ब्राह्मण लोग जिस महत् बड़वा मुखसे ज्ञात हैं, वह अग्नि वह बड़वा-मुख बनकर उस मुखसे लोकोंमें प्रसिद्ध बाड़-वाग्नि वमन करता हुआ जल पीने लगा। हे ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ पराशर! तुम भो सब परलोकोंसे ज्ञात हो, तुम्हारा मङ्गल होवे, सर्व्व लोकोंका विनाश करना तुमको नहीं सोहता है!

चैत्ररथपर्व्वमें एकसौ एकासी अध्याय समाप्त।

गन्धर्व बोले, कि विप्रर्षि पराशरने महात्मा वसिष्ठकी यह सब बातें सुनकर अपना सर्व्व लोकोंको परास्त करनेका क्रोध त्याग दिया। पर वह सर्व्व वेदोंके जानकारोंमें श्रेष्ठ बड़े तेजस्वी शक्तिपुत्र महर्षि पराशर राक्षस-यज्ञ करनेको प्रवृत्त हुए। अनन्तर उस महा-यज्ञके फैल पड़ने पर वह शक्तिका नष्ट होना स्मरण कर उस यज्ञमें बालकसे लेकर बूढ़े तक सम्पूर्ण राक्षसोंको जलाने लगे। वसिष्ठने यह समझ कर कि उनकी दूसरी प्रतिज्ञा भङ्ग करना उचित नहीं है, उनको राक्षस वध करनेसे नहीं रोका। महामुनि पराशर राक्षस-यज्ञमें प्रदीप्त तीनों पावकोंके सामने मानो चौथे पावकके समान सोहने लगे। शक्ति नन्दनने हवनयुक्त शुभ यज्ञसे इस प्रकार आकाश-मण्डलको प्रदीप्त किया, कि जिस प्रकार दिवाकर बादल दूर होनेसे आकाश मण्डलको प्रकाशयुक्त करते हैं। तब वसिष्ठ आदि सम्पूर्ण महर्षिलोग अपने तेजसे जलते हुए परस्परको दूसरे प्रभाकर समझने लगे। अनन्तर उदार बुद्धियुक्त अत्रि औरोंके करनेके अयोग्य उस यज्ञको पूरा करनेकी इच्छासे उनके निकट आये। हे शत्रुनाश! इसके पश्चात् पुलस्त्य, पुलह और महाक्रतु यह सब राक्षसोंके प्राण बचानेके लिये वहां आये। हे भरतश्रेष्ठ! बहुत राक्षसोंके मारे जाने पर पुलस्त्य शत्रुमथन पराशरसे बोले, कि हे बेटा! तुम्हारे अग्निहोत्र कार्य्यमें विघ्न तो नहीं है? हे पुत्र! क्या तुम उन निर्दोष राक्षसोंको जो तुम्हारे पिताके वधके विषयमें कुछ नहीं जानते, मारकर आनन्द प्राप्त कर

रहे हो? ऐ बेटा! मेरी प्रजाओंको इस प्रकार उखाड़ना तुमको नहीं चाहिये! तपस्वी ब्राह्मणोंका धर्म ऐसा नहीं है। हे पराशर! शान्तिही उनका परम धर्म है, तुम वह धर्म करो। तुमने निष्पाप होकरके अधर्म युक्त कर्ममें हाथ डाला है! यह कर्म करके अपने पिता शक्तिको लङ्घन करना तुमको नहीं सोहता। हे वासिष्ठ! बिना कारण मेरी प्रजाओंको सम्पूर्ण उखाड़ना तुमको नहीं चाहिये; क्योंकि उस कालमें तुम्हारे पिताकाजो अनिष्ट हुआ था, वह केवल उनके अपनेही शापसे हुआ था, वह अपनेहो दोषसे इसलोकसे स्वर्गको सिधारे हैं। हे मुने! तुम्हारे पिताको खालेना किसी राक्षसको सामर्थमें नहीं थी, पर उन्होंने आपही अपनी मृत्यु रची थी, विश्वामित्र इस विषयमें केवल निमित्तही बने थे। हे पराशर! अब शक्ति और राजा कल्माषपाद स्वर्गको सिधार कर सुख लूट रहे हैं और महामुनि वसिष्ठकी शक्तिसे छोटे जो सब पुत्र थे, वे भी देवोंके साथ परम आनन्द भोग रहे हैं; हे महामुने! वसिष्ठ सब जानते हैं। हे वासिष्ठ-नन्दन! इस यज्ञमें निर्दोष राक्षसोंका जो नाश होरहा है, तुम केवल उसके निमित्तही बन रहे हो; अतएव तुम यह यज्ञ त्याग दो, तुम्हारा मङ्गल होवे; अब यह यज्ञ पूरा करो। गन्धर्व्व बोले, कि बुद्धिमान पुलस्त्य और वसिष्ठके महामुनि शक्तिनन्दनको ऐसा कहनेपर उन्होंने तब उस यज्ञको पूरा किया और सम्पूर्ण राक्षसोंने युद्धके लिये जो अग्नि प्रज्वलित हुआ था उसको हिमाचलके उत्तर ओर बड़े वनमें छोड़ दिया। वहां अभीतक यह दीख पड़ता है, कि वह अग्नि हर त्योहारमें राक्षस, वृक्ष और पत्थरोंको खालेता है!

चैत्ररथ पर्व्वमें एकसौ बयासी अध्याय समाप्त।

अर्ज्जुन बोले, कि हे मित्र! राजा कल्माषपादने क्यों वेदज्ञश्रेष्ठ गुरु वसिष्ठके प्रति स्त्रीको नियोग किया था? महात्मा महर्षि वसिष्ठभी क्यों धर्म्मके जानकार होकर मिलनेके अयोग्य स्त्रीसे जा मिले? क्या वह अधर्म्मयुक्त प्रवृत्त हुए थे? इस विषयमें मुझे शङ्का हो रही है, तुम उसे दूर करो। गन्धर्व्व बोले, कि हे दुर्द्धर्ष धनञ्जय! तुमने उस प्रजापालक राजा और वसिष्ठके विषयमें जो कुछ पूछा, वह कहता हूं सुनो। हे भारतश्रेष्ठ! वसिष्ठपुत्र महात्मा शक्तिने जिसप्रकार शाप दिया था, वह मैंने सब सुनाया है। वह शत्रुमथन भूपाल शापग्रस्त होकर क्रोधयुक्तनेत्रसे स्त्रीके साथ नगरसे निकले; आगे निर्ज्जन वनमें जाकर स्त्रीके साथ घूमने लगे शापग्रस्त भूपाल अनेक प्रकारके मृगोंसे भरे भांति भांतिके वनके जीवोंसे पूरे नाना वृक्ष और गुल्म लताओंसे ढंपे और घोर शब्दसे गूजंते हुए उस बड़े वनमें घूमते हुए बहुत क्षुधित हुए; वह भोजनकी सामग्री ढूढ़ते हुए थक गये थे, कि ऐसे समयमें देखा, कि उस वनके एक निराले स्थानमें एक ब्राह्मण और ब्राह्मणी मैथुनकर्म्ममें प्रवृत्त हैं। वे राजाको देखकरके ही काम पूरा न होने परभी अति भयभीत चित्तसे वहांसे उठ भागे। राजाने उनके पीछे दौड़ कर उस दम्पतिमेंसे ब्राह्मणको पकड़ा। अनन्तर ब्राह्मणी पतिको पकड़े जाते देखकर बोली, कि हे सुव्रत महाराज! मैं जो कहती हूं सुनो। यह सर्व्वलोकमें प्रसिद्ध है, कि तुमने सूर्य्यवंशमें जन्म लिया है और प्रमत्त न होकर गुरुको सेवा भी किया करते हो। हे दुर्द्धर्ष! अब तुम शापग्रस्त हुए हो, इसीसे तुमको ऐसा पाप करना नहीं चाहिये; इस समय मेरा ऋतुकाल आजाने पर मैं पतिसे मिल रही थी, पर मेरा मनोरथ सफल नहीं हुआ है; अतएव हे भूपश्रेष्ठ! प्रसन्न होओ, मेरे पतिको छोड़

दी। ब्राह्मणी यह सब कहती हुई रोने लगी, पर राजाने निर्दयी-पनसे उसके पतिको इस प्रकार खा लिया, कि जैसे व्याघ्र मृगको खाता है। तब ब्राह्मणीने क्रोधके मारे भूमि पर जो आंसू गिराये उनसे जलती हुई आग बनकर उस स्थानमें उजाला होगया; आगे पतिके विछोहसे कातर, शोकसे विकल उस ब्राह्मणीने क्रोधके मारे राजर्षि कल्माषपादको यह कह शाप दिया कि, रे नीच! मिलनके सुखसे मेरा मनोरथ सफल होते न होतेही तुमने कुबुद्धिसे निष्ठुरके समान मेरे सामने हो मेरे प्यारे अति यशोवन्त पतिको मार डाला, सो मेरे शापसे तुम घायल होकर ऋतुकालमें स्त्रीसे मिल करकेहो उसीक्षण प्राण छोड़ोगे। तुमने जिन महर्षिके पुत्रोंको नष्ट किया है, तुम्हारी स्त्री उन्हीसे मिल कर पुत्र प्रसव करेगी। रे नृपाधम! उसी पुत्रसे तेरे वंशकी रक्षा होगी। आङ्गिरा कुलसे उत्पन्न शुभ लक्षणयुक्त वह ब्राह्मणी राजाको यह शाप देकर उनके सामनेही जली हुई आगमें जा घुसी। हे शत्रुमथन! महाभाग वसिष्ठ तपोबलके कारण ज्ञानचक्षुसे वह सब जान गये।

अनन्तर बहुत दिन पीछे राजर्षि शापसे मुक्त हुए। आगे एक समय मदयन्ती नाम्नी उनकी राणीका ऋतुकाल आन पहुंचा। राजाके उनको ऋतु रक्षाके लिये उद्यत होने पर मदयन्तीने उनको रोका। राजा कामसे मोहित होने परभी शापको बातको सुनकर बहुत घबराये; और उस शापको स्मरण करतेही बहुत दुःखी हुए! हे नरवर! शापग्रस्त राजाने इसी हेतु अपनी राणीको ऋतुरक्षाके लिये वसिष्ठको नियुक्त किया था।

चवरथपर्व्वमें एकसो तिरासी
अध्याय समाप्त।

अर्ज्जुन बोले, कि हे गन्धर्व्व! तुम सब जानते हो, सो कहो, कि वेद जाननेवाले कौन ब्राह्मण हमारे पुरोहित होनेके योग्य हैं। गन्धर्व्व बोले, कि वनके भीतर उत्कोचक नाम तीर्थमें देवलके छोटे भाई धौम्य नामक ऋषि तप कर रहे हैं, तुम चाहो तो उनको पुरोहित बनाओ। वैशम्पायन बोले, कि अनन्तर अर्ज्जुन प्रसन्न होकर उन गन्धर्व्वको विधिपूर्व्वक अग्न्यास्त्र देकर बोले, कि तुम्हारा मङ्गल होवे, तुम्हारे दिये हुए घोड़े अभी तुम्हारेही पास रहें, जब काम पड़ेगा, तब लूंगा। अनन्तर पाण्डवगण और गन्धर्व्व एक दूसरेकी अभ्यर्थना करके रमणीय भागीरथी तटसे अपने अपने मनमाने स्थानोंको पधारे।

हे भारत! अनन्तर पाण्डवोंने उत्कोचक तीर्थमें धौम्यके आश्रममें जाकर उनको पुरोहित बनाया। वेदज्ञोंमें श्रेष्ठ धौम्यने वनके फलमूलोंसे उनको पूजित कर पुरोहित होना स्वीकार किया। माताके साथ पाण्डवोंने उन ब्राह्मणको गुरुकी भांति पुरस्कृत कर ऐसा समझ लिया, कि राजलक्ष्मी और स्वयम्बर स्थानमें पाञ्चाली मिल गयी। वे उन गुरु रूपी पुरोहितसे मिल कर अपनेको नाथयुक्त समझने लगे; क्योंकि वेदार्थतत्त्व जाननेवाले उदार बुद्धियुक्त वह ऋषि उनके गुरु हुए। धर्म्म जाननेवाले, सर्व्व विषयोंके जानकार उन द्विजने भी उनके गुरु स्वरूप नियुक्त होकर उनको यजमान बनाया। उन्होंने बुद्धि, वीर्य्य, बल और उत्साहयुक्त देवोंके सदृश उन वीरोंको अपने धर्म्मके अनुसार राज्य पाये हुए समझा। उन ब्राह्मणके स्वस्त्ययन करने पर मानव श्रेष्ठ पाण्डवोंने एकत्र पाञ्चाल देशको स्वयम्बर स्थानमें जाना निश्चय किया।

एकसो चौरासी अध्यायमें चैत्ररथ
पर्व्व समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर पुरुष-श्रेष्ठ पांचों पाण्डव महोत्सव युक्त पाञ्चाल देश और पाञ्चालीको देखनेको चले। शत्रुमथन, नरव्याघ्र भाइयोंने माताके साथ जाते समय प्रथमें एक साथ मिलकर अनेक ब्राह्मणोंको चलते देखा! हे राजन्! उन ब्रह्मचारी ब्राह्मणोंने पाण्डवोंसे कहा, कि आप कहां जायेंगे? कहांसे आते हैं? युधिष्ठिरने उत्तर दिया हम पांचों भाई माताके साथ मिलकर घूमा करते हैं; अब एकचक्रा नगरीसे आरहे हैं। ब्राह्मणोंने कहा, कि आपलोग आजही पाञ्चाल नगरमें राजा द्रुपदके घरको जायं; वहां बहुत धन खर्च कर भारी भीड़ भड़ाकेसे स्वयम्बर होगा। हमभी वहां जा रहे हैं, चलें एकही साथ जायं, वहां आश्चर्य महोत्सव होगा, पाञ्चालनाथ महात्मा यज्ञसेन राजा द्रुपदकी सुकुमारी मनस्विनी देखनेके योग्य उस पुत्रीने जिस वेदीमेंसे जन्म लिया है, जिसकी आंखें पद्मकी भांति हैं, जिसका कोई अङ्ग निन्दनीय नहीं है और जिसके नील पद्मकी गन्ध कोस भरकी दूरीसे भी अनुभव होती है, स्वयम्बरा होना निश्चय किया है। वह सुन्दरी अनिन्दि-ताङ्गी उस महाभुज अग्नि समान प्रतापी धृष्ट-द्युम्नकी बहिन है जिसने द्रोणको मारनेके लिये जलती हुई आगसे खड्ग, कवच, शर, शरासन आदिके साथ जन्म लिया है। हम उस द्रौपदी और महोत्सवको देखनेको जाते हैं। उस महोत्सवमें बहुत दक्षिणा देनेवाले, यज्ञ-शील, स्वाध्यायमें नियुक्त, पवित्र, स्वधर्म्मानिष्ठ, महात्मा तरुण अवस्थायुक्त सुन्दर अस्त्र विद्यामें पण्डित महारथी भूमिपालक राजालोग और राजकुमारगण अनेक देशोंसे आवेंगे। वे उस स्वयम्बरके स्थान पर विजयकी आशासे गौ, धन, भक्ष्य, भोज्य आदि दान करने योग्य अनेक सामग्री सर्व्वप्रकारसे दान देंगे! हम वह सब लेकर और स्वयम्बर तथा महोत्सव देखनेके पीछे अपनी इच्छासे घरको लौटेंगे। स्वयम्बर स्थलमें नाना देशोंसे नट—भांति भांतिके वेश धरनेवाले, वैतालिक—मङ्गल गानेवाले, सूत—राजाओंको कथा कहनेवाले, मागध—वंशकी सूचना देनेवाले, महाबली पहलवान और नाचनेवाले आवेंगे। हे महात्माओ! आपभी दान लेकर, उस आनन्दको भोगकर फिर हमलोगोंके संग लौटना। आप सबोंकी देवोंकी भांति सुन्दर देखते हैं; स्वयम्बर स्थानमें आपके रहनेसे द्रौपदी आपको देख करके दैववश आपलोगोंमेंसे श्रेष्ठ किसीको वरणभी कर सकती है। आपके इस भाईको महाभुज श्रीमान और दर्शनयोग्य कार्य्य कुशल देखते हैं। इनके वर किये जानेसे दैववश बहुत धनभी पासकते हैं; युधिष्ठिर बोले, कि हम सब आप लोगोंके साथ द्रौपदीके उस परम महोत्सव युक्त स्वयम्बरको देखने जायेंगे।

स्वयम्बर पर्व्वमें एकसौ पचासी अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे जनमेजय! पाण्डव लोग ब्राह्मणोंसे वह सब बातें सुनकर द्रुपदसे शासन किये जाते हुए दाक्षिणीय पाञ्चालमें जाने लगे। पथमें पापके स्पर्शसे खाली विशुद्ध स्वभावी महात्मा मुनि द्वैपायनको देखकर विधिपूर्व्वक उनकी पूजा की और वे भी उनसे सत्कार किये जाकर नाना वार्त्ता-लापके पीछे उनकी आज्ञासे द्रुपदके भवनकी ओर चले। स्वाध्यायमें नियुक्त, अच्छे, पवित्र, सुन्दर-दर्शन, मीठी वाणी बोलनेवाले, महा-रथी पाण्डवगण पथमें सुन्दर सुन्दर वन और ताल देखकर उन स्थानोंमें ठहर ठहर कर धीरे धीरे चलते पाञ्चाल देशमें पहुंच गये। वे पाञ्चाल नगर और वहांके सेनालयको देखकर एक कुम्भार के घरमें टिके रहे। वहां ब्राह्मणकी चाल लेकर भीख मांग मांग

पेट पालते हुए बसे रहे ; तिससे यज्ञमें आये हुए उन वीरोंको किसीने नहीं जाना।

राजा यज्ञसेनकी सदा यह कामना थी, कि पाण्डुपुत्र किरीटी अर्जुनकोही कन्या दान करें ; पर उन्होंने यह बात किसीसे प्रगट नहीं की। हे जनमेजय! उन्होंने कुन्ती-पुत्र अर्जुनको स्मरण कर ऐसा एक दृढ़ चाप बनवाया, कि जिसे अर्जुनके विना, कोई दूसरा नवा न सके, और आकाशमें स्थित एक कृत्रिम यन्त्र बनाकर उस यन्त्रमें एक लक्ष्य जोड़वाया। आगे बोले, कि जो राजा इस शरासनमें गुण चढ़ाकर उस सजे हुए सायकसे उस यन्त्रको पार कर लक्ष्यको विद्ध कर सकेंगे, वही मेरी कन्याको लाभ करेंगे।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भारत! राजा द्रुपदकी ऐसे स्वयम्बर की सूचना देने पर राजालोग उसे सुनकर वहां आने लगे, और नाना देशोंसे महात्मा महर्षिलोग, महाभाग ब्राह्मणगण और कर्ण तथा दुर्य्योधनादि कौरव स्वयम्बरको देखनेके लिये आ पहुंचे। महात्मा राजा द्रुपदने उन सब भूपालोंका सत्कार किया। अनन्तर पुरवासीलोग महासमुद्रसे उठती हुई लहरकी भांति बड़ा कोलाहल मचाते हुए द्रौपदीके स्वयम्वरको देखनेकी इच्छासे निकटकी एक एक वेदी पर बैठने लगे। राजालोग शिशुमारशिरः नामके स्थानसे होकर स्वयम्बर सभामें प्रविष्ट होने लगे। नगरके ईशान कोनमें अच्छी समभूमि पर चारों ओर की बेड़ेसे घिरी हुई स्वयम्बरकी सभा शोभा पारही थी। वह सभा खन्दक और प्राचीरोंसे घेरी, द्वारतोरणसे जड़ी, सर्व्वत्र चंदवेसे सजी, सैकड़ों तूर्य्योंसे बजती, अच्छे अगुरुकी गन्धसे सुगन्धित, चन्दनके जलसे अभिषिक्त और फूलके हारोंसे भले प्रकार सुशोभित थी। उसके चारों ओर सोनेके जालसे सजेधजे, मणिमय कुट्टिमोंसे सुहावने, अच्छे अच्छे आसन और सानोंसे बनेठने चढ़नेमें सुखदायी सीढ़ी युक्त, कैलासकी चोटीकी नाईं आकाशको चूमनेवाले ऊंचे बड़े बड़े शुभ्र भवन शोभा पा रहे थे! हंसकी गर्द्दनके रंगकी भांति धौले, गायोंमें न रहने-वाले जनोंसे भरे, शय्या और आसनोंसे सुशोभित हिमाचलकी चोटीकी नाईं धातुओंसे रंगे और अच्छे अगुरुकी गन्धसे सुगन्धित उन सब भवनोंकी सुगन्ध योजन भरकी दूरीसे भी अनुभव होती रही ; उन सब भवनोंके सैकड़ों द्वार इतने लम्बे चौड़े थे, कि एक बारही बहुत लोगोंके जानेसेभी एक दूस-रेकी बाधा नहीं होती थी। सब भूप अच्छे प्रकार अलंकृत और एक दूसरे पर अहङ्कार-युक्त होकर उन सब भांति भांतिके सातत्ले भवनोंमें जा बैठे। महासत्त्ववान अति परा-क्रमी, महाभाग, महाप्रसाद तथा गुणयुक्त, निज राज्योंके पालन करनेवाले, शुभकर्म्मोंसे सब लोगोंके प्यारे और कृष्णागुरुसे सजे उन सब राजसिंहोंके उन स्थानोंमें बैठ जाने पर, द्रौपदीके देखनेके अभिप्रायसे चारोंओर अच्छो वेदियों पर बैठे हुए नगर और जनपदवासी उन लोगोंको देखने लगे। पाण्डवलोग ब्राह्मणसमाजके साथ एकत्र बैठकर राजा पाञ्चालका महत् ऐश्वर्य्य देखने लगे। नट और नाचनेवालोंके नाच आदि और दाता-ओंके अनेक धन रत्नोंके दानसे सुशोभित वह सभा बहुत दिनों तक इस प्रकारसे बढ़ने लगी। हे भरतश्रेष्ठ! सोलहें दिन द्रौपदी नहा धोकर और सर्व्व आभूषणोंसे बन ठनके विचित्र वस्त्र पहिने दधि, अक्षत और अबसे भरा हुआ सुशोभित सुवर्ण पात्र लेकर उस सुन्दर समाज की रङ्गभूमि पर जा पहुंची! सोमवंशके पुरोहित मन्त्रज्ञ ब्राह्मणने शुचि होकर फूल फैलाकर यथाविधि अग्निको आहुति दे दे करके हविसे हविभक्षोको प्रसन्न

कर और ब्राह्मणोंसे स्वस्ति कहलवाकर चारों ओरके बाजोंकी ध्वनिको रोका। हे पृथ्वीनाथ! अनन्तर सभाके चुप होने पर बादल और नगाड़ेकी भांति स्वरयुक्त धृष्टद्युम्नने यथाविधि द्रौपदीको लेकर रंगमें खड़े होकरके मेघके समान गम्भीर बड़े शब्दसे यह अर्थयुक्त मनोहर अच्छी बात कही, कि हे उपस्थित भूपालो! सुनो, यह शरासन, यह तेज पांच बाण और आकाशमें स्थित लक्ष्य दीख पड़ता है, इन पांच बाणोंसे उस यन्त्रके छिद्रको विद्व करना होगा; मैं सत्य करके कहता हूं, कि रूपवान बली, कुलीन जो राजा इस महत कार्यको पूरा कर सकेंगे, मेरी बहिन यह कृष्णा आज उनकी भार्य्या होगी। द्रुपदकुमार आये हुए भूपालोंसे यह कहकर आगे उनके नाम, गोत्र, और कर्म्मको बात सुना कर बहिनसे कहने लगे।

स्वयम्बरपर्व्वमें एकसौ छियासी
अध्याय समाप्त।

धृष्टद्युम्न बोले, कि दुर्य्योधन, दुर्व्विसह, दुर्म्मुख, दुष्प्रधर्षण विविंशति, विकर्ण, सह, दुःशासन, युयुत्सु, वायुवेग, भीमवेगरव, उग्रायुध, बलाकी कनकायु, विरोचन, सुकुण्डल, चित्रसेन, सुवर्च्चा, कनकध्वज, नन्दक, बाहुशाली, तुहुण्ड, विकट, और यह सब और दूसरे महाबली धृतराष्ट्रकुमार बहुतेरे कर्णके साथ तुम्हारे लिये आये हैं और अगणित क्षत्रियश्रेष्ठ महात्मा राजालोग उपस्थित हुए हैं। शकुनि, सौवल, वृषक, वृहद्वल, यह सब गान्धार राजकुमार आये हैं। सर्व्वास्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महात्मा अश्वत्थामा और भोज अलंकृत होकर तुम्हारे लिये आये हैं। वृहन्त, मणिमान, दण्डधर, सहदेव, जयत्सेन, मगधराज मेघसन्धि, शंख और उत्तर नामक दो पुत्रोंके साथ विराट, वार्द्धक्षेमि, सुशर्म्मा, सेनाविन्दु, सुवर्च्चः, और सुनामा नामक दो पुत्रोंके साथ सुकेतु, सुचित्र, सुकुमार, वृक, सत्यधृति, सूर्य्यध्वज, रोचमान, नील, चित्रायुध, अंशुमान, चेकितान, महाबली श्रेणीमान्, समुद्रसेनके पुत्र प्रतापी चन्द्रसेन, जलसन्ध, विदण्ड और दण्ड यह दो पिता पुत्र, पौण्ड्रक वासुदेव, वीर्य्यवान भगदत्त, कलिङ्ग, ताम्रलिप्त, पत्तनाधिपति, पुत्रके साथ महारथी मद्रराज शल्य, और रुक्माङ्गद, रुक्मरथ, कौरव्य सोमदत्त, सोमदत्तके पुत्र महारथी भूरि, भूरिश्रवा, और शल एकत्र यह तीन वीर; सुदक्षिण, काम्बोज, पौरव दृढ़धन्वा, वृहद्वल, सुषेण, औशीनर शिवि, पटच्चर निहन्ता, कारुषाधिप, बलदेव, कृष्ण, वीर्य्यवन्त रौक्मिणेय, शाम्ब, चारुदेष्ण, प्राद्युम्नि, गद, अक्रूर, सात्यकि, महामति उद्धव, हार्द्दिक्य, कृतवर्म्मा, पृथु, विपृथु, विदूरथ, कङ्क, शङ्कु, गवेषण, आशावह, अनिरुद्ध, समीक, सारिमेजय, वीर वातपति झिल्लि, पिण्डारक, विक्रमी उशीनर, यह सब वृष्णिगण; भगीरथ, वृहत्क्षत्र, सैन्धव, जयद्रथ, वृहद्रथ वाह्लीक, महारथी श्रुतायुः, उलूक, कैतव, चित्राङ्गद, शुभाङ्गद, मतिमान वत्सराज, कोशलाधिप, शिशुपाल और विक्रमी जरासन्ध। हे भद्रे! भूमण्डलमें प्रसिद्ध विक्रमी यह सब राजा और क्षत्रियवंशी नाना जनपदनाथ तुम्हारे लिये इस अच्छे लक्ष्यको भेद करनेकी इच्छासे आये हैं; हे शुभे! जो इस लक्ष्यका विद्ध करेंगे, उनको तुम वरण करना।

स्वयम्बर पर्व्वमें एकसौ सतासी
अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर कुण्डलादि अलङ्कारोंसे सजे हुए युवा नरेन्द्रगण सबी कोई अपनेको अस्त्रविद्यामें पण्डित और बली समझकर एक दूसरे पर अहङ्कारयुक्त होकरके अस्त्र लेकर उठके खड़े हुए। वे धन, यौवन, कुल, शील, रूप, और वीर्य्यमें

हिमाचलमें जन्मे मदमत्त हस्तीकी भांति अति दर्पयुक्त होकर एक दूसरेको निहारने लगे और कामके वशमें होकर यह कहते हुए; कि "द्रौपदी मेरीही होगी" एकायक राजासनसे उतरे। रङ्गभूमिमें उतरे हुए क्षत्रिय लोगोंने द्रुपदकन्याकी जय करनेकी इच्छासे उसके चारों ओर खड़े होकर ऐसी अपूर्व्व शोभा धारण की, कि जैसी देवोंने गिरिराज पुत्री उमाको घेरकर धरी थी। वे कामदेवके वाणोंसे जल कर द्रौपदीलाभकी आशासे हृदयमें उसीका भरकर प्यारे मित्रोंकाभी द्वेष करने लगे। अनन्तर रुद्रगण, आदित्यगण, दोनो अश्विनीकुमार, साध्यगण, मरुद्गण, यमराज, कुबेर और सम्पूर्ण देवगण, रथों पर चढ़के वहां आगये। दैत्यगण, सुपर्णगण, देवर्षिगण, गुह्यकगण, चारणगण, विश्वावसु, नारद, ऋषि पर्व्वत और अप्सराओंके साथ प्रधान प्रधान गन्धर्व्व वहां आ पहुंचे। हलायुध, कृष्ण और कृष्णके मतको माननेवाले प्रधान प्रधान वृष्णिगण, अन्धकगण और यादवगण, इधर उधर देखने लगे। यदुवीरोंमें प्रधान कृष्ण पद्मकी ओर दौड़ते हुए गजराजकी भांति द्रौपदीकी ओर सुख किये और भस्मसे ढंपे हुए अग्निसदृश उन उन्मत्त हस्तीके समान पांच पाण्डवोंको देख कर सोचने लगे और बलदेवजीसे बोले, कि मुझको जान पड़ता है, कि यह युधिष्ठिर, यह भीम, यह अर्ज्जुन, यह नकुल और यह सहदेव हैं। बलदेव जीनेभी धीरे धीरे उनको निहार कर प्रसन्न हृदयसे जनार्द्दनकी ओर देखा। दूसरे वीर राजपौत्र और राजपुत्र लोग नेत्रोंको लाल कर होठोंको काटते हुए द्रौपदीकी ओर स्वभाव मन और नेत्र अर्पण कर द्रौपदीकोही देखने लगे; पाण्डवोंकी ओर उनकी दृष्टि भी नहीं पड़ी। पृथुवाहु-पृथापुत्र युधिष्ठिर भीम और अर्ज्जुन तथा महानुभव वीर नकुल और सहदेव यह सब भी उस समय द्रौपदीको देखकर मदनबाणसे घायल हुए थे। तब दिव्य गन्धको उमङ्गसे भरे दिव्य फूलोंसे पूरे वेणु वीणा पणव आदिकी ध्वनिसंयुक्त और बड़े बड़े नगाड़ोंके शब्दसे गूंजते हुए उस स्थानका आकाश सर्व्वत्र देव, ऋषि, गन्धर्व्व, सुपर्ण, नाग, असुर और सिद्धोंसे भर जानेके कारण रथोंमें आपसकी रुकावट होने लगी। कर्ण, दुर्योधन, शाल्व, शल्य, द्रौणायनि, क्राथ, सुनीथ, वक्र, कलिङ्गाधिप, वङ्गाधिप, पाण्ड्य, पौण्ड्र, राजा विदेह, यवनराज, यह सब राजा और दूसरे राजाधिप पद्मपलाशनेत्र राजपुत्र तथा राजपौत्र लोग द्रौपदीके लिये क्रमशः विक्रम प्रगट करने लगे। किरीट, हार, केयूर, चक्रबाल आदि नाना आभूषणोंसे सजे विक्रमी, सत्त्ववान् और बलवीर्य्यसे तरराते और गरजते हुए वे सब सुवाहु भूपाल बड़े भारी उस चापमें गुण चढ़ानेकी कल्पना मनमें भी नहीं ला सके। उन्होंने होठोंको फुला कर अपने बल, शिक्षा, गुण, और क्रमके अनुसार ज्यों धन्वा नवाने और उस पर गुण चढ़ानेको विक्रम प्रगट किया त्योंही उसी क्षण धन्वाकी कोटिसे भगाये और फेंके जाकर धरती पर लोट गये और चेष्टासे मनको हटाया; इससे उनके पहिने हुए किरीट आदि आभूषण अङ्गसे च्युत हो गये और वे बल खोकर वार वार हांफते हुए चुप हो बैठे। तब कठिन शरासनसे भयभीत और अलङ्कारोंसे च्युत वे भूपगण द्रौपदीकी आशा छोड़ कर हाय हाय करने लगे। इसके पीछे सम्मानित सज्जनोंसे उस समाजमें राजाओंके निन्दा योग्य होनेपर वीरोंमें प्रधान कुन्ती पुत्र जिष्णुने उस धन्वा पर गुण चढ़ाने और वाण लगानेकी इच्छा की।

स्वयम्बरपर्व्वमें एकसौ अठासी अध्याय समाप्त।

वैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर राजाओंके उस शरासन पर रोदा चढ़ानेसे मुख फेर लेने पर उदारचित्त जिष्णु ब्राह्मण-समाजसे उठ खड़े हुए। प्रधान प्रधान ब्राह्मण लोग बादल समान प्रकाशयुक्त अर्ज्जुनको जाते देखकर मृग-चर्म्म कंपाते हुए कोलाहल मचाने लगे, कोई कोई दुःखी और दूसरे हर्षयुक्त हुए। कोई कोई बुद्धिमान निपुणतायुक्त विप्र आपसमें इस प्रकार कहने लगे, कि हे द्विजगण! धनुर्व्वेदमें पण्डित, बली, कर्ण और शल्य आदि लोकोंमें प्रशंसित क्षत्रिय लोग जिस धन्वाको नवा नहीं सके अस्त्रविद्याके न जानकार शक्तिमें दुर्ब्बल एक बटु क्योंकर उस पर रोदा चढ़ा सकेगा? इस बटुने, चपलतासे जिस अनजाने काममें हाथ डाला है, वह पूरा न हो, तो हम सब राजाओंसे हंसे जायंगे। हे ब्राह्मणो! यह ब्राह्मण-कुमार अहंकार वा कौतूहल अथवा चपलतासे शरासन नवानेको जा रहा है, इसकोरोको, कि ऐसे काममें न जाय। किसी किसी ब्राह्मणने कहा, कि इससे हमारी लघुता नहीं होगी, हम राजाओंके द्वेषके पात्र वा हंसे जानेके योग्य नहीं होंगे। कोई कोई बोले, कि इस नये विप्रकी श्रीमान गजराजके सूंड़की भांति विशाल गर्द्दन, उरु और भुजधारी, हिमाचल सदृश धीरज युक्त, सिंहके खेलकी नाईं चालवाले और उन्मत्त गजसा विक्रमी देखता हूं; और इनका उत्साह जैसा है, तिससे जान पड़ता है, कि यह कार्य्य इन्हीसे पूरा हो सकता है; यह ब्राह्मण बड़े उत्साही और शक्तिवान हैं; इनको शक्ति न रहती, तो यह कभी नहीं जाते। फिरभी तीनो लोकोंमें ऐसा कोईभी कार्य्य तौन हीं है, कि जो इन मरनेवाले मनुष्योंमें ब्राह्मणका असाध्य हो। कठोर व्रतयुक्त द्विजातिगण फलाहार, वायुभक्षण अथवा निराहारके हेतु देखनेमें दुर्व्वल होवें भी, तो अपने तेजसे बली रहते हैं। ब्राह्मण सुकर्म्म किया करें वा बुरा कर्म्म कियाकरें तौभी सुख वा दुःखदायी और महत् वा क्षुद्र किसी उपस्थित कार्य्यमें उनका अनादर करना नहो चाहिये। देखो, जमदग्निपुत्र रामने क्षत्रियोंको युद्धमें परास्त किया था; ऋषि अगस्त्यने ब्रह्मतेजसे गहरे समुद्रको पी लिया था; अतएव तुम सब आज्ञादो कि यह महात्मा शीघ्र शरासन पर गुण चढ़ावें। आगे द्विजवरोंने "तथास्तु" कहा। ब्राह्मणलोग इस प्रकारकी नाना बातें कहने सुनने लगे; तब अर्ज्जुन शरासनके निकट जाकर पर्व्वतकी भांति खड़े हुए। आगे उसके चारों घूमकर वरदाता देव प्रभु ईशानको सिर नाय कर प्रणाम किया और मनही मनमें श्रीकृष्णकी चिन्ता कर शरासनको उठा लिया। रुक्म, सुनीथ, वक्र, राधापुत्र, दुर्य्योधन, शल्य और शाल्व, यह सब धनुर्व्वेदमें पण्डित नरसिंह भूपाल अति यत्नसेभी जिस धन्वापर रोदा नहीं चढ़ा सके थे, वीर्य्यवन्तोंमें दर्पयुक्त, इन्द्रानुज सदृश प्रभावी अर्ज्जुनने देखतेही देखते उस पर गुण चढ़ाया और पांच शर लेकर लक्ष्यको भेद दिया। लक्ष्य बहुत विद्ध होकर उसी क्षण यन्त्रकी छेदसे धरती पर गिर गया। तब आकाश मण्डल और समाजमें अति कोलाहलकी ध्वनि उड़ने लगी देवताओंने शत्रुकुलनाशी अर्ज्जुनके सिर पर दिव्य फूल वर्षाये। सहस्रों ब्राह्मण उनकी विजयध्वजाकी भांति अपने अपने दुपट्टोंके छोर उड़ाते हुए उठ खड़े हुए। जो जोग लक्ष्य नहीं भेद कर सके थे, वे लज्जित होकर चारों ओर हाय हाय करने लगे। समाजमें आकाश-मण्डलसे चारों ओर फूल वर्षने लगे। बाजे-वाले तूर्य्य-यन्त्रको सौओं अङ्ग मिलाकर बजाने लगे; और सूत मागध लोग मीठे स्वरसे स्तुति गाने लगे। शत्रुमथन राजा द्रुपद अर्ज्जुनको देखकर प्रसन्न हुए; और सेनाओंके साथ उनकी सहायता करनेकी इच्छा की। जब वह भारी कोलाहल आरम्भ होगया तब

धार्म्मिकवर युधिष्ठिर वेगसे पुरुष-श्रेष्ठ दोनों यमज भाइयोंको लेकर डेरे पर चले गये। द्रौपदी पार्थसे लक्ष्यका विद्ध होना देखकर और उनकी इन्द्र सदृश निहार कर प्रसन्न चित्तसे शुभ्र वस्त्र और माला लेकर उनके पास जा पहुंची। चिन्तातीत कर्म्म करनेवाले अर्जुन रंगभूमिमें द्रौपदिको जय कर द्विजातियोंसे सत्कृत होकर उस रंगभूमिसे निकले; द्रौपदी भी उनके पीछे पीछे जाने लगी।

स्वयम्बर पर्व्वमें एकसौ नवासी अध्याय समाप्त।

वैशम्पायन बोले, कि अनन्तर राजाके लक्ष्य भेद करनेवाले उस ब्राह्मणको कन्या दान करनेकी इच्छा प्रगट करने पर निकटस्थित भूपाललोग एक दूसरेको देखकर क्रोधित हो गये और कहने लगे, कि इस राजाने इन सब उपस्थित नरेशोंको तिनके के समान समझकर इनको लङ्घनकर ब्राह्मणको योषिद्वरा कन्या देनेकी इच्छा की है, यह दुरात्मा वृक्ष रोपण करके फलनेकी कालमें काट रहा है, हम लोगोंको अपमानित कर रहा है; इसको मार डालेंगे। यह दुराचारी वृद्ध क्रमके अनुसार गुणयुक्त और सम्मानके योग्य नहीं है, सो राजाओंके द्वेष करनेवाले इस दुरात्माको पुत्रके साथ मारनाही उचित है, यह दुरात्मा सम्पूर्ण भूपालोंको बुलवाकर सम्मानके साथ अपूर्व्व भोजन आदिसे पूजकर अब अपमान कर रहा है। इन महीपालोंका समागम वैसाही हुआ है; कि जैसा देवोंका समवाय होता है; क्या इनमेंसे एकभी इसको योग्य न समझ पड़ा? यह प्रसिद्ध कहावत है, कि स्वयम्बर क्षत्रियोंहीके लिये विधिवद्ध हुआ है, इसमें ब्राह्मणका अधिकार नहीं है, फिरभी यदि यह कन्या किसी राजाको पति न बनाया चाहे, तो इसको जलती हुई आगमें छोड़कर हम अपने अपने राज्योंमें चले जायेंगे। इस ब्राह्मणने यद्यपि चपलतासे राजाओंका अप्रिय कार्य्य किया है, तोभी इसको मार डालना किसी प्रकार उचित नहीं है, क्योंकि हमारा राज्य, अर्थ, जोवन, पुत्र, पौत्र और दूसरे जो कुछ धन हैं, वह सबही ब्राह्मणोंके लिये हैं। हम यहां शासन करेंगे, तो दूसरे स्वयम्बरके स्थानोंमें फिर कभी ऐसा नहीं होगा, सबलोग अपमानके भयसे अपने अपने धर्म्मको रक्षा करेंगे। परिघ समान भुजवाले, सब राजसिंह ऐसी बात कहकर प्रसन्न चित्तसे अस्त्र लेकरके राजा द्रुपदको मारनेके लिये दौड़े। द्रुपदने राजाओंको क्रोधित होकर शरासन लिये आते लेखकर इस भयसे कि ब्राह्मणोंके क्रोधसे कहीं क्षत्रियकुल नष्ट न होजाय ब्राह्मणोंकी शरण ली। बड़े चापधारी शत्रुदमन पाण्डुनन्दन भीम और अर्ज्जुन भूपालोंको मदोन्मत्त गजोंको भांति वेगसे दौड़ कर आते देखकर उनकी ओर चले। अंगलीरक्षक पहिने हुए वह सब राजा क्रोधके मारे अस्त्रशस्त्र उठाकर कुरुराजपुत्र अर्ज्जुन और भीमसेनको मारडालनेके लिये जा गिरे। अनन्तर वज्र समान कठोर, महाबली, आश्चर्य्य डरावने कार्य्य करने वाले, अद्वितीय वीर भीमसेनने उन्मत्त गजराजको भांति हाथोंसे एक वृक्ष उखाड़ कर पत्तोंसे खाली किया फिर शत्रुमंथन पृथुभुज पृथानन्दनने उसके पत्तोंसे खाली पेड़को लेकर पुरुषश्रेष्ठ अर्ज्जुनके सम्मुख इस प्रकार खड़े होगये, कि जैसे यमराज कठोर दण्ड लेकर खड़े होते हैं। चिन्तातीत कर्म्म करने वाले असामान्य बुद्धिमान महेन्द्र सदृश जिष्णु ने भाईका अलौकिक कार्य्य देखकर अचरज माना। अनन्तर निर्भय चित्तसे चाप लेकर खड़े हुए। चिन्तातीत कर्म्म करने वाले असाधारण बुद्धिशाली दामोदर भीमार्ज्जुनका

यह आश्चर्य्य कार्य्य देखकर महावीर्य्यवन्त बड़े भाई हलायुधसे बोले, कि हे सङ्कर्षण! सिंह-वरकी भांति डोलते हुए चलने वाले जो पुरुष पांच हाथसे कुछ कम मापके चापको खीच रहे हैं उनका अर्जुन होना इतना निश्चय है; कि जितना मेरा कृष्ण होना निश्चय है। जो वेगसे वृक्ष उखाड़ कर एकायक भूपालोंको अन्तकरनेको प्रवृत्त हुए हैं, वह वृकोदर होंगे। वृकोदरके विना इस भूमण्डल भरमें कोई मनुष्य आज ऐसा कार्य्य करनेको समर्थ नहीं होगा। हे अच्युत! मुझको जान पड़ता है, कि इसके पहिले पद्मकी भांति प्रशस्त नेत्रयुक्त भारी सिंह समान चलनेवाले नम्र, गोरे, दीर्घ और उज्ज्वल सुन्दर नाकवाले, चार हाथ इतने लम्बे और उसके योग्य स्थूलदेह युक्त, जो पुरुष पधारे हैं, वही धर्म्म-पुत्र हैं; उनके साथ कार्त्ति-केयके सदृश जो दो कुमार गये हैं, वे अश्विनी-कुमारोंके पुत्र होंगे। मैंने सुना है, कि पाण्डव लोग पृथाके साथ जतुगृहसे जलनेसे बचे थे। विना जलके बादलके रङ्गयुक्त हलायुध आन-न्दित होकर कनिष्ट कृष्णसे बोले, कि यह सुनकर कृतार्थ हुआ, कि बड़े भाग्यसे पुत्रोंके साथ फूफीजी बच गयी हैं।

स्वयम्वर पर्व्वमें एकसौ नब्बे अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर ब्राह्मण-लोग मृगचर्म्म और कमण्डलु कंपाते हुए बोले, कि मत डरो, हम शत्रुओंसे लड़ेंगे, अर्जुन ब्राह्मणोंकी यह बात सुन कर हंसके बोले, कि आप एक ओर दर्शक बन कर खड़े रहें। मैं सैकड़ों तेज वाणोंसे इन सब क्रोधित राजाओंको इधर उधर इस प्रकार तीन तेरह करके रोक दूंगा, कि जिस प्रकार मन्त्रके जानकार मन्त्रसे अति विषैले सर्पको तेजसे खाली कर देते हैं। महावली अर्जुन यह कहकर रणमें जीत लिये हुए धनुको ला करके भाई भीमसेनके साथ पर्व्वतकी भांति अचल बने रहे। आगे भीम और अर्जुन दोनोंने इस प्रकार, कि जैसे हस्ती विपक्षी हस्तीपर चढ़ जाता है, रणोन्मत्त कर्णादि राजाओंको देखकर बिना भय उनकी ओर दौड़े। लड़ाई चाहने वाले राजालोग अहङ्कारसे बोले, कि युद्धस्थलमें लड़ने वाले ब्राह्मणभी बध किये जा सकते हैं। भूपाललोग यह कहकर उसीक्षण ब्राह्मणों पर दौड़े। अन-न्तर बड़े तेजस्वी कर्ण लड़नेके लिये अर्जुनसे इस प्रकार जा भिड़े, कि जैसे हस्ती हथनीके लिये दूसरे हस्ती पर चढ़ जाता है। महा-बली मद्राधिप शल्य भीमसेनकी ओर दौड़े। दुर्य्योधन आदि सबोंने ब्राह्मणों पर चढ़ाई की। वे द्विजोंके साथ बिना यत्न धीमी लड़ाई लड़ने लगे। अनन्तर श्रीमान अर्जुन आदित्य पुत्र कर्णको विरुद्धमें आते देखकर बड़े भारी चापको खींचके तेज वाणोंको मारकर विद्ध करने लगे। राधाकुमारने अर्जुनके तेज वाणोंके वेगसे मुझाकर अति यत्नसे उन पर आक्रमण किया। जय करने वालोंमें श्रेष्ठ अर्जुन और कर्ण एक दूसरे पर क्रोधित होकर जयकी आशासे ऐसी फुर्त्तीसे लड़ने लगे, कि किसीने समझ न पाया, कि उनमें कौन कब आदान संधानादि करते थे। वे एक दूसरे पर शूरता प्रगट कर यह कहके वार्त्तालाप करने लगे, कि तुमने जो किया, देखो उसको रोक लेता हूं, मेरा भुजबल देख लो। अन-न्तर सूर्य्यकुमार कर्ण अर्जुनका ऐसा भुजवीर्य्य देखकर, कि जिसकी उपमा संसारभरमें नहीं मिलती एकचित्तसे लड़ने लगे। वह अर्जुनके चलाये हुए वाणोंको रोककर सिंहकी भांति गरजने लगे; सेना उनके उस कार्य्यकी प्रशंसा करने लगी। आगे कर्णने अर्जुनसे कहा, कि हे द्विजातिश्रेष्ठ! इस युद्ध स्थलमें तुम्हारा न चूकने वाला भुजवीर्य्य और विजयी

शस्त्र देखकर मैं प्रसन्न हुआ। हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! मुझको जान पड़ता है, कि तुम साक्षात धनुर्व्वेद वा राम अथवा देवराज इन्द्र वा अच्युत विष्णु होगे। तुम अपनेको गोपन रखनेके लिये ब्राह्मणका स्वरूप लेकर भुज-वीर्य्यका आश्रय करके लड़ रहे हो; मेरे रणभूमिमें क्रोधित होनेसे साक्षात इन्द्र अथवा पाण्डुनन्दन किरीटीके विना कोई भी मुझसे लड़ नहीं सकता है। अर्ज्जुन कर्णकी यह बातें सुन कर बोले, कि हे कर्ण! मैं धनुर्व्वेद वा राम नहीं हूं, मैं सर्व्व शस्त्रधारी और योधोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मण हूं। मैं गुरुकी कृपासे ब्राह्म और इन्द्र अस्त्रोंमें दक्ष भया हूं। हे विप्र! तुम रह जाओ, मैं आज लड़ाईमें तुम पर जय पानेके लिये ठहरा हूं।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि तब राधाकुमार महारथी कर्ण यह बात सुनकर ब्रह्म तेजको जीतनेके अयोग्य समझ कर युद्धसे निवृत्त हुए; दूसरी ओर विद्या और बलसे युद्धमें पण्डित उन्मत्त गजके समान बली वीर वृकोदर और राजा शल्य युद्ध करने लगे। वे दोनों एक दूसरे को पुकारके मुट्ठी और घुटनोंसे मारते हुए कभी दूर फेंकने, कभी आगे खींचने, कभी सामने ललकारने, कभी झपटके एक दूसरेको पकड़ने और कभी घूंसा मारने लगे। इसके पश्चात् उन दोनोंकी मारके चट चट शब्द कानोंमें घुसने लगे। वे एक दूसरे को पत्थर पर गिरानेकी भांति मार मारने लगे। परस्पर दोनों को पकड़ने लगे। क्षण भर पीछे कुरुवंश श्रेष्ठ भीमने शल्य का भुजोंसे ऊपर उठाकार रणभूमि पर पटक दिया। वह देखकर ब्राह्मणलोग सब हंस उठे, पर पुरुष श्रेष्ठ भीमसेनने बलशाली शल्यको ऐसे आश्चर्य्यरूपसे भूमि पर पटक दिया कि, शल्यके कुछ भी चोट नहीं लगी। अनन्तर राजा लोग शल्यको भीमसेनसे गिराये जाते हुए और कर्णको शंकायुक्त देखकर भयभीत चित्तसे शल्यको घेर कर खड़े होगये और सब इकट्ठे होकर साधु साधु कहके यह कहने लगे, कि यह दो ब्राह्मण सबोंसे श्रेष्ठ हैं। विशेषरूपसे जान लेना चाहिये, कि वह कहां रहते हैं, और उन्होंने कहां जन्म लिया है। इस धरती भरमें राम, द्रोण, पाण्डुनन्दन अर्ज्जुन, देवकी-जीके पुत्र कृष्ण अथवा शारद्वत् कृपके बिना कौन राधाकुमार कर्णसे लड़ सकता है? और कौन दुर्य्योधनसे युद्ध करनेको समर्थ होता है?

और बलदेवजी, पाण्डुपुत्र वृकोदर वा दुर्य्यो-धनके बिना कौन महाबली मद्रनाथ शल्यको रणभूमि पर गिरा सकता है? अब सब कोई ब्राह्मणसे यह लड़ाई बन्द कर दो, ब्राह्मण अपराध भी करें तो भी सदा उनकी रक्षा करनी चाहिये। पहिले इनका परिचय लेकर पीछे प्रसन्न चित्तसे हम इनके साथ लड़नेको प्रवृत्त होंगे।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि श्रीकृष्णने भीम-सेनका वह अलौकिक कार्य्य देख कर उन को कुन्ती पुत्र करके जाना। आगे सम्पूर्ण राजाओंको विनय कर यह कहके युद्धसे निवृत्त किया, कि इन ब्राह्मणने धर्म्मके अनुसारही द्रौपदी लाभ की है, सो इन पर द्वेष करना उचित नहीं है। अनन्तर वे सब युद्धमें पण्डित राजा लोग युद्ध बन्द कर आश्चर्य्य चित्तसे अपने अपने भवनोंको सिधारे। जो सब लोग दर्शनको लिये एकचित्त हुए थे, वे यह कहते हुए चले गये, कि आज रङ्गस्थलमें ब्राह्मण लोगही प्रधान बने, पाञ्चाली ब्राह्मणोंसे वृता हुई। अनन्तर भीम और अर्ज्जुन मृगचर्म्म पहिने ब्राह्मणोंसे घेरे जाकर अति क्लेशसे पथ पाकर चलने लगे। शत्रुओंसे कटे कूटे नरवीर भीम और अर्ज्जुन पीछे चलती हुई द्रौपदीके साथ जनोंकी भीड़से मुक्त होकर इस प्रकार सोहने

लगी, कि जैसे पूर्णिमातिथिमें उगे हुए चन्द्र सूर्य्य शोभा प्राप्त करते हैं। इधर उनकी माता कुन्ती उनके भिक्षाकर लौटनेके काल बीतने पर उनको न आते देखकर भांति भांति के अनिष्टकी आशंकासे यह चिन्ता करने लगी, कि कदाचित् धृतराष्ट्रके पुत्रोंने मेरे बच्चोंको पहिचान कर मार डाला है अथवा शत्रु मायाधारी अति भयानक राक्षसोंने नष्ट किया होगा! महात्मा व्यासजीकोभी कैसी उलटी बुद्धि हुई थी, उन्होंने क्यों हमको इस देशमें आनेको कहा?

कुन्ती पुत्रस्नेहसे इस प्रकार सोच रही, थी, कि ऐसे समयमें अर्ज्जुन ब्राह्मणोंसे घेरे जाकर लोगोंके प्रायः चुप होनेके कालमें बड़े अपराह्नमें बादलसे घिरे कुदिनके मेघसेढंपे सूर्य्यकी भांति उस कुम्भारके घरमें जाघुसे।

स्वयम्बर पर्व्वमें एकसौ एकानब्बे
अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि महानुभव नर-श्रेष्ठ भीम और अर्ज्जुन परम प्रसन्न चित्तसे याज्ञसेनीको साथ लेकर कुम्भारके घरमें जाकर कुन्तीसे बोले, कि मा! आज यह भिक्षा मिली है! कुन्ती तब कुटी के भीतर थी; कुछ न देख करके ही बोली, कि तुम सब मिलकर भोगो। पीछे कृष्णाको देखकर बोली, कि हाय! मैंने कैसी अनुचित बात कही है। अनन्तर वह अधर्म्मका भय खाकर सोचती हुई अनन्दिता उस याज्ञसेनीका हाथ पकड़ कर युधिष्ठिरके पास जाकर उनसे बोली, कि बेटा! तुम्हारे दो भाइयोंने जब राजा द्रुपदके इस पुत्रीको लाकर मेरे पास भिक्षा कहके दिया, तब मैंने असावधानतासे उस कालके योग्य यह बात कह डाली है, कि तुम सब मिल करके भोगो; हे कुरुवंशश्रेष्ठ! अब यह कहो, कि क्योंकर मेरी वह बात झूठी न ठहरे, क्योंकर अधर्म्म इस राजा पाञ्चालकी पुत्रीको छू न सके और क्योंकर यह अप्रसन्न न होवे।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि नरवीर मति-मान कुरुप्रवीर राजा युधिष्ठिर माताकी यह बात सुनकर क्षणभर सोचके उनको समझा कर धनञ्जयसे बोले, फाल्गुन! तुमने इस राजपुत्री याज्ञसेनीको जय कर लिया है, तुम्हीसे इसका विवाह हो, तो ठीक होवे; हे शत्रुविनाशनेवाले तुम आग बालकर विधिपूर्व्वक इससे व्याह कर लो। अर्ज्जुन बोले, कि हे नरेन्द्र! आप मुझको अधर्म्ममें न डालें, जैसी आज्ञा करते हैं वह धर्म्मयुक्त नहीं है, वह अनबूझा पथ है। पहिले आपका, आगे चिन्तातीत कर्म्म करनेवाले महाभुज भीमसेनका, उनके पीछे मेरा, तब मेरे पीछे जन्मे हुआ नकुलका और अन्तमें कनिष्ठ सहदेवका विवाह होनाही विधिपूर्व्वक है। भीमसेन, नकुल, सहदेव, यह कन्या और मैं आपकी आज्ञाके अनुसारी होते हैं, इससे जो कुछ धर्म्म और जिससे राजा पाञ्चालका मङ्गल होवे, उस पर ध्यान करके आज्ञा करें, हम लोगोंमेंसे कोईभी आपकी आज्ञा माननेसे मुंह नहीं मोड़ेगा; श्रीवैश-म्पायनजी बोले, कि अर्ज्जुनकी भक्तिपूर्ण स्नेह-रसभरी बातें सुनकर पाण्डवोंने राजा पाञ्चाल-की पुत्रीकी ओर देखा और पाञ्चाली भी उनकी ओर देखने लगी। पाण्डुपुत्र लोग उस यशस्विनी बालाको देख करके एक दूसरेके मुखकी ओर ताकके बैठ गये और सबोंका चित्त उसकी ओर झुका! विधाताने उस पाञ्चालीका सुन्दररूप दूसरी नारियोंसे श्रेष्ठ और प्राणियोंका ऐसा मनोहर बनाया, कि बड़े तेजस्वी पाण्डुपुत्रोंके देखतेही मदन उनके इन्द्रियोंको मथन करके प्रगट हुआ। मनुष्य-श्रेष्ठ कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर छोटे भाइयोंके आका-रोंको देख करके उनके हृदयके भावको समझ

गये और उस समय वेदव्यासजीकी सम्पूर्ण बातें उनके स्मरणपथमें आ पहुंची। वह भाइयोंमें आपसके बिगाड़का भय कर बोले, कि शुभ लक्षणोंसे भरी हुई यह द्रौपदी हम सबोंकी भार्य्या होगी।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि पाण्डु पुत्रगण बड़े भाईकी यह बात सुनकर बिना कष्ट मनही मनमें उस बातकी चर्चा करने लगे।

अनन्तर वृष्णिवंशके प्रधान वीर श्रीकृष्णजी उनको कुरुवीर समझ कर भार्गवकी जिस शालामें वे वीर मनुष्य लोग टिके थे वहां बलदेवजीके सङ्ग आपहुंचे। आगे रोहिणी-पुत्र और उन्होंने वहां बैठे हुए दीर्घ-भुज अजात-शत्रु युधिष्ठिरको और उनकी चारो ओर पासही बैठे अग्नि समान जलते हुए छोटे भाइयोंको देखा। इसके अनन्तर वासुदेव श्रीकृष्ण अजमीढ़वंशी धार्म्मिकवर कुन्तीकुमार युधिष्ठिरके सामने जाकर उनके पांव छू कर बोले मैं कृष्ण हूं, आगे बलदेवजीने भी वैसाही किया। पाण्डवगण राम और कृष्णको देख कर प्रसन्न चित्तसे आनन्द प्रकाश करने लगे। हे भारतश्रेष्ठ! अनन्तर यदुवीर राम और कृष्ण फूफी पृथाके पांव लगे। अजातशत्रु कुरु-वीर युधिष्ठिर कृष्णको देख करके कुशल क्षेम पूछ कर बोले, कि हे वासुदेव! तुमने क्यों कर यह जाना, कि हम छिप कर यहां बसे हैं? कृष्णने हंसकर कहा, कि हे महाराज! अग्नि छिप रहनेसे भी कभी अज्ञात नहीं रहता और इस भूमण्डलके मानवोंमें पाण्डवोंके बिना कौन ऐसा विक्रम दिखा सकता है? आप लोग बड़े भाग्यसे शत्रुका वेग सह कर कठोर जलनसे बचे हैं और भाग्यहीके कारण पापात्मा धृतराष्ट्रपुत्र और उसके मन्त्रियोंका मनोरथ सफल नहीं हुआ। अब आपका मङ्गल होवे; वह मङ्गल इन दिनों औरोंके बिन देखे स्थानमें छिपा हुआ है, आप बढ़ने वाले अग्निकी भांति बढ़ते रहें। अब आज्ञा करें, कि हम अपनी रनिवासमें चले जायं, कि जिससे कोई राजा आपको न जानने पावे, अक्षय श्रीयुक्त श्रीकृष्णजी यह कहकर युधिष्ठिरको आज्ञा लेके बलदेवजीके साथ शीघ्र वहांसे पधारे।

स्वयम्बर पर्व्वमें एकसौ बानवे
अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि कुरुनन्दन भीम और अर्जुन जब भार्गवके घरको जा रहे थे; उस समय पाञ्चालकुमार धृष्टद्युम्न उनके पीछे पीछे छिप कर गये थे। वह साथियोंको सावधान कर पाण्डवों और दूसरोंके न जानते उसके निकट किसी एक स्थानमें छिपे थे। सन्ध्याकालमें शत्रुमथनेहारे असामान्य सत्वयुक्त महाबली भीम, अर्जुन, नकूल और सहदेवने भिक्षासे लौट कर भिक्षाकी सामग्री युधिष्ठिरको देदी। तब दानशीला कुन्तीने कहा कि भद्रे! तुम इस भिक्षाकी सामग्रीसे अगला भाग लेकर देवोंको उपहार और ब्राह्मणोंको भिक्षा दे दो और जो सब लोग अतिथि बने हैं और जो भोजन करना चाहेंगे, उनको भी दो। आगे जो बची रहेगी, वह दो भागोंमें बांटकर एक भाग भीमको दो; क्योंकि यह पर्व्वतकी भांति बड़े भारी गोरे तरुण वीर वृकोदर नित्य बहुत भोजन करता है; दूसरे भागको छः भागोंमें बांटो, उनको युधिष्ठिर आदि चार भाई, तुम और हम खायंगे। राजपुत्री सती द्रौपदीने उनकी उस श्रेष्ठ बातका कोई विचार न करकेही आनन्दित चित्तसे उसको जो कहा गया था, वह पूरा किया। इसके पीछे सबोंने भोजन किया। अनन्तर तरस्वी माद्रीपुत्र सहदेवने भूमिपर कुश बिछाकर सेज बनायी। आगे उस पर सब यथोपयुक्त अपना अपना मृगचर्म्म बिछाकर सोगये।

कुरुश्रेष्ठोंने दक्षिण ओर सिर करके शयन किया था। उनके सिरकी ओर कुन्ती और पांवको ओर द्रौपदी सो रही। द्रौपदीने भूमि पर लेटके और सबके पांवके नीचे तकियेकी भांति बनने पर नतो मनमें दुःख माना और न उनकी ओर अनादर प्रगट किया। शूरतायुक्त पाण्डवगण लेट कर रथ, नाग, खड्ग, गदा, परश्वध, दिव्यास्त्र और सेना सम्बन्धी नाना विचित्र कथाओंको कहने लगे। पाञ्चालराजपुत्र धृष्टद्युम्न पाण्डवोंको उन सब कथाओंको सुनने लगे और वहांके लोगोंनेभी राजकन्या कृष्णाको उस दशामें देखा।

अनन्तर रात्रिको पाण्डवोंने जैसी कही थी, और वहां जो कुछ हुआ था सब राजा द्रुपदके पास आद्योपान्त कहनेके लिये राजकुमार धृष्टद्युम्न तुरन्त चले गये। महात्मा राजा पाञ्चाल पाण्डवोंको न प्राप्त करके दुःखी होकर पड़े थे। धृष्टद्युम्नके वहां जा पहुंचने पर उससे उन्होंने पूछा, कि बेटा! कृष्णाको कौन ले गया है? कृष्णा कहां गयी है? किसी नीच जाति वा शूद्र अथवा कर देने वाले वैश्यने मेरी कन्याको ले जाकर मेरे सिर पर लात तो नहीं मारी है? सुन्दर माला तो श्मशानमें नहीं गिरी है? किसी क्षत्रियश्रेष्ठ अथवा ब्राह्मणने मेरी कन्याको तो नहीं जीत लिया है? किसी नीच जनने कृष्णाको जीत कर मेरे सिर पर बांया पांव तो नहीं डाला है, यदि मेरी कन्या कृष्णा नरसिंह जनके साथ मिलकर चली गयी हो, तो मुझको दुःख नहीं है। हे महानुभव! किसने मेरी पुत्रीको जीत लिया है। क्या कुरुवीर विचित्रवीर्य्यके पुत्र राजा पाण्डुके लड़के जीते हैं? क्या अर्जुनने धनुष लेकर लक्ष्यभेद किया है?

एकसौ तिरानब्बे अध्यायमें
स्वयम्बर अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि सोमवंश श्रेष्ठ राजपुत्र धृष्टद्युम्न पिताकी यह सब बातें सुनकर प्रसन्न चित्तसे जिसने द्रौपदीको जय कर लिया था और उस विषयमें जो कुछ हुआ था, सब आद्योपान्त पितासे कहने लगे; विशेषरूपसे चौड़ी और लाल आखोंसे सुहावने काला मृगचर्म पहिने देव सदृश रूपवान जिस युवापुरुषने बड़े भारी चापमें गुण चढ़ाकर लक्ष्यभेद करके भूतलमें गिराया था वह तपस्वी किसीसे नहीं मिले। वह ब्राह्मणोंसे घेरे और पूजे जाकर राजोंमें इस प्रकार पराक्रम प्रगट करने लगे, कि जैसे सम्पूर्ण महर्षि और देवोंसे घिरे हुए देवराज दैत्योंमें जा घुसते हैं। कृष्णा उस पुरुषके काले मृगचर्मको पकड़े प्रसन्न मनसे इस प्रकार पीछे पीछे चली, कि जैसे सर्पकी स्त्री सर्पराजके पीछे जाती है। तब सब राजाओंके असह्य और क्रोधयुक्त होकर युद्धके लिये दौड़ने पर दूसरे एक वीर उस पार्थिव सेनामें घुस कर इस प्रकार, कि जैसे क्रोधित यमराज दण्ड लेकर प्राणियोंको नष्ट करते हैं, एक बड़े भारी प्राचीन वृक्षको उखाड़ कर उससे भूपालोंको भगाने लगे। हे नरनाथ! तब राजालोग उन नरसिंह दो वीरोंकी ओर ताकने लगे। वे दोनों वीर चन्द्रमा और सूर्य्यकी भांति सोहते हुए कृष्णाको लेकरके नगरके बाहर एक कुम्भारके घरमें जा घुसे। वहां अग्निकी चिनगारीकी भांति एक बुढ़िया नारी अग्नि सदृश तीन वीरोंके साथ बैठी थी; मुझको जान पड़ा, कि वह उनकी माता होंगी। अनन्तर वह दोनों उनके निकट जाकर और उनके पांव छूकर कृष्णाको उन्हें प्रणाम करनेको बोले। आगे कृष्णाको भिक्षा कहके जताकर उनके पास सौंपके वे सब भिक्षाके लिये निकले। आगे उनके भीख लेकर लौट आनेपर कृष्णाने उनके भोजन की सामग्री लेकर उसका कुछ अंश देवोंको अर्पण किया और कुछ ब्राह्मणोंको दिया। अनन्तर शेष भाग बुढ़िया और पांचों

वीरोंकी प्रशंसा कर, अन्तमें उसने भोजन किया। हे नरनाथ! इसके पश्चात् धरती पर मृगचर्म्म बिछाये जानेके पश्चात् वे उस पर सोये! कृष्णा उनके पांवके नीचे तकियेकी भांति सो रही। तब वे वीर काले बादलके समान गम्भीर स्वरसे आपसमें भांति भांतिकी विचित्र कथा कहने लगे। वे जो सब कथा कह रहे थे, वे कभी ब्राह्मण, वैश्य वा शूद्र जातिकी नहीं हो सकतीं; हे महाराज! वे जैसी युद्ध-सम्बन्धी कथा कहने लगे, उससे वे निःसन्देह क्षत्रियश्रेष्ठ होंगे। हे पिता! इसमें सन्देह नहीं है; कि हमारी आशा पूरी हुई है; क्योंकि सुन चुका हूं, कि पाण्डव अग्निसे जलनेसे बचे हैं, और उस महावीरने जिस प्रकारसे शरासनमें बिनाविलम्ब गुण चढ़ाया, जिस प्रकार सहजहीमें लक्ष्य भेद किया और उनमें आपसकी जैसी कथा सुनी, उससे निश्चय जान पड़ता है, कि येही पञ्च पाण्डव होंगे; इसमें सन्देह नहीं कि, वे माताके साथ छिपकर घूम रहे हैं।

श्रीवैशम्पायन बोले, कि अनन्तर राजा द्रुपदने आनन्द पूर्व्वक पुरोहितसे यह कहके पाण्डवोंके पास भेजा, कि आप उनके निकट जाके यह कहना, कि तुम महात्मा पाण्डुकी सन्तान हो, कि नहीं, मैं तुम्हारी सुध लिया चाहता हूं। राजपुरोहित राजाज्ञाको सुनकर पाण्डवोंके पास जा क्रमसे उनमेंसे हरेकका यश गाकर राजाकी कही सब बात कहने लगे; हे श्रेष्ठ! वरदाता भूनाथ राजा पाञ्चाल आपका परिचय जानना चाहते हैं; वह इस वीरको लक्ष्य भेद करते देखकर अपार आनन्द पारावारमें गोता मार रहे हैं। आप अपनी, ज्ञातिकी और कुलकी कथा आद्योपान्त सुनाकर राजापाञ्चालके उनके साथियोंके और मेरे हृदयमें आनन्द दें; शत्रुओंके सिर पर पांव रखें। महाराज पाण्डु राजा द्रुपदके आत्मवत प्यारे सखा थे, सो भूपाल द्रुपदको यह चाह थी, कि उनकी कन्या कृष्णा सखा पाण्डुकी पुत्रवधू बने; हे अनिन्दित रूपवान वीरो! राजा द्रुपदके हृदयमन्दिरमें सदा यह कामना जगती थी, कि महाभुज अर्ज्जुन धर्म्मानुसार उनकी कन्याको व्याहें; यदि वही हुआ हो, तो उनके लिये बड़ा हित, पुण्य पूरित, यशयुक्त और सुकृत हुआ है।

पुरोहितके नम्रभावसे यह सब कहके चुप होनेपर पाण्डवराजने उनकी ओर देख निकट स्थित भीमसेनकी आज्ञा दी, कि इनको पाद्य अर्घ दो। यह राजा द्रुपदके पुरोहित, बड़े माननीय हैं, भले प्रकार इनकी पूजना चाहिये। हे नरनाथ! भीमसेनने भाईकी आज्ञानुसार भली भांति उनकी पूजा की; पुरोहित ब्राह्मण पूजा लेकर प्रसन्न चित्तसे सुखपूर्व्वक बैठने पर युधिष्ठिर उनसे बोले, कि हे ब्राह्मण! राजा पाञ्चालने मनमाना कन्यादान नहीं किया है। उन्होंने निज धर्म्मके अनुसार लक्ष्यभेदका प्रण करके कन्यादान करना निश्चय किया था, तिससेही इस वीरने उनकी कन्या लाभ की है; अब जाति कुल शील गोत्रके विषयमें पूछनेका उनको कुछभी अधिकार नहीं है। धनुषमें रोदा चढ़ाकर लक्ष्य भेदनेही पर वह सब पूछनेके अधिकार खो चुके हैं। उन्होंके संकल्पसे यह महात्मा सब राजाओंमेंसे द्रौपदी को जय कर लाया है, ऐसी दशामें सोमवंशी राजा द्रुपदको इस समय दुःख मानना केवल सुखसे हाथ धोनाही है। पर उनकी जो चाह है, वह पूरी होगी, क्योंकि इस अतिरूपवती राजकुमारीके लक्षण भले दीख पड़ते हैं। जिसको सामर्थ थोड़ी है, वह कभी उस शरासनमें रोदा नहीं चढ़ा सकता है; और जो नीच जाति अथवा व्यवहारसे ज्ञात नहीं है, वह भी कभी लक्ष्यको छेद कर धरती पर गिरा नहीं सकता है, फिरभी इस भूमण्डल भरमें किसीको ऐसी सामर्थ नहीं है, कि उस

लक्ष्यका गिरना व्यर्थ कहे, सो अब कन्याके लिये उनका दुःख मानना ठीक नहीं। युधिष्ठिर ऐसा कह रहे थे, कि राजा पाञ्चालसे एक दूत यह कहनेको वहां आया, कि अन्न बना है।

वैवाहिक पर्व्वमें एकसौ चौरानव्वे
अध्याय समाप्त।

दूत बोला, कि महाराज द्रुपदने व्याहनेकी इच्छासे बराती लोगोंके लिये अच्छा अन्न बनवाया है। आप नित्यकृत्य पूरा कर शीघ्र वहां आवें; वहीं कृष्णाका विवाह होगा, विलम्ब न करें। सुवर्ण पद्मसे सुहावने, अच्छे घोड़ेवाले यह सब रथ खड़े हैं, आप सब कोई इन पर चढ़के पाञ्चालराजभवनमें शुभागमन करें;

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर कुरुश्रेष्ठ पाण्डव पुरोहितको विदा कर उन बड़े बड़े यानोंमेंसे एक पर कुन्ती और कृष्णाको चढ़ाय आप एक और पर चले। इधर राजा पाञ्चालने पुरोहितसे धर्म्मराज युधिष्ठिरका वचन सुन उनकी जातिका पहिचान और उपहारके लिये चारो वर्णयोग्य फल, सुन्दर सुन्दर माला, चर्म्म, वर्म्म, आसन, गौ, रस्सी, बीज, कृषीके दूसरे सब पदार्थ, शिल्पयोग्य काटने कूटनेके यन्त्र और क्रीड़ाकी वस्तु आदि भांति भांतिके पदार्थ बटोरे। आगे चमकीला चर्म्म, वर्म्म, और ऋष्टि, सुन्दर खड्ग, घोड़े, रथ, अच्छे चाप, भांति भांतिके बाण सुवर्णसे सजी शक्ति प्रास, भूषुण्डी और कुठार, युद्धयोग्य भांति भांतिकी दूसरी वस्तु और अच्छो सेज, घटाटोप बहुविध चीर आदि अनेक प्रकारकी सामग्री अलग अलग रख दी। अनन्तर कौरवराजपत्नी कुन्ती सती द्रौपदीको लेकर राजा द्रुपदके अन्तःपुरमें गयी। राजमहरियोंने प्रसन्न चित्तसे उनका स्वागत कर सम्मानित किया। हे राजन्! अनन्तर राजा पाञ्चाल, तथा उनके मन्त्री, पुत्र, मित्र, टहलुये और राजपरिवारके दूसरे लोग, मृगचर्म्मका दुपट्टा लिये आगये हुए पाण्डवोंकी सिंहसमान विक्रमी चाल, बड़े बैलसदृश आंख, सर्पराजकी देहकी भांति लटके भुज और बड़े स्कन्ध देख आनन्दके समुद्रमें डूबे। वे नरश्रेष्ठ वीरगण बिना आश्चर्य और निडर चित्तसे अलग अलग पादपीठयुक्त अति सुन्दर मूल्यवान आसनों पर बड़े छोटेके क्रमसे बैठ गये। अनन्तर अच्छे लिवास गहनोंसे बने ठने टहलुये, महरिन और खिलाने पिलानेवालोंने यथायोग्य सुवर्ण और चांदीके वर्त्तनोंमें परम स्वादिष्ट राजाके भोजनयोग्य अन्नपानादि भांति भांतिकी सामग्री लाकर दे दी। हे महाराज! पुरुषोंमें वीर पाण्डव मनमाने भोजन कर तृप्त हुए और उपहारकी वस्तुओंमेंसे दूसरी सब तजकर केवल लड़ाई योग्य पदार्थोंको देखने लगे। तब राजा द्रुपद और उनके पुत्र और प्रधान प्रधान मन्त्री यह देख कुन्तीकुमारोंको राजकुमार निश्चय कर आनन्द मानने लगे।

वैवाहिक पर्व्वमें एकसौ पंचानव्वे
अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर अति द्युतिमान पाञ्चाल्य द्रुपद, बड़े तेजस्वी राजपुत्र युधिष्ठिरको सम्भाषण करके बिना दुःख ब्राह्मणयोग्य आदरके साथ बोले, कि तुमको ब्राह्मण, क्षत्रिय, गुणवान वैश्य वा शूद्र इनमेंसे कौनसी जाति समझूं! अथवा तुम देवता तो नहीं हो, कि देखनेके लिये माया लेकर ब्राह्मणोंके स्वरूपमें टहलते हुए कृष्णाके निमित्त यहां शुभागमन किया है? तुम सच कहो इस विषयमें हमको शंका हुई है। हे शत्रुसंतन! क्या इस शङ्काके दूर होनेसे

हमारे हृदयमें आनन्द जल वर्षेगा? क्या हमारा सौभाग्य उगा है? हे शत्रु डरावन! अपनी इच्छासे सत्य वचन बोलो, राजाके सामने सच कहना, जितनी शोभा है, इष्टा-पूर्त्त अर्थात् यज्ञादि क्रिया और वापी प्रतिष्ठा आदि पुण्यदायी कर्म्मभी उतनी शोभा नहीं देते, सो असत्य न कहना। हे शत्रुमथन! मैं तुम्हारा वचन सुनके यथारोति तुम्हारी जाति-योग्य विवाह करनेका उद्योग करूंगा।

युधिष्ठिर बोले, कि हे पाञ्चालनाथ! आप दुःख न मानें, सन्तोष लें; सन्देह नहीं, कि आपका मनोरथ सफल हुआ है। हे महा-राज! हम क्षत्रियवंशी महात्मा राजा पाण्डुके पुत्र हैं। मैं कुन्तीका ज्येष्ठ पुत्र हूं; यह दो भीमार्जुन हैं, इन्होंनेही राजसभामें आपकी कन्या जय करली है; और जहां कृष्णा है, वहीं यमज भ्राता नकुल सहदेव और माता विराज रही हैं; सो आप हमको क्षत्रिय निश्चय करलें; हे नरसिंह! आप मनका दुःख दूर करें; पद्मिनी-समान आपकी यह कन्या एक झीलसे दूसरे झीलमें लायी गयी है। हे महाराज! आप हमारे गुरु और परम गति हैं? सो आपसे यह सब व्योरा सच कह दिया।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे महाराज! अनन्तर शत्रु डरावने धर्म्मधर राजा द्रुपद पाण्डवोंका परिचय पाकर परम हर्षसे घबरा-कर युधिष्ठिरको योग्य उत्तर न दे सके। वह उस हर्षको यत्नसे दबाकर धर्म्मराजको काल-योग्य वचन बोले। पूछा, कि वे क्योंकर वारणावत नगरसे भागे थे। पाण्डुपुत्रने आद्यो-पान्त वह सब कथा कह सुनायी। वचनशील राजा द्रुपद उनकी बात सुनकर नरनाथ धृत-राष्ट्रको निन्दा करने लगे और कुन्तीपुत्र युधि-ष्ठिरको ढाड़स दे उनको राज्यमें बैठानेकी प्रतिज्ञा की। अनन्तर कुन्ती द्रौपदी भीम, अर्ज्जुन नकुल और सहदेव राजाकी आज्ञासे एक बड़े भवनमें गये। हे महाराज! वे राजा यज्ञसेनसे सन्मान पाकर उस भवनमें बसने लगे। अनन्तर राजा पुत्रोंके साथ सोच तज युधिष्ठिरसे बोले, कि आज शुभ दिन है, आज कुरुनन्दन अर्ज्जुन विवाहके कौलिक कर्म्म को करके कृष्णासे विवाह करें।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे महाराज! धर्म्मात्मा युधिष्ठिर उनसे बोले, कि हे नर-नाथ! मुझकोभी विवाह करना है। द्रुपदने कहा, कि हे वीर! तुमही विधि पूर्व्वक मेरी बेटीका पाणिग्रहण करो, अथवा तुम जिससे कृष्णाको व्याहा चाहो उसीसे व्याहो। युधि-ष्ठिर बोले, हे महात्मा! द्रौपदी हम सबोंकी रानी बनेगी, क्योंकि पहिले मेरी माताने ऐसी आज्ञा की है, विशेष मेरा और भीमसेनका विवाह नहीं हुआ है; यद्यपि अर्ज्जुनने तुम्हारी रत्नसदृश कन्याको वाजीमें जीत लिया है, पर हे राजेन्द्र! हम भाइयोंमें एक नियम है, कि रत्न पानेसे हम सब एकत्र होकर भोग करेंगे। हम उस नियमके विरुद्ध चलनेका साहस नहीं रखते; सो द्रौपदी हम सबोंकी धर्म्मपत्नी होगी; वह अग्निके सामने बड़े छोटेके क्रमसे हम सबोंसे विवाह करे। द्रुपद बोले, हे कुरुनन्दन! शास्त्रकी विधिसे एक पुरुषकी बहुत स्त्री होती हैं, पर एक नारिका बहुतपति होना कभी नहीं सुना। हे कुन्ती-पुत्र! तुम पवित्र और धर्म्मके जानकार होकरकेभी क्योंकर लोक और वेदके विरोधी कर्म्ममें हाथ डाला चाहते हो! क्यों तुम्हारी ऐसी बुद्धि हुई? युधिष्ठिर बोले, महाराज! धर्म्ममार्ग सूक्ष्म है, उसकी गति हम जान नहीं सकते। पर प्रचेता आदि पहिलेके महात्मा जिस पथसे चले हैं, हम उसी पथसे चलेंगे। हे राजन्! मेरी माताने वह आज्ञा दी है और वह मेरा भी मनमाना हुआ है;

सो वह अवश्यही सनातन धर्म्म है, क्योंकि मेरे वागेन्द्रियसे कभी झूठी बात नहीं निकलती, मेरा मन भी अधर्म्मकी ओर नहीं चलता। आप इस मतसे काम करें, अधिक विचारनेका प्रयोजन नहीं हैं; हे पृथ्वीनाथ! इस विषयमें आप कोई शङ्का न करें। द्रुपद बोले, कि हे कुन्तीपुत्र! तुम, कुन्ती और मेरा पुत्र धृष्टद्युम्न यह तीन मिलके विचार कर क्या करना है, निश्चय करो, मैं कल जो करना हो, करूंगा। श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भारत! अनन्तर कुन्ती, युधिष्ठिर और धृष्टद्युम्न यह तीन एकत्र होकर उस विषयमें विचारने लगे। ऐसे समयमें भगवान द्वैपायन आपही वहां आ पहुंचे।

वैवाहिक पर्व्वमें एकसौ छानब्बे अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर सब पाण्डव बड़े यशोवन्त राजा पाञ्चाल और वहांके दूसरे लोगोंने उठ कर महात्मा कृष्ण द्वैपायनका स्वागत किया। महानुभव महर्षि उनका प्रणाम आदर पूर्व्वक लेके कुशलक्षेम पूछकर सुन्दर सुवर्णके आसन पर बैठे। पाण्डव आदि सबने अति तेजस्वी कृष्णद्वैपायनकी आज्ञासे महामूल्य आसन लिये। हे पृथ्वीनाथ! पृषतराजपुत्र राजा पाञ्चालने क्षण भर पीछे मधुर वचन कहके महात्मा ऋषिसे द्रौपदीके व्याहनेके विषयमें प्रश्न किया। हे भगवन! सच कहें, कि एक स्त्रीके बहुत पुरुषोंकी धर्म्मपत्नी होनेसे सङ्करताका दोष पहुंचता है, कि नहीं?

व्यासजी बोले, कि वेद और लोकाचारमें प्रसिद्ध न रहनेसे यह धर्म्म लोप होगया है, पर इस विषयमें तुमलोगोंमेंसे किसका क्या मत है, सुना चाहता हूं।

द्रुपद बोले, कि हे द्विजश्रेष्ठ! कहीं अनेक पुरुषोंकी एक स्त्री नहीं है; सो यह कर्म्म लोकाचार और वेदके विरोधी होनेके कारण अधर्म्मयुक्त जान पड़ता है; पहिलेके महात्माओंने भी ऐसा कार्य्य नहीं किया। विद्वान जनको किसी प्रकार अधर्म्म मार्गमें पांव डालना नहीं चाहिये; इस लिये मैं इस काममें हाथ डालनेका साहस नहीं कर सकता हूं; यह धर्म्म मुझको सदा सन्देहसे भरा हुआ प्रगट होरहा है।

धृष्टद्युम्न बोले, कि हे ब्रह्मा! आप द्विजोंमें श्रेष्ठ और तपोबलसे बली हैं; कहें तो सही, कि बड़े भाई सुमार्गी होकर क्योंकर छोटे भाई की स्त्रीसे मिल सकता है। धर्म्म बहुत सूक्ष्म है, सो कौनसा विषय धर्म्मयुक्त और कौन अधर्म्म युक्त है, इसका बिचार नहीं कर सकते, इसीसे साहस-पूर्व्वक यह नहीं कहा, कि द्रौपदी पांच पुरुषोंकी स्त्री बने।

युधिष्ठिर बोले, कि मेरा वचन कभी उलट पुलट बात नहीं बोलता, मन भी कभी अधर्म्म पर नहीं झुकता, इस विषयमें मेरे मनकी भी प्रवृत्ति हो रही है; सो यह किसी प्रकार धर्म्मके विरुद्ध जान नहीं पड़ता। पुराणोंमें भी सुना है, कि जटिला नाम्नी गौतम गोत्रकी धर्म्म पालनेवाली तापसी एक कन्या थी; सात ऋषियोंने उससे विवाह किया था। और पूर्व्वकालमें तपस्वी जितेन्द्रिय "प्रचेता" इस एक नामके दश भाई थे; वृक्षसे उपजी हुई एक मुनिकन्या उन दशोंसे व्याही थी। हे धर्म्मके जानकारोंमें श्रेष्ठ! कहा है, कि गुरु जैसी आज्ञा करते हैं, वही धर्म्मयुक्त है; और सब गुरुओंमें माता ही परम गुरु है; उन परमगुरु माताने हमको आज्ञा दी है, कि भीखकी सामग्रीको सब मिलकर भोगो। हे द्विजोत्तम! मैंने इस लिये इस कर्म्मको परम धर्म्म विचारा है।

कुन्ती बोली, धर्म्म आचरनेवाले युधिष्ठिरने जैसा कहा, वह ठीकही है; मेरी वह बात

झूठो न ठहर जाय, इसलिये मैं बहुत भय खा गयो हूं, हे ब्रह्मन। क्योंकर मेरी उस बातकी सचाई बनी रहेगी?

श्रीव्यासजी बोले, कि भद्रे! तुम्हारी बातकी सचाई बनी रहेगी; तुमने जो कहा है, वह सनातन धर्म्म है। हे पाञ्चाल! युधिष्ठिरने जो कहा है वही धर्म्मयुक्त है, इसमें कोई शङ्का नहीं है। यह जिस प्रकार जिनसे सनातनधर्म्म करके निश्चय किया गया, वह सबोंसे नहीं कहूंगा, केवल तुमही सुनो।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर प्रभु द्वैपायन भगवान व्यासजी उठकर राजाका हाथ थामकर राजमन्दिरमें गये। कुन्ती, पाण्डव और धृष्टद्युम्न इन दोनोंकी बाट ताकते हुए वहीं बैठे रहे; अनन्तर महर्षि द्वैपायन महात्मा द्रुपदसे यह कथा कहने लगे, कि अनेक पुरुषोंको एक स्त्री होना धर्म्मके विरुद्ध नहीं है।

वैवाहिक पर्व्वमें एकसौ सतानवे
अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि महाराज! पहिले नैमिषारण्यमें देवोंने महायज्ञ आरम्भ किया था। उस महायज्ञमें वैवस्वत यम पशु मारनेको नियुक्त हुए थे। वह उस काममें प्रवृत्त रहके किसी प्रजाको नहीं मारते थे; इससे मनुष्योंके मृत्युसे बचने पर उनका भय दिनोंदिन बढ़ने लगा। अनन्तर चन्द्र, इन्द्र, वरुण, कुवेर, दोनों अश्विनीकुमार, साध्यगण, रुद्रगण, वसुगण और दूसरे देवगण भुवन रचनेहारे प्रजापतिके निकट जा पहुंचे; और सब मिलकर मनुष्योंकी संख्या वृद्धि होनेके कारण भीतचित्तसे उन लोकोंके गुरु ब्रह्माजीसे बोले, मनुष्योंकी संख्या बढ़नेसे हम बड़े भयसे उदास हैं, और सुखकी आशासे आपकी शरण लेते हैं। पितामह बोले, कि मनुष्योंसे तुम्हे क्या भय है? तुम सब अमर हो, सो मर्त्योंसे तुमको भय खाना नहीं चाहिये। देवगण बोले, कि अब मर्तगण अमर्त हुए हैं, सो हम लोगोंसे कोई विशेषता नहीं रही, इस लिये हम उदास हो मर्त्तोंसे अपना प्रभेद बनाये रखनेकी चाहसे यहां आये हैं। भगवान बोले, कि तपनपुत्र इस कालमें यज्ञमें लगे हैं, सो नरोंकी मृत्यु नहीं हो रही है, पर उनके यज्ञके सम्पूर्ण कार्य्य हो जाने पर मानवोंका अन्तकाल आ पहुंचेगा। तब यमराजका शरीर तुम्हारेही वीर्य्यसे सजकर और बढ़कर जीवनाशी बन जायगा। मनुष्योंको कुछ वीर्य्य नहीं रहेगा।

श्रीव्यासजी बोले, कि अनन्तर महाबली देवगण पितामहका वचन सुनकर नैमिषारण्यमें यज्ञ भूमिपर गये। वे उस ठौर ठहरे थे, कि ऐसे समयमें देखा, कि भागीरथीके जलसे एक सुवर्ण पद्म बहा जाता है, उसके देखतेही वे अचम्भेमें हो रहे, अनन्तर यह ढूढ़नेके लिये, कि वह सोनेका कमल कहांसे उपजा है, उनमेंसे शूरतायुक्त इन्द्र वहांसे चल निकले। जहांसे गङ्गाजी निकलती हैं, वहां पहुंचकर उन्होंने अग्निकी शोभाके समान एक उजाली कन्या देखी। वह नारी रोती हुई जलकी चाहसे गङ्गाजीमें देह डुबा रही थी। उसके आंसूके बूंद गङ्गाजलमें गिरके सुवर्ण कमल बनते जाते थे। देवराज वैसी अचम्भी लीला देखके उसके पास जाकर बोले, कि भद्रे! तुम कौन? क्यों रो रही हो? मैं इसका ब्योरा जाना चाहता हूं। बाला बोली, कि देवराज! मैं बड़ी अभागी हूं, तुम मेरे संग चलो, तो जान सकोगे कि मैं कौन और क्यों रो रही हूं। हे महाराज! तुम मेरे साथ आओ, मैं तुम्हारे आगे चलती हूं; रुलाईका कारण तुम देख लोगे।

श्रीव्यासजी बोले, कि देवराज तब नारीकी यह बात सुनके उसके पीछे पीछे चलने लगे। आगे कुछ दूर जाकर पासही हिमाचलकी

चोटी पर देखा, कि एक परम सुन्दर युवा पुरुष युवतीके साथ सिंहासन पर बैठ चौसड़ खेल रहे हैं। सुरनाथ उनको चौसड़में बड़े मग्न देखके बोले, कि हे पण्डितवर! जानना, कि यह तीनों भुवन मेरेही वशमें हैं। इसपर पुरुषके कोई उत्तर न देने पर इन्द्रने क्रोधके मारे फिर कहा, कि मैं भूमण्डल भरका अधीश हूं। तब उन खेलते हुए पुरुषने देवराजको क्रोधित देख एकवार उनकी ओर आंखें फेरीं। देवराज उनकी आंखोंके सामने पड़तेही जड़वत बन गये। अनन्तर वह पुरुष चौसड़ खेल लेनेके पीछे उस रोती हुई बालासे बोले कि तुम इस इन्द्रको लाओ, उसको शासन कर दूंगा, कि वह मेरे सामने फिर अहङ्कार न प्रकट करे। अनन्तर उस नारीके देवराजको लानेके लिये छूतेही देवराजके अंग अवश हुए और वह धरती पर गिर पड़े। तब उन पुरुषरूपी कठोर तेजस्वी भगवान महादेवजीने उनसे कहा, कि इन्द्र! फिर कभी ऐसा काम न करना! तुम्हारा बलवीर्य बहुत अधिक है; सो तुम इस गड्‌हेके द्वार रोके हुए बड़े पर्वतको खोलकर बिलके भीतर जाघुसो; तुम वहां देखोगे कि तुम्हारे समान सूर्य्यवत प्रकाशमान बहुत इन्द्र हैं। तब देवराजने पर्व्वतराजके उस बिलके द्वारको खोलके उसमें अपने ऐसे दूसरे चार इन्द्रोंको देखा। वह उनको देखते ही यह कहके दुःख करने लगे, कि "मुझकोभी ऐसी दशामें रहना न पड़े!" तब देवदेव महेश्वर क्रोधसे नेत्र फैला कर इन्द्रसे बोले कि इन्द्र! तू इस बिलमें जा गिर, क्योंकि पहिले तूने चपलतासे मेरा अनादर किया है। इन्द्र बिभुके क्रोधित वचनसे अति कातर होकर इस प्रकार वेगसे कांपने लगे, कि जैसे पहाड़ परके पीपलके पत्ते हवासे डोलाये जाकर थरथरावें। वह बैल पर चढ़े महादेवजीसे एकायक ऐसी कड़ीली बात सुनके थरथराते हुए दोनों हाथ जोड़कर अनेक रूप लेनेवाले उन कठोर देवसे बोले, कि हे आदिनाथ! हे भव! तुम चराचर सहित सम्पूर्ण विश्वके देखनेवाले हो, तुम सब कुछ जान लेते हो। तब कठोर तेजस्वी महादेवजी हंसकर बोले, कि मैं उनपर कभी प्रसन्न नहीं होता, जो लोग ऐसा अहंकारी स्वभाव रखते हैं। देखो, पहिले यह सब इन्द्र ऐसाही कर्म्म कर इस बिलमें जा गिरे हैं, सो तुमभी उसमें जाकर लेट रहो। सन्देह नहीं है, कि तुम सबोंका यही हाल होगा कि, तुम पांचोंको मनुष्यजन्म लेकर मर्त्यलोकमें अनेक भांतिके कठोर कर्म्म करने पड़ेंगे, अनेक जीवोंको मारकर पहिलेके जीत लिये हुए अति मूल्यवान इन्द्रलोकमें शुभागमन करोगे; तुम्हारे लिये मैंने ऐसाही निश्चय किया है। पहिले इन्द्रलोग बोले, कि हम पांच देवलोकसे मर्त्यलोकको उस ठौरको जायंगे कि जहां मोक्षका मिलना कठिन है; पर हमारी प्रार्थना यह है, कि उस स्त्रीके कि जो हमारी माता होगी, धर्म्म, वायु, मघवान और दोनों अश्विनीकुमार यह पांच देव हमारे लिये गर्भाधान करें। पर हम मर्त्त्यधाममें अनेक मनुष्योंसे लड़ेंगे; आगे इन्द्रलोकमें आवेंगे।

श्रीव्यासजी बोले, कि इन्द्रजी देवपति देवसे बोले, कि मैं स्वयं न जाकर कार्य्य पूरा करनेके लिये निज वीर्य्यसे एक पुरुष उपजा दूंगा। अनन्तर भगवान पिनाकधारीने दया-स्वभावसे विश्वभुक, भूतधामा, शिवि, शान्ति और तेजस्वी इन प्रतापी पांच इन्द्रोंकी प्रार्थना मान ली। और लोकोंके मन हरनेवाली स्वर्गकी श्री, उस बालाको मर्त्यलोकमें उनकी पत्नी बनानेका विधान कर दिया। आगे वह देव उनको साथ लेकर अप्रमेय नारायणके पास गये। भगवान श्रीनारायणजीने वह सब जानके उस विषयमें

अपनी सम्मति दी। अनन्तर वे भूमण्डलमें जन्म लेने लगे। भगवान् हरिने अपनी शक्तिरूपी कृष्ण और शुक्ल इन दो रङ्गके दो केश उखाड़ दिये। वे केश यदुवंशमें रोहिणी और देवकीके गर्भमें जाके प्रविष्ट हुए। श्रीनारायणजीके उस शुक्ल केशने बलदेवजीके स्वरूपमें जन्म लिया है; और कालेवरणका वह दूसरा केश स्वरूपके अनुसार कृष्ण बनके उपजा है। इन्द्ररूपी जो चार पुरुष उस पर्व्वतकी कन्दरामें बंधये थे उन्होंने इस मर्त्त्यलोकमें पाण्डवके स्वरूपमें जन्म लिया है। पाण्डवसव्यसाची इन्द्रके अंशसे उपजे हैं। हे महाराज! जो पहिले इन्द्र थे, वे इस प्रकारसे पाण्डवोंके रूपमें अवतीर्ण हुए हैं। और जिस दिव्यरूपिणी स्वर्ग-लक्ष्मीकी बात कही गयी है, वही यह द्रौपदी है। यह पहिलेही निश्चय हुआ है, कि यह इन सबोंकी पत्नी बनेगी। देखो, जिसका रूप चन्द्रमा और सूर्य्यके उजालेकी भांति है और जिसकी सुगन्ध कोसभरतक पहुंचती है,वह क्या स्त्री देवसंयोगके बिना धरती से उठ सकती है? हे नरनाथ! मैं प्रीतिपूर्व्वक तुमको अति आश्चर्य्य दिव्य नेत्रोंका वर देता हूं, उससे तुम कुन्तीपुत्रोंको दिव्य और पवित्र पहिलेकी देहमें देख लोगे। श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर परम उदार कर्म्म-करनेवाले पवित्र विप्रवर श्रीव्यासजीके तपो-बलसे उस राजाको दिव्यनेत्र देने पर राजाने सब पाण्डवोंको यथावत पूर्व्वदेहमें देखा। उनको सुवर्ण किरीटधारी, माला पहिने, अग्नि और सूर्य्यके समान उज्ज्वलवर्ण, उपयुक्त अलंकारोंसे मनोहर, तरुण, विशाल छातीवाले, पंचहाथसे कछु कम ऊंचे और इन्द्ररूपी देखा। सर्व्व गुणायुक्त, निर्म्मल दिव्यवसन पहिने और अच्छी सुगन्धी मालासे सजे पहिलेके इन्द्रोंकी भांति उन पाण्डवोंको साक्षात् त्रिलोचन वा वसुगण, रुद्रगण, अथवा आदित्यगणके समान देखकर और इन्द्रपुत्र अर्ज्जुनको साक्षात इन्द्ररूपी निहारकर प्रसन्न हुए। आगे उस अप्रमेय दिव्य मायाको देखके अचरज मानकर चन्द्र और अग्नि समान प्रकाश-वती लक्ष्मीजी सदृश परम रूपवती, श्रेष्ठतमा उस स्वर्ग-कन्याको उसके रूप, तेज और यशके द्वारा उनकी भार्य्या बनने योग्य समझा। राजा द्रुपद उस अति आश्चर्य्यलीलाको देखकर सत्य-वतीपुत्रके पांव छूकर बोले, कि हे परमर्षि! मुझको दिव्य नेत्र देकर इन सब आश्चर्य्य रूपोंका दिखाना आपके लिये कोई बड़ी बात नहीं है। अनन्तर द्वैपायन प्रसन्नचित्तसे फिर बोले, कि एक तपोवनमें किसी महात्मा ऋषिकी एक कन्या थी; वह कन्या रूपवती युवती और सती होने परभी पति पा नहीं सकी थीं; सो कठोर तप कर शङ्करको प्रसन्न किया। स्वयं वरदाता देवोंके ईश्वर प्रसन्न होकर बोले, कि अपना मनमाना वर मांगो। कन्या यह सुनके हड़बड़ीसे वरदाता ईश्वरसे बार बार बोली, कि मैं सर्व्वगुणशील पति मांगती हूं। देवनाथ शङ्करने प्रसन्नमनसे यह कहके वर दिया, कि भद्रे! तुम्हारे पांच पति होंगे? शिवकी कृपा लाभ की हुई वह बाला वरदाता देवसे फिर बोली, कि हे शङ्कर! मैं आपसे गुणशील एक पतिकी प्रार्थना करती हूं। प्रसन्नात्मा देव-देवने उससे फिर यह शुभ वचन कहा कि भद्रे! तुमने यह कहा, कि पति दो, मुझसे पांचबार प्रार्थना की है; सो तुम्हारे पांच पति होंगे, तुम्हारा मङ्गल होवे, मेरी बात न पलटेगी, दूसरे जन्ममें तुम्हारे पांच पति होंगे। हे द्रुपद! देवीरूपिणी अनिन्दिता वह तुम्हारी कन्या पांच मनुष्योंकी पत्नी होनेके लिये निश्चय की गयी है। स्वर्गकी श्री यह बाला कठोर तप करके पाण्डवोंके लिये महामखसे उपज कर तुम्हारी कन्या हुई है, देवोंसे सेवी जाती हुई सुन्दरी यह देवी स्वकृत कर्म्मसे अकेली पांच मनुष्योंकी स्त्री होगी।

इस अभिप्रायसे विधाताने स्वयं इसको रचा है। हे महाराज द्रुपद ! तुमने सब कथा सुन लो, अब जो चाहो सो करो।

वैवाहिक पर्व्वमें एकसौ अठानवे अध्याय समाप्त।

द्रुपद बोले, कि महर्षि ! मैंने पहिले आपसे यह न सुने रहनेसे वैसा विधान करनेका प्रयत्न किया था, अब विशेष ज्ञात हुआ ; देवताके ठहराये हुए विषयको कभी उपेक्षा नहीं की जा सकती है, अतएव पहिलेके ठहराये हुए विधानके अनुसारही कर्त्तव्य निश्चय करता हूं। भाग्यकी गांठ पलटी नहीं जा सकती ; निजकर्म्मसे कुछ होता नहीं ; एक वरके लिये लक्ष्य रचा था, वही अब पांचके लिये निश्चय होगया। कृष्णा पहिले जन्ममें जिस प्रकार पांच वार बोली थी, कि मुझको पतिका वर दें, उसही प्रकार भगवान्‌नेभी कहा था, कि तुमको पांच पतिकाही वर मिलता है ; सो इस वातकी भलाई बुराई वही जानते हैं। जब भगवान शङ्करने ऐसा विधान किया है, और इन्हीके लिये कृष्णा वनायी गयी है, तब यह चाहे धर्म्म वा अधर्म्म होवे, मुझको कोई दोष नहीं लग सकता। यह लोग विधिके विधानसे सुखपूर्व्वक द्रौपदीसे विवाह करें।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर भगवान् महर्षि धर्म्मराजसे बोले, कि हे युधिष्ठिर ! आज शुभदिन है, चन्द्रमा पौष्टिक योग प्राप्त करेगा, सो पहिले तुम आज द्रौपदीसे विवाह करो। भगवान द्वैपायनके ऐसा कहने पर पुत्रसहित राजा यज्ञसेन कन्याको व्याहनेका प्रयत्न करने लगे। वह दानके लिये यथायोग्य अनेक अच्छो अच्छो सामग्री वटोरकर और द्रौपदीको भांति भांतिके रत्न अलङ्कारोंसे सजाकर लिवा लाये। राजाके मित्र और मन्त्री तथा ब्राह्मण और दूसरे पुरवासी सब विवाहको देखनेके लिये, प्रसन्नचित्तसे अपनी अपनी प्रधानताके अनुसार मिलकर आने लगे। राज-भवनका आंगन पद्म आदि जलसे उपजे हुए अनेक फूलोंकी बड़ो बड़ी मालासे सजा था ; सम्मानित जनोंके शुभागमनसे उसकी अपूर्व्व शोभा हुई। वह राजभवन यथा योग्य ठौरमें सजी सजाई सेना और भांति भांतिके विचित्र रत्नोंसे खचित होकर ऐसो सुन्दर शोभा पाने लगा, कि जैसे आकाशमण्डल अमल नक्षत्रोंकी मण्डलीसे ढपे जाकर परमरूपसे सुशोभित हो। हे प्रभो ! अनन्तर जलती हुई वालुकाकी भांति तेजस्वी पुरोहित धौम्यके पाण्डवोंके अभिषिक्त और माङ्गलिकक्रिया कर लेने पर तरुण अवस्थावाले पाण्डव गण नाना वस्त्र आभूषणोंसे सजके सुगन्धी चन्दन लगाकर और कुण्डल पहिरे गोशालामें घुसते हुए बड़े बड़े बैलोंकी भांति बड़े आनन्द-की उमंगसे उस सभामें जा पहुंचे। अनन्तर मन्त्रके जानकार वेदवक्ता धौम्य अग्नि स्थापन कर जलती हुई आगमें यथाविधि मन्त्र पढ़कर आहुति चढ़ाने लगे ; आगे युधिष्ठिरको लाय कर द्रौपदीसे गांठ जोड़ देने पर वर कन्या दोनोंने अग्निकी परिक्रमा कर पाणिग्रहण किया। देवदत्त परोहित उनकी विवाह-क्रिया पूरी कर युद्धमें पण्डित युधिष्ठिरकी आज्ञा लेकर राज-भवनसे पधारे। इस प्रकार महा-रथी कौरववंशके बढ़ानेवाले राज-पुत्रगणने सबसे अच्छे अच्छे लिवास गहनोंसे सजके क्रमसे एक एक दिन उस सुन्दरीका पाणि-ग्रहण किया, हे महाराज ! महर्षि श्रीव्यास-जीने इस विषयमें मुझको एक आश्चर्य्यलीलाकी कथा कही थी ; उस महानुभव सुन्दरी द्रौप-दीकी एक दिन विवाह हो जाने पर फिर दूसरे दिन कन्यावस्था हो जाती थी। इस प्रकार विवाह हो जाने पर महानुभव सौमिक राजा द्रुपदने अग्निको साक्षीकर महारथी

पाण्डवोंको पीछे कहे हुए नाना धन यौतुकमें दिया। उन्होंने सुवर्ण रासयुक्त चार घोड़ोंके साथ सुवर्णसे मढ़े हुए सौ रथ, सुवर्णकी चोटीवाले पहाड़के समान और बिन्दुजालसे सुशोभित सौ गज, नवयौवनसे मदमाती, मूल्यवान चीर, गहने और मालादिकोंसे बनी-ठनी सौ दासी, अनेक भांति मूल्यवान चीर और गहने तथा उनमेंसे हरेककी अलग अलग एक एक लाख सुवर्ण मुद्रा दे दिया। अनन्तर विवाह हो जाने पर महाबली पाण्डव बहुत रत्नके साथ उस रत्नरूपी स्त्रीको लाभ कर राजा पाञ्चालकी पुरीमें इन्द्रके समान विहार करने लगे।

वैवाहिक पर्व्वमें एकसौ निनानब्बे अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि पाण्डवोंसे राजा द्रुपदकी मित्रता हो जाने पर वह एकबारही निडर बने; देवोंसेभी उनको कोई भय न रहा। महात्मा द्रुपदकी पर्देवाली स्त्रियोंने कुन्तीके पास आके अपना अपना नाम कहकर उनके पांवपर सिर नायके प्रणाम किया। मांगलिक सूतादि लिये हुई चौम पहिनी द्रौपदी सासके पांव पर लोटके दोनों हाथ जोड़कर सिर नाय खड़ी हुई। कुन्तीने रूप-लक्षणोंसे सजी सुशीला शुभ-आचारवती पुत्र-बधू द्रौपदीको प्यारसे यह अशीस दिया, कि ऐ कल्याणि! जिस प्रकार इन्द्रपत्नी महेन्द्रकी, स्वाहा विभावसुकी, रोहिणी चन्द्रमाको, दम-यन्ती नलकी, भद्रा कुबेरकी, अरुन्धती वशिष्ठकी और लक्ष्मी नारायनकी प्यारी है, वैसेही तुम पतियोंकी प्यारी बनो; हे भद्रे! तुम दीर्घजीवनवाले वीरपुत्र प्रसव करो, बहुत सुख लेके, सौभाग्य पायके यज्ञ भोग करो, पतिव्रता हो, यज्ञमें दीक्षित पतियोंकी सदा साथी बनी रहो। अतिथि, पाहुने, बाल, वृद्ध और गुरुओंकी सदा विधि पूर्व्वक सेवा करते तुम्हारा काल बीते। तुम कुरुजाङ्गलका राज्य और नगरमें धर्म्मराजके साथ रही पर बैठो। सम्पूर्ण धरती तुम्हारे महाबली पतियोंके परा-क्रमसे जय होकर अश्वमेध महायज्ञ द्वारा तुमसे ब्राह्मणोंको सौंप दी जावे। हे गुणवति! पृथ्वी भरमें जो सब गुणयुक्त रत्न हैं, उनपर तुम्हारा हाथ लगे। तुम परम सुखसे शत वर्ष गंवाओ। ऐ गुणवती वधू! आज तुमको चौम पहिनी देखकर जैसा आनन्द प्रगट करती हूं, तुम्हारा पुत्र उपजनेसे फिर ऐसा आनन्द लूटूगी।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर श्रीकृष्ण-चन्द्रने ब्याहे हुए पाण्डवोंके लिये नीचे कहे यौतुक धन भेजा। उन्होंने मोती माण्डत वैदूर्य-मणिचित्रित सुवर्ण अलङ्कार, नाना देशोंके दुर्लभ वस्त्र, सुन्दर कोमल अच्छे अच्छे कम्बल तथा मृगछाल, भांति भांतिकी अच्छीसे अच्छी सेज, शय्या, आसन और यान, वैदूर्य्यसे झलकते हीरेसे खचित सैकड़ों वर्त्तन, भले सिखाये पढ़ाये सुन्दर लक्षणवाले हाथी, गहनोंसे भले सजे अच्छे अच्छे घोड़े, सुन्दर वरण ऊंचे ऊंचे अच्छे दांत वाले घोड़ोंसे जुते हुए रथ और खानसे उपजा शुद्ध सुवर्ण, ये सब वस्तु बहुत अधिक और करोड़ों सुवर्णके टुकड़े भेज दिये। अमेयात्मा मधुसूदनने पाण्डवोंकी सेवाके लिये रूप, यौवन और दयासे सुहावनी गह-नोंसे बनीठनी अनेक देशोंकी सहस्रों दासी दीं। धर्म्मराज युधिष्ठिरने गोविन्दकी प्रीतिके लिये परम प्रसन्न चित्तसे वह सब सामग्री ले ली।

दोसौ अध्यायमें वैवाहिक पर्व्व समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर भूपा-लोंको अपने अपने दूतोंसे सुध मिल गयी, कि अच्छे लक्षणवाली द्रौपदी पाण्डवोंकी पति

पा गयी है ; और जिन महात्माने धनुषको नवाकर लच्यको विड किया था, वही महा धनुषवाणधारी जयशील अर्जुन हैं और जिन बली पुरुषने मद्रनाथ शल्यको धरती पर पटक दिया था, जिन्होंने क्रोधके मारे युद्ध स्थलमें खड़े होकर दृचसे सवोंको डराया था, उस कालमें जिन महात्माके मनमें कुछभी भय हमको दोख नहीं पड़ता था, जिनका स्पर्शभी शत्रुओंको भयानक जान पड़ा था, वही शत्रुनाशी भीमसेन हैं। हे महाराज! नरेशोंने पहिले सुना था, कि पाण्डवगण मातासहित जतुगृहमें जल मरे, अब पाण्डवोंको प्रशान्त और ब्राह्मणोंका वेश किये हुए सुनकर वे अचश्भेमें हो गये। उन्होंने समझा कि पाण्डव फिर जन्म लेकर आये हैं। आगे वे पुरोचनका किया बड़ा निठुर कर्म्म स्मरण कर कौरव धृतराष्ट्र और भीष्मको धिक्कार देने लगे। अनन्तर सम्पूर्ण स्वयम्बरका कार्य्य पूरा होने पर द्रौपदी पाण्डवोंसे व्याही गयी सुनके वे सब भूपाल निज निज राजधानीको पधारे।

राजा दुर्य्योधन यह जानके कि द्रौपदीने अर्ज्जुनसे विवाह किया है! अश्वत्थामा, शकुनि, कर्ण, कृप और भाइयोंके साथ उदास होकर लौटे। आगे दुःशासन लज्जित मुखसे मन्द मन्द वचनोंमें उनसे बोले कि महाराज! धनञ्जय ब्राह्मणके वेशमें न होता तो, कभी द्रौपदीको लाभ नहीं कर सकता; लोग उसको धनञ्जय कहके ठीक समझ नहीं सके थे, इसी लिये उसको चमा कर दी थी। भैया! पाण्डवोंके नष्ट करनेको हमारे बड़ा प्रयत्न करने परभी वे जीते जागते हैं अतएव हमारी पुरुषतामें धिक्कार है; सो दैवहीको परम साधन कहना चाहिये; पुरुषका किया यत्न कोई कार्य्य नहीं दे सकता। दुःशासन आदि सब ऐसी बातें करते और पुरोचनको निन्दते हुए दीन और दुःखी चित्तसे हास्तिनापुरमें आन पहुंचे; और पाण्डवोंको अति बलवन्त, अग्निसे बचे और द्रुपदसे मिले देखके धृष्टद्युम्न, शिखण्डी तथा सर्व्व प्रकारसे युद्धमें दच द्रुपदके दूसरे पुत्रोंको स्मरण कर भयभीत हुए और उनका उत्साह जाता रहा।

हे मनुष्यनाथ! यह सुनके कि, पाण्डवोंने द्रौपदीको लाभ किया और धृतराष्ट्रके पुत्रगण लज्जित और टूटे फूटे अहंकारके साथ लौटे हैं, विदुर प्रसन्नमनसे धृतराष्ट्रसे बोले, कि हमारे सौभाग्यसे कौरवगण बढ़ रहे हैं। राजा विचित्रवीर्य्यके पुत्र विदुरका यह वचन सुन करके अचश्भेमें होके और बड़े प्रसन्न होकर कहने लगे कि हमारा कैसा सौभाग्य है! कैसा सौभाग्य है! हे भारत! प्रज्ञानेत्र भूपाल विदुरसे संचेपमें कहे हुए कौरव शब्दको सुन कर समझ नहीं सके, कि पाण्डव जीवित रहकर बढ़ रहे हैं। उन्होंने समझा, कि द्रुपदपुत्रीने उनके ज्येष्ठपुत्र दुर्य्योधनसे विवाह कर लिया; अतएव उन्होंने उसी चण पुत्रवधू द्रौपदीको भांति भांतिके गहने और उसे लिवा लानेके लिये पुत्र दुर्य्योधनको आज्ञा की। अनन्तर विदुरने उनको विशेषरूपसे कहा, कि सब पाण्डव कुशलसे हैं, द्रौपदीने उन्हीं वीरोंसे विवाह किया है; द्रुपदने उनका बड़ा सम्मान किया है; और उस स्वयम्बर-स्थलहीमें उनके सम्बन्धी; बन्धु आदि दूसरे बहुतेरे बलवन्त उनसे जा मिले हैं। धृतराष्ट्र बोले कि हे चत्र! वे जिस प्रकार पाण्डुके स्नेहपात्र हैं, उससेभी मेरे अधिक स्नेहके पात्र हैं। इससे उन पर मेरी औरभी प्रसन्नता हो रही है, कि वे वीरपुरुष कुशलसे रह गये, मित्रोंसे मिले और उनके सम्बन्धी दूसरे महाबली बहुतेरे उनसे जा मिले। विशेष कर ऐसे कौन राजा होंगे, जिनकी चाहे श्री न रहे अथवा श्री बनी रहे बन्धुसहित

राजा द्रुपदको मित्र पाकर कुशलयुक्त होनेकी इच्छा न रखते होंगे।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि भूपालकी यह बात सुनकर विदुरने उत्तर दिया, कि महाराज! आपकी सैकड़ों वर्षों तक सदा ऐसीही बुद्धि बनी रहे। हे नरनाथ! अनन्तर दुर्य्योधन और राधापुत्र धृतराष्ट्रके निकट आकर बोले, कि हम आपसे विदुरके सामने कोई दोष दर्शा नहीं सके थे। अब एकान्त पाकर कहते हैं, सुनिये। आपकी यह कैसी इच्छा हुई? पिता! क्या आप शत्रुओंकी बढ़तीसे अपनी बढ़ती समझ रहे हैं? हे नरवर! क्या आप विदुरसे विपक्षियोंकी प्रशंसा कर रहे थे? हे अनघ! जहां जैसा काम करना चाहिये, आप उसका उलटा करते हैं! हे पिता! अब सदा यह चेष्टा करनी चाहिये कि उनका बल घटे; हालमें जैसा काल आ पड़ा है, अब ऐसी युक्ति करनी चाहिये कि, वे लोग हमको और हमारे पुत्र, बन्धु तथा सेनाओंको नष्ट न कर सकें।

विदुरागमन पर्व्वमें दोसौ एक अध्याय समाप्त।

धृतराष्ट्र बोले, कि तुम्हारी जैसी इच्छा है, मैं भी वही किया चाहता हूं; पर विदुरसे कोई अभिप्राय प्रगट नहीं करना चाहता, इस लिये कि विदुर इशारेसे भी मेरा अभिप्राय समझ न पावे,—मैं पाण्डवोंका गुण गा रहा था। हे सुयोधन! अब तुम्हारी समझमें जो करना उचित निश्चय हुआ है; और हे राधानन्दन! तुमने भी जैसा समझा है, वह सब कहनेका यही समय है, सो इसकालमें कह दो।

दुर्य्योधन बोले, कि अब हमारे विश्वासी और ब्राह्मणगण बहुत छिप करके जायं; कुन्तीपुत्र और माद्रीपुत्रोंमें आपसका बिगाड़ कर देवें, अथवा राजा द्रुपद और उनके पुत्र तथा सम्पूर्ण मन्त्रियोंको बहुत धन देकर लुभावें कि, वे कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरको त्याग देवें। अथवा हमारे भेजे हुए लोगोंमें हरेक अलग अलग पाण्डवोंके इस स्थानमें वसनेका दोष दर्शा कर उन्हें स्वसुरके यहां बसनेको लुभावें, ऐसा करनेसेही पाण्डवोंके वहां रहनेकी इच्छा होगी। अथवा कुछ उपायोंके जानकार दक्ष जन ऐसा करें कि पाण्डवोंमें बिगाड़ हो और उनमें आपसका प्रेम न बना रहे। अथवा कृष्णाको ऐसा उभाड़ें कि, उसका पतियोंसे मन टल जाय। उसके बहुत पति हैं, सो यह करना कठिन नहीं होगा। अथवा ऐसा करें कि, पाण्डवों पर द्रौपदीका प्रेम न रहे; ऐसा होनेसे द्रौपदी उन पर चिढ़ जायगी। अथवा अच्छे उपाय निकालनेवाले वहां जाके छिप कर ऐसा कोई उपाय करें, कि भीमकी मृत्यु हो, क्योंकि उनमें भीमही बड़ा बली है; उसकेही भरोसे युधिष्ठिर हमको नहीं मानता था। भीमसेन बड़ा बली और पाण्डवोंका प्रधान अवलम्ब है। हे महाराज। उनका एकही आसरारूपी उस भीमके मारे जानेपर वे तेज और उत्साहसे हाथ धोके फिर राज्य पानेका प्रयत्न नहीं करेंगे। युद्धस्थलमें वृकोदर पृष्ठरक्षक रहे, तो अर्ज्जुन पर कोई भी जय नहीं पा सकता; पर युद्धस्थलमें वृकोदरके न रहनेसे अर्ज्जुन कर्णका चौथा अंश भी नहीं हो सकता। भीमसेनके बिना दुर्ब्बल पाण्डव अपनेको बल-वर्जित और हमको अधिक बलवन्त जानके राज्य पानेका प्रयत्न नहीं करेंगे। पर यदि वे यहां आकर हमारे अधीन और आज्ञानुसारी होवें, तो हम उनपर नीतिशास्त्रके अनुसार दण्ड देनेको प्रवृत्त होंगे। अथवा परम रूपवती प्यारी युवतीसे उनको लुभाना चाहिये; ऐसा करनेसे द्रौपदीका प्रेम उनसे टल जायगा। हे राधानन्दन! अथवा उनको लिवा लानेके

लिये दूत भेजा जाय, उनके एकत्र मिलकर आनेसे पहिले किसो उपायसे वे नष्ट किये जा सकेंगे। हे पिता! इन सब उपायोंमेंसे आपको समझमें जो दोषरहित जान पड़े, वही करें; काल बीत रहा है, अधिक विलम्ब करना उचित नहीं है। जब तक पृथ्वीनाथ द्रुपद पर उनका विश्वास न जमे, उसके पहिले योग्य उपाय करनेसे उनसे बढ़ चढ़ सकेंगे; राजा द्रुपद पर उनका विश्वास होजानेसे फिर कोई उपाय न चलेगा। हे पिता! उनको सतानेके लिये मैंने यह उपाय निश्चय किये। यह भले हैं वा बुरे, आप समझ लें। कर्ण! तुम क्या समझते हो?

विदुरागमन पर्व्वमें दोसौ दूसरा अध्याय समाप्त।

कर्ण बोले, कि हे दुर्य्योधन! तुमने जो सोचा है, वह सुयुक्ति समझ नहीं पड़ती। हे कुरुनन्दन! इसमेंसे कोई उपाय पाण्डवोंके विरुद्ध न चलेगा। हे वीर! तुमने पहिले सूक्ष्म उपायोंसे उनको नष्ट करनेका प्रयत्न किया था, पर उससे मनोरथ सफल नहीं हो सका था। उस समय वे अल्प अवस्थावाले, निःसहाय और तुम्हारे निकट थे, तिस परभी उनकी कोई हानि नहीं कर सके थे। हे पुरुषार्थशील! अब वे दूसरे देशमें स्थित, सहायसहित और सब प्रकारसे बढ़ गये हैं, सो यह मुझको निश्चय जान पड़ता है, कि इस समय इन उपायोंसे उनको कोई हानि नहीं की जा सकेगी। और लुभानेसे भी वे न भूलेंगे क्योंकि उनमें दैवीशक्ति भरी है, और वे बाप दादोंके पदके चाहनेवाले हैं; उन भाइयोंमें आपसका बिगाड़ कर देनाभी शक्तिके बाहर है; क्योंकि जो लोग पांच भाई एक स्त्रीसे मिलते हैं, उनमें कभी आपसका विरुद्ध भाव होना सम्भव नहीं है; किसी उपायसे कृष्णाके चित्तको पाण्डवोंसे टालना भी कठिन है; क्योंकि कृष्णाने पाण्डवोंसे उनकी कड़ी दीन दशाके दिनोंमें विवाह किया था; अब तो वे भले अच्छे गहनोंसे सजे हैं, विशेष स्त्रियोंके लिये बहुत पतियोंका मिलना प्रार्थनाकी बात है, कृष्णाको वह मिले हैं; सो पतियोंसे उसका मन टालना असम्भव है, राजा पाञ्चाल सुपथमें चलते हैं, वह धनके लोभी नहीं हैं; सो इसमें सन्देह नहीं, कि उनको सब राज्य देभी दो, तो वह पाण्डवोंको नहीं छोड़ेंगे। उन राजाके पुत्रगण गुणवन्त हैं, विशेष पाण्डवोंके वे प्रेमी बने हैं, सो लुभा करके वे वशमें नहीं लाये जा सकेंगे; सो मुझको जान पड़ता है, कि उक्त प्रकारके किसो उपायसे पाण्डवोंका कुछ नहीं होनेवाला है। हे पुरुषश्रेष्ठ महाराज! इस समय हमारा यही कर्त्तव्य है, कि जबतक पाण्डव जड़से न उखड़ जायं, तबतक उनको मारते रहें। हे पिता! इस विषयमें आप सम्मत होवें। जबतक हमारा पक्ष महान और पाण्डवका पक्ष लघु है, तबतक युद्ध प्रारम्भ कर उनको मारना आरम्भ करें। इसका अन्य विचार करनेका प्रयोजन नहीं है। हे महाराज गान्धारीनन्दन! जबतक उनके मित्र और बन्धु तथा बहुत वाहन न एकत्रित हों, उसके पहिले ही उन पर विक्रम प्रगट करके चढ़ जाओ। जबतक राजा पाञ्चाल अति वीर्य्यवन्त पुत्रोंके साथ लड़ाईका उद्योग न कर सकें, उस कालसे पहिलेही विक्रम दिखाओ। और जबतक श्रीकृष्ण पाण्डवोंके राज्यके लिये यादवी सेना लेकर राजा पाञ्चालके भवनमें न आवें, तिससे पहिलेही विक्रम प्रगट करो। कृष्ण पाण्डवोंके उपकारके लिये भांति भांतिके भोग धन और राज्यको छोड़ सकते हैं। हे भूनाथ! महात्मा भरत विक्रमहीसे भूपोंके अधीश बने थे और इन्द्रने

अपने विक्रमहीके द्वारा तीनों लोक जीत लिये थे। हे राजेन्द्र! क्षत्रियोंको विक्रम दिखनाही प्रशंसायोग्य है। विक्रमही शूरोंका धर्म्म है; अतएव हम बड़ी भारी चतुरङ्गिणी सेनासे बिना विलम्ब राजा द्रुपदको मंथन करके पाण्डवोंको यहां लेते आवें। साम, दान वा भेद द्वारा पाण्डव नष्ट नहीं किये जा सकेंगे; सो विक्रमहीसे उनका भले प्रकार नाश करो; विक्रम दिखाके उनको हराकर इस सम्पूर्ण धरती पर राज्य करते रहो। हे जनाधिप! मैं इसके बिना कार्य्य पूरा करनेका कोई दूसरा उपाय नहीं देखता।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि प्रतापी धृतराष्ट्र राधानन्दनकी बात सुनके उनकी प्रशंसा कर बोले, कि हे सूतपुत्र! तुम बड़े बुद्धिमान और अस्त्रविद्यामें पण्डित हो; सो ऐसा विक्रम-युक्त वचन बोलना तुम्हारे योग्यही हुआ है! पर भीष्म, द्रोण, विदुर और तुम दोनों फिर युक्ति करके यह निश्चय करो, कि जिससे हमारा मङ्गल होवे। महाराज! अनन्तर यशोवन्त धृतराष्ट्र भीष्मादि सम्पूर्ण मन्त्रियोंको बुलवाकर युक्ति करने लगे।

विदुरागमन पर्व्वमें दोसौ तीसरा अध्याय समाप्त।

भीष्मजी बोले, कि हे धृतराष्ट्र! पाण्डवोंके साथ युद्ध करना किसी प्रकार मेरा अभीष्ट नहीं है; क्योंकि मेरे लिये जैसे तुम पाण्डुभी तैसेही थे; और गान्धारीके पुत्र जिस प्रकार स्नेहके पात्र हैं, कुन्तीके पुत्रभी तैसेही हैं। मुझको जिसप्रकार उनकी रक्षा करनी है, तुम्हारीभी वैसेही करनी है। हे पृथ्वी-पाल! वे मेरे जैसे आत्मजन हैं, राजा दुर्य्योधन आदि सब कौरव भी तैसेही आत्मजन हैं, इसमें कोई शंका नहीं है। ऐसी दशामें क्योंकर उनसे लड़नेकी मेरी सम्मति हो सकती है? हे महाराज! उन वीरोंसे सन्धि करके उनको आधा राज्य दे दो; क्योंकि यह उन कुरुसत्तमोंकाभी राज्य है। बेटा दुर्य्योधन! तुम जिस प्रकार इसे अपना पैत्रिक राज्य समझ रहे हो, तैसेही पाण्डव भी अपना पैत्रिक राज्य जानते हैं। यदि वे यशोवन्त पाण्डव राज्यके अधिकारी न हों, तो तुम अथवा कोई दूसरा भरतवंशी क्योंकर राज्यका अधिकारी हो सकता है? हे भरतश्रेष्ठ! यदि तुमने ऐसा समझा है, कि "मैं धर्म्मानुसार राज्यका अधिकारी बना हूं" तो पहिले धर्म्मा-नुसार उन्हीका अधिकार हुआ है; सो मेरा मत यह है, कि प्रसन्नतासे उनको आधाराज्य दो। हे पुरुषव्याघ्र! ऐसा करनेसे सबोंका मङ्गल होगा! यदि इसकी विरुद्धता करो, तो हममेंसे किसीका मङ्गल नहीं होगा; और इसमें सन्देह नहीं, कि तुम्हारी बड़ी निन्दा फैलेगी। हे गान्धारी-नन्दन! तुम कीर्त्तिकी रक्षा करनेका प्रयत्न करो। इस भूमण्डलमें कीर्त्तिही परम बल है, और कीर्त्ति न रखने वालेका जीवनही व्यर्थ है। हे कौरव! जब-तक किसीकी कीर्त्ति नहीं बिगड़ती, उसके परलोकमें सिधारने परभी तबतक वह जीवित रहता है; और कीर्त्ति नष्ट होने पर जीवन रहनेसे भी वह मरा कहा जाता है। हे महाभुज। तुम कुरुकुलके योग्य धर्म्ममें चित्त लगाओ; और अपने पूर्व्व पुरुषोंकी भांति कार्य्य करो। हमारे सौभाग्यहीसे पाण्डव और कुन्ती जीवित हैं। यह हमाराही सौभाग्य है, कि पापात्मा पुरोचनका मनो-रथ सफल नहीं हुआ और वह यमराजके घरको जा पहुंचा है। हे गान्धारीकुमार! मैंने जब सुना, कि कुन्तीभोजकी पुत्रीके पुत्र जल मरे हैं, तबसे मैं इस धरती पर किसीसे भले प्रकार भेंट नहीं कर सकता हूं। हे पुरुषव्याघ्र! लोग कुन्तीकी उस दशामें गिरी

सुनके जिस प्रकार तुमको दोषी जानते हैं, पुरोचनको वैसा दोषी नहीं समझते। हे महाराज! पाण्डवोंका जीना और उनको फिर देखना तुमको केवल अपना कलङ्क नष्ट होनेका हेतु करके जानना चाहिये। हे कुरु-नन्दन! उन सब वीरोंके जीवित रहनेसे स्वयं महेन्द्रभी उनके पैतृक राज्यको लेनेको सामर्थ नहीं रखते; विशेष पाण्डव सब एकमत और धर्म्म पथसे चलने-वाले होने परभी तुल्य अधि-कारके राज्यसे अधर्म्म पूर्व्वक हटाये जाते हैं, अतएव यदि तुम तो धर्म्मरक्षा करनी उचित हो, यदि तुमको मेरा प्रिय-कार्य्य करना हो और यदि तुम अपनी भलाई चाहो, तो पाण्ड-वोंको आधा राज्य दो।

विदुरागमन पर्व्वमें दो सो चौथा अध्याय समाप्त।

द्रोण बोले, कि हे महाराज धृतराष्ट्र! हमने सुना है, मन्त्रियोंके युक्तिके लिये आ पहुंचने पर धर्म्म, अर्थ और यश देनेवाला वचन कहनाही उनका कर्त्तव्य है। ऐ बेटा! महात्मा भीष्मसे मैं सहमत हूं। पाण्डवोंको अंश देना उचित है, ऐसा कहनेहोसे सनातन धर्म्मकी रक्षा होगी। हे भारत! अब प्यारी बोली-बोलनेवाले किसी पुरुषको आज्ञा करें, कि पाण्डवोंके लिये बहुत धन लेकर द्रुपदके यहां जाय। वह भेजा हुआ पुरुष वर और वधूके योग्य रत्न और अलङ्कारभी लेकर द्रुपद के सम्मुख जाकर कहे, कि हे महाराज! आपके साथ राजा धृतराष्ट्र और दुर्य्योधनको पहुनाई होनेसे वे बहुत कृतार्थ हुए और अपनेको श्रीमन्त समझते हैं। हे भारत! वह दूत राजा द्रुपद और धृष्टद्युम्नसे वार वार ऐसा कहे, कि आपके साथ विवाहसे जो पाहुनाई बनी वह बहुत योग्य और कौरवोंके मनभावन हुई है। हे महाराज! अनन्तर वह दूत पाण्डवोंको बार बार समझाने को बातें कहके द्रौपदीको शुद्ध सुवर्णके अनेक अलङ्कार देके राजा पाञ्चालके सब पुत्रों, पाण्डवों और कुन्तीके योग्य चोर गहने देवे। हे भरतश्रेष्ठ! इस प्रकार द्रुपद और पाण्डवोंका समझा कर अन्तमें उनका जानेकी बात कहे। पाण्डवोंके द्रुपदसे आनेको आज्ञा पाने पर दुःशासन और विकर्ण अच्छी सेनादिके साथ उनको लिवा लानेको जावें। आप पुरुषश्रेष्ठ पाण्डवोंके राजधानीमें आ जाने पर आप उनको सादर पूर्व्वक स्वागत करना। अनन्तर वे प्रजाओंके मनसे पैतृक पद पर आरूढ़ होवें। महाराज! मेरा और भीष्मका मत यह है, कि आपके पुत्ररूपी उन पाण्डवोंसे ऐसा व्यवहारही आपको करना चाहिये।

कर्ण बोले, कि भीष्म और द्रोण यह दोनों सब कार्य्योंके बिगाड़नेवाले हैं, और आपहीके दिये धन और मानसे बढ़े हैं, इससे और क्या आश्चर्य्य होगा, कि यह आपको आपके मङ्ग-लका परामर्श नहीं देते? महाराज! जो जोमें मित्रका द्रोह रखके शत्रुके हितको बुद्धिसे युक्त कहते हैं, वे क्योंकर मङ्गलका निश्चय कर सकते हैं? पर ऐसा नहीं है, कि विपद आ पड़नेसे साधु वा असाधु मित्रही मङ्गल वा अमङ्गलके कारण बनते हैं, क्योंकि सुख और दुःखको जड़ भाग्यही है, देखें, विज्ञ, अविज्ञ बाल वृद्ध, सहाय वा विना सहाय, सब प्रकारके लोग सब ठौरमें सब वस्तु पाजाते हैं; सुना है, कि पहिले राजगृह नामक राजधानीमें मगधदेशो राजाओंके अधीश अम्बुवीच नामक एक पृथ्वीनाथ थे। राजकार्य्यमें उनको कुछभी दृष्टि नहीं थी; वह इतनाही काम करते थे, कि श्वास खैंचते और छोड़ते थे; इससे उनका सम्पूर्ण राजकार्य्य मन्त्रियोंके हाथमें गया। महाकार्णीक नामक उनका

मन्त्री पूरा अधिकार पाकर वा अपनेको बलयुक्त जानकर राजाका अनादर करने लगा। उस मूर्ख मन्त्रीने राजाके भोगनेकी स्त्री, रत्न और धन सब ऐश्वर्य्य आप ले लिया। आगे यह सब लेकर उस लोभीका लोभ बढ़ा; वह राजाका सब कुछ लेकरके भी चुप नहीं हुआ, राज्य तक हरना चाहा, पर हमने सुना है, कि वह मन्त्री अपनी पूरी सामर्थसे चेष्टा करने परभी उस कार्य्यरहित श्वास मात्र लेते हुए राजाका राज्य नहीं हर सका। भाग्यके बिना कौन सा पुरुषार्थ था, कि जिससे राज्यको रक्षा हुई? हे महाराज! यदि विधिने यह राज्य आपके लिये निश्चय कर दिया हो, तो आपके सब लोगोंके परास्त होने पर भी यह आपहीके हाथमें बना रहेगा। यदि भाग्यमें न रहे, तो आप चेष्टा भी करें, तो बचा नहीं सकेंगे। हे महाराज! आप पण्डित हैं, मन्त्रियोंमें कौन साधु हैं और कौन असाधु हैं आपही विचार लेवें। और दुष्ट अदुष्ट जनोंके वचनका कार्य्य समझें। द्रोण बोले, कि कर्ण! मैं समझ गया कि तुम्हारा हृदय दोषसे भरे रहनेहीके कारण तुम ऐसा कहते हो, पाण्डवों पर तुम्हारा द्वेष रहनेहीके हेतु तुमने हम पर दोष लगाया। पर मैंने जो कहा वह कुलबढ़ानेवाला और परम हितदेनेहारा है; यदि वह तुम्हारी समझमें बुरा जान पड़े, तो जिससे परम हित होना है वही कहो। वास्तवमें मुझको निश्चय जान पड़ता है, कि यदि मेरे कहे परम हित वचनकी विरुद्धता की जावे, तो बिना विलम्ब कौरव गण लय पा जायंगे।

विदुरागमन पर्व्वमें दो सौ पांच अध्याय समाप्त।

विदुर बोले, कि हे महाराज! आपके स्वु लोग निःसन्देह आपको हितवचन कह रहे हैं, पर आपके ध्यानके बिना उसकी रक्षा नहीं होती है, हे महाराज! कुरुश्रेष्ठ शान्तनुपुत्र भीष्म जो प्रिय और हित वचन बोले, आप उस पर ध्यान नहीं देते हैं। आचार्य्य द्रोणने अनेक हित बात कही, राधापुत्र कर्णको समझमें वे आपके हितकारी नहीं हैं। हे महाराज! मैं सोचकर नहीं समझ सकता, कि भीष्म और द्रोणसे अधिक ज्ञानी और आपका परम मित्र कौन विद्यमान है; वे दोनों बुद्धि विद्या और अवस्थामें वृद्ध हैं। हे महाराज! आपपर उनका जैसा भाव है, पाण्डवों परभी वैसाही है। हे भारतराज! इसमें सन्देह नहीं, कि यह लोग धर्म्म और सत्यके विषयमें दशरथके पुत्र रामचन्द्र और गयासुरसे भी श्रेष्ठ हैं। यह दोखही नहीं पड़ता, कि इन्होंने पहिलेभी कभी आपका कोई अहितवाक्य कहा वा कोई हानि की हो। हे पृथ्वीनाथ! आपने तो इन दोनों पुरुषवरोंका कोई अनिष्ट नहीं किया, कि जिससे यह आपके लिये कल्याणदायी परामर्श न दें। विशेष यह दोनों पुरुषसिंह सत्यशील और ज्ञानी हैं; सो हे नरनाथ! यह आपके विषयमें कभी कुछ कुटिल वचन नहीं बोलेंगे। हे कुरुनन्दन! मेरी समझमें यह निश्चय किया हुआ है, कि यह दो धर्म्मज्ञ पुरुष धनके लोभसे कभी पक्षपातकी बात नहीं कहेंगे; सो इन्होंने जो कहा है, मेरी समझमें वह आपके लिये मंगलदायी है। हे महाराज! आपके लिये दुर्य्योधनादि पुत्र जैसे स्नेहपात्र हैं, सन्देह नहीं, कि पाण्डव भी वैसेही स्नेह-पात्र हैं। जो सब मन्त्री उस विषयको न जान कर उन पाण्डवोंके अहितका परामर्श देते हैं, वे आपकी भलाई पर विशेष दृष्टि नहीं देते। हे भूप! यद्यपि आपके हृदयसे अपने पुत्रों पर विशेषता भी रहे; तौभी जो लोग उस हृदयस्थित भावके अनुसार बोलेंगे,

इसमें सन्देह नहीं: कि वे आपका अनिष्ट करेंगे। इसलिये यह दो महातेजस्वी महात्माओंने उस प्रकार अनुचित परामर्श नहीं कहा है, पर आपके चित्तका भाव पक्षपातरहित न होनेहीके हेतु उसे आप समझ नहीं सकते हैं। हे पुरुषव्याघ्र! इन दोनोंने आपसे कहा है, कि पाण्डव जीते नहीं जा सकेंगे, वह झूठ नहीं है; सो हमारी यही प्रार्थना है, कि पाण्डवोंसे आपकी भलाई होवे। हे नरनाथ! क्या देवराजभी युद्धस्थलमें श्रीमान् सव्यसाची पाण्डव धनञ्जयको जय कर सकते हैं? रणभूमिमें दश सहस्र गजोंके समान बली महान् महाभुज भीमसेनको क्या देवगण भी जय कर सकते हैं? रणस्थलमें क्या कोई भी जय चाहने वाले युद्धदक्ष यमवत यमज नकुल सहदेवका पराक्रम सह सकता है? जिस पुरुषमें धीरज, दया; क्षमा, सत्य और पराक्रम यह सब गुण सदा विराजमान हैं, क्या वह पाण्डवोंके ज्येष्ठ युधिष्ठिर जीते जानेके योग्य हैं? बिशेष राजा द्रुपद जिनके ससुर, द्रुपदके पुत्र वीर धृष्टद्युम्नादि वीर भाई जिनके साले, बलराम और सात्यकि जिनके मन्त्री हैं, रणस्थलमें क्या कुछभी उनसे जीतेजानेके अयोग्य है? अतएव, हे भारत! रणस्थलमें उनकी अजेयता और धर्म्मानुसार राज्याधिकारिताकी बातोंको ध्यानमें लाकर पहिले ही उनसे योग्य व्यवहार करें। हे पृथ्वीपाल! पुरोचनका किया जो बड़े कुयशका धब्बा आप पर लग गया है, आप आज पाण्डवों पर कृपा दर्शाकर उसका धोडालें; आगे उन पर इस कृपाके दर्शानेसे हमारे वंशमें सबके जीवनकी रक्षा, परम मङ्गल और क्षत्रियकुलकी वृद्धि होगी। हे भूनाथ! पाञ्चाल देशीय द्रुपद बहुत बड़े राजा हैं, पहिले उनसे हमारी शत्रुता उभड़ी थी, पर उनको मिलालेनेसे हमारा पक्ष बहुत बढ़ेगा। हे नरनाथ! यह भी समझनेयोग्य है, कि दशार्ह देशीयगण बली और बहुत हैं; कृष्ण जिस ओर रहेंगे, वे भी उसी ओर रहेंगे; सो जिस पक्षमें कृष्ण, उसी पक्षकी जय होगी। जो कार्य्य सामके द्वारा भले प्रकार सिद्ध हो सकता है, बिना दैवी विड़म्बना कौन उसको युद्धद्वारा सिद्ध करना चाहता होगा? हे महाराज! नगर और जनपदवासी सब जन पाण्डवोंको जीवित सुनके उनको भेंटके लिये प्रसन्न हुए हैं; सो अवश्यही उनका प्रिय करना चाहिये। दुर्य्योधन, कर्ण और सुबलपुत्र शकुनि, यह अधार्म्मिक कुसमझ और बालक हैं, इनको बात किसी प्रकार सुननेके योग्य नहीं है। हे गुणोंसे सजे भूप! मैंने पहिले भी आपसे कहा था, कि दुर्य्योधनकी दोषसे यह सब प्रजा नष्ट होगी।

विदुरागमन पर्व्वमें दो सौ छठवां अध्याय समाप्त।

धृतराष्ट्र बोले, कि पण्डित शान्तनुनन्दन और भगवान ऋषि द्रोणने जो कहा तथा तुम जो कहते हो, वह परमहित और सब सत्य है। वे सब महारथी वीर कुन्तीनन्दन जिस प्रकार पाण्डके पुत्र हैं, वैसेही धर्म्मानुसार मेरे भी पुत्र हैं; और मेरेभी पुत्र जिस प्रकार इस राज्यके अधिकारी हैं, इसमें सन्देह नहीं, कि पाण्डुपुत्र भी वैसेही अधिकारी हैं। हे क्षत्त! जाओ, मातासहित पाण्डव और देवीरूपिणी कृष्णाको सत्कार करके लिवा लाओ। मेरे सौभाग्यहीसे पाण्डव जीवित हैं, मेरे सौभाग्यहीसे कुन्तीका कोई बड़ा अहित नहीं हुआ, महारथी पाण्डवोंका द्रौपदी लाभ करना भी मेरे सौभाग्यहीका फल है। हे महा प्रकाश! बड़े भाग्यहीसे हम सब बढ़ रहे हैं; सौभाग्यहीसे पुरोचन नष्ट हुआ; भाग्यहीके वश हमारा परम दुःख दूर हुआ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भारत! अनन्तर विदुर धृतराष्ट्रकी आज्ञासे राजा यज्ञसेन, द्रौपदी और पाण्डवोंके लिये अनेक धन रत्न लेकर उनके निकट गये। आगे उन सर्व्व शास्त्रोंमें पण्डित धर्म्मके जानकार यज्ञसेनके पास पहुंचकर यथायोग्य नमस्कार आलिङ्गन आदि किया। राजा यज्ञसेनने धर्म्मानुसार उठकर विदुरको सम्मानित किया। अनन्तर वे दोनों विधिपूर्व्वक आपसमें कुशल-क्षेम पूछने पाछने लगे। हे भारत! अति बुद्धिमान विदुरने उस स्थानमें पाण्डव और वासुदेवको देखकर स्नेहसे हृदय गलाके गलेसे लगाकर स्वास्थ्यकी बात पूछी। अनन्तर वह उनसे क्रमके अनुसार सत्कृत होकर धृतराष्ट्रकी आज्ञासे स्नेहपूर्व्वक बार बार कुशल पूछने लगे। हे नरनाथ! आगे उन्होंने पाण्डव, कुन्ती, द्रौपदी और द्रुपदके पुत्रोंको यथोचित धृतराष्ट्रका भेजा अनेक धन और रत्न दिया; और वह अमितचित्त विनयसे नम्र होके पाण्डव और केशवके सम्मुख द्रुपदको प्रेमभरी बातोंमें कहने लगे, कि हे महाराज! आप मन्त्री और पुत्रोंके साथ मेरा वचन सुनें। राजा धृतराष्ट्रने मन्त्री पुत्र और मित्रोंके साथ प्रसन्न होकर बार बार आपका कुशल पूछा है। हे नरनाथ! आपसे यह सम्बन्ध होनेसे वह आप पर बहुत प्रसन्न हुए हैं। बड़े ज्ञानी शान्तनुनन्दन भीष्मने सम्पूर्ण कौरवोंके सहित सब प्रकारसे आपका स्वास्थ्य पूछा है; और आपके प्रिय सखा बड़े ज्ञानी भारद्वाज द्रोणाजीने आपसे संयोग पाकर उद्देशमें आलिङ्गन करके कुशल प्रश्न किया है। हे महाराज पाञ्चाल! धृतराष्ट्र और सब कौरव आपसे सम्बन्ध लाभकर अपनेको कृतार्थ मान रहे हैं। हे यज्ञसेन! अधिक क्या कहें, आपसे वैवाहिक सम्बन्ध प्राप्त करनेसे उनको जितनी प्रीति हुई, राज्य मिलनेसे उतनी नहीं होती; आप यह समझकर पाण्डवोंको वहां भेज देवें! कौरव लोग पाण्डवोंको देखनेके लिये बहुत व्यग्र हुए हैं। यह नरश्रेष्ठ पाण्डव और पृथा बहुत काल तक निरुद्देश थे, सो नगर देखनेको बहुत घबराये होंगे, कौरवों की स्त्रियां और हमारे नगर तथा जनपदवासी सब लोग पाञ्चाली कृष्णाके देखनेके लिये बाट देख रहे हैं; अतएव मेरा मत यह है, कि आप पाण्डवोंको पत्नीके साथ वहां जानेकी आज्ञा दें, विलम्ब न करें। हे महाराज! महात्मा पाण्डवोंको आपसे वहां जानेकी आज्ञा मिलेगी, तो मैं शीघ्र जानेवाले दूत द्वारा धृतराष्ट्रको यह समाचार दूंगा। अनन्तर पाण्डव और कुन्ती कृष्णाको साथ लेके वहां जायंगी।

दो सौ सात अध्यायमें विदुरागमन पर्व्व समाप्त।

राजा द्रुपद बोले, कि हे महाप्राज्ञ विदुर! इसकालमें आपने जो कहा, वही ठीक है। हे प्रभो! इस वैवाहिक सम्बन्धसे मैं भी बड़ा प्रसन्न हूं। अब इन महात्माओंका घर जानाही सब प्रकारसे योग्य है; पर स्वयं वह कहना मेरे लिये उचित नहीं है, यदि कुन्ती-पुत्र युधिष्ठिर, भीम, अर्ज्जुन और पुरुषश्रेष्ठ नकुल तथा सहदेव, यहांसे जाना चाहें और धर्म्मज्ञ राम तथा कृष्ण आज्ञा दें, तो ले जाइये; क्योंकि यह पुरुषव्याघ्र राम और कृष्ण सदा इनका प्रिय करने और हित साधनेमें नियुक्त हैं। युधिष्ठिर बोले, कि महाराज! अब मैं भाइयोंके साथ आपके अधीन हूं, आप प्रसन्न होके हमको जो कहेंगे, वही करेंगे।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर वासुदेवजीने कहा, कि मेरी समझमें जाना उचित है, पर सर्व्वधर्म्मोंके जानकार राजा द्रुपदका

जो विचार हो, वही उचित है। द्रुपद बोले कि इस कालके अनुसार महाभुज पुरुषोत्तम वीर दशार्हने जैसा विचारा, मेरी समभमें वही ठीक है। अब महाभाग पाण्डव जैसे मेरे स्नेहके पात्र हैं, वैसेही इसमें सन्देह नहीं है, कि पुरुषश्रेष्ठ वासुदेवके भी स्नेहके पात्र हैं। वह जैसे इनकी मङ्गलचिन्ता करते हैं, कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरसे भी वैसी बन नहीं पड़ती।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे पृथ्वीनाथ! अनन्तर पाण्डव, कृष्ण और विदुर महात्मा द्रुपदकी आज्ञा पाके परम सुखसे विहार करते हुए यशस्विनी कुन्ती और द्रौपदीके साथ हस्तिनापुरमें जाने लगे। हे भारत! जननाथ धृतराष्ट्रने वीर पाण्डवोंके शुभागमनका समाचार सुनके, उनको लिवा लानेके लिये बड़े चापधारी विकर्ण, चित्रसेन धनुषधरनेवालोंमें श्रेष्ठ द्रोण और गौतम कृप, इन सब कौरव पक्षके लोगोंको भेजा। महाबली वीर पाण्डव उनसे घेरे जाके सोहते हुए धीरे धीरे हस्तिनापुरमें गये। तब वह नगर नगरवालोंके देखनेकी बड़ी चाहकी हड़बड़ीसे मानो फटने लगा। पुरुषव्याघ्र पाण्डवोंको देखके पुरवासियोंके शोक दुःख दूर होगये। प्रिय चाहनेवाले पुरवासियोंके हृदयप्यारे पाण्डव उनसे कहे जाते हुए इस प्रकारके भांति भांतिके वचन सुनने लगे, कि यह वही धर्मज्ञ पुरुषव्याघ्र फिर आ रहे हैं, कि जो अपने परिवारोंकी भांति हमारी रक्षा करते थे। आज मानो सब जनोंके प्यारे महाराज पाण्डुही हमारे प्रिय चाहनेवाले बनके, बनसे लौट आरहे हैं। इससे बढ़कर हमारा कौनसा प्रिय कार्य्य होगा, कि आज वीर कुन्तिपुत्रगण हमारे नगरमें फिर आरहे हैं। यदि हमने दान वा हवन किया हो अथवा यदि हमारा बटोरा हुआ तप हो, तो उसके बलसे पाण्डव लोग इस नगरमें सैकड़ों वर्ष बसें। अनन्तर पाण्डवोंने धृतराष्ट्र, महात्मा भीष्म और दूसरे गुरुजनोंके पांव छुए। आगे नगरवालोंका कुशल पूछके वार्त्तालाप कर धृतराष्ट्रकी आज्ञासे राजमन्दिरमें बसने लगे। महात्मा महाबली पाण्डवोंके कुछकाल विश्राम करनेके पीछे राजा धृतराष्ट्र और शान्तनुपुत्र भीष्मने उनको बुलवाया। अनन्तर उनके जाने पर धृतराष्ट्रने युधिष्ठिरसे कहा, कि हे कुन्तीपुत्र! मैं जो कहूं, भाइयोंके साथ सुनो; तुम खाण्डवप्रस्थमें जाय बसो, कि तुमसे हमारा फिर बिगाड़ न हो। तुम अर्जुनसे इस प्रकार रक्षित होकर, कि जैसे इन्द्रजीसे देवता रखे जाते हैं, वहां बास करो, तो तुमसे कोई छेड़ छाड़ नहीं कर सकेगा; सो तुम राज्यका आधा भाग लेकर खाण्डवप्रस्थमें रहो।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि मनुष्यश्रेष्ठ पाण्डवोंने राजा धृतराष्ट्रकी बात मानकर राज्यका आधा भाग पाके उनके पांव छूकर घने बनमें जाय खाण्डवप्रस्थमें प्रवेश किया। उन अच्युत पुरुषोंने कृष्णके साथ वहां पहुंच कर उस ठौरको देवलोककी भांति बनाया। महारथी पाण्डवोंने कृष्णद्वैपायनके साथ शुभ पुण्यस्थानमें शान्ति-कार्य्य करवाकर भले प्रकारसे नगर बसाया। वह नगर सागर समान बड़ी खाई और चन्द्रमा तथा धुन्धले बादल समान आकाश चूमनेवाले भवनोंकी कतारसे ऐसी शोभा पाने लगा, कि जैसी भोगवती नगरी सर्पोंसे सुशोभित होती है। उसके घरोंकी किवाड़युक्त प्रशस्त द्वारोंसे उड़नेकी चाहनेवाले पंख फैलाये गरुड़की शोभा हुई। वह श्रेष्ठ पुरी बादल दल और मन्दरपर्वत सदृश भलेप्रकार संवृत, अस्त्रयुक्त, भेदनेके अयोग्य और भांति भांतिके गोपुरोंसे अच्छे प्रकार रक्षित हुई। ठौर ठौरमें दो जीभवाले सर्पवत शक्ति नामक अस्त्रोंसे घिरी, अस्त्र शिक्षाके लिये बड़े बड़े

भवनोंसे सुशोभित योधोंसे रक्षित, तेज अङ्कुश तथा एकवारही सैंकड़ों मनुष्योंके प्राणनाशी शतघ्नी नामक अस्त्रयुक्त यन्त्रजाल और लोहेके बड़े बड़े चक्रोंसे सुशोभित हुई; उसके पथ चौड़े और बड़े हिसावसे बनाये गये। उस नगरोमें कभी दैवी छेड़ छाड़की सम्भावना नहीं रही। वह नगर धूपली रगके भांति भांतिके अच्छे अच्छे भवनोंकी कतारोंसे अमरोंकी पुरीके समान शोभायमान होनेके कारण इन्द्रप्रस्थ कहलाया। ऐसे नगरके सुन्दर सुभ स्थानमें पाण्डवोंकी धनभरी धननाथ सदृश भवन मण्डली आकाश मण्डलमें चमकती हुई बिजलीसे जटित बादलसमान सोहने लगी।

हे महाराज! अनन्तर संस्कृत प्राकृत आदि देश देशकी भाषा जानने वाले और सर्व वेदोंके जानकार ब्राह्मणोंने आकर उस ठौरमें वसना निश्चय किया। बाणिक लोग धनार्जनके अभिलाषी बनके अनेक दिशाओंसे वहां आने लगे। अनेक प्रकार शिल्प विज्ञान जानने वाले वहां आवसे। नगरके चारों ओर सुन्दर सुन्दर फुलवाड़ी आम, आम्रातक कदम्ब, अशोक, चम्पा, पुन्नाग, नागकेशर, लकुच, पनस, शाल, ताल, तमाल, वकुल, मनोहर फूलसहित केतक, फलके भारसे नम्र पानीय आमलक, लाध्र, सुन्दर फूलयुक्त अङ्कोल, जम्बु, पाटल, माधवी-लता कुञ्ज, करवीर और पारिजात यह सब और दूसरे नित्य फूलफलवाले भांति भांतिके वृक्षोंसे सुहायी। वे फुलवाड़ी अनेक प्रकारके पक्षी, उन्मत्त मयूरदल और उमङ्गसे कुहकुहाती हुई कोयलकुलसे भरकर पहिलेकी अनदेखी सुन्दरता फैलाने लगीं। और अनेक प्रकारके आदर्शसदृश निर्मल गृह, भांति भांतिके लतागृह, सुहावने चित्रगृह, क्रोड़ार्थ मिट्टीके कृत्रिम पहाड़, श्वेत लाल आदि नाना प्रकारके पद्मकी गन्धसे अति मनोहर सरोवर, हंस कारण्डव और चकवोंसे सुहावने वनसे घिरे, भांति भांतिके ताल और बड़े बड़े सुन्दर तड़ागोंसे सुहायी। महाराज! उस पुण्यशील जनोंसे पूरित महान् प्रदेशमें जाके पाण्डवोंका आनन्द दिन दिन बढ़ने लगा। राजा धृतराष्ट्र और भीष्मके पाण्डवोंके लिये उस प्रकार धर्मकी व्यवस्था कर देने पर पाण्डव खाण्डवप्रस्थमें वास कर आनन्दित हुए। भोगवती नगरी जिस प्रकार नागोंसे सोहती है; वैसेही वह नगर पञ्च पाण्डवोंसे अच्छी शोभा पाने लगा। हे महाराज! बलदेवजीके साथ वीर श्रीकृष्ण इस प्रकारसे पाण्डवोंको राज्यमें बैठाकर उनकी सम्मतिसे द्वारकाको गये।

राज्यलाभ पर्व्वमें दो सौ आठ
अध्याय समाप्त।

जनमेजय बोले, कि हे तपोधन! महासत्त्व महात्मा मेरे पहिलेके दादे पाण्डवोंने इन्द्रप्रस्थमें इसके पीछे क्या किया था? उनकी भार्य्या द्रौपदी क्योंकर उन सबोंके संग मिलती थी और ये महाभाग भूपति पांचों एक द्रौपदीसे रत होते थे; फिर तिस परभी उन पांचोंमें आपसका झगड़ा नहीं उभड़ा था, इसका क्या कारण है? हे तपोधन! कृष्णासे मिलते हुए उन महात्माओंने आपसमें कैसा व्यवहार किया था? यह सब विस्तारपूर्व्वक सुना चाहता हूं।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि शत्रु मंथनेहारे पाण्डव धृतराष्ट्रकी आज्ञासे राज्यलाभ कर खाण्डवप्रस्थमें कृष्णाके साथ रहस्यो करने लगे। बड़े तेजस्वी सत्यशील युधिष्ठिर राज्य पाकर भाइयोंके साथ धर्मके अनुसार प्रजा पालने लगे। शत्रु विनाशी, महाप्राज्ञ, सत्य-धर्मशील पुरुष-श्रेष्ठ दूसरे पाण्डवगण बड़े आनन्दसे उस स्थानमें वसे रहे। वे बड़े कोमती

राजासनों पर बैठके सम्पूर्ण पौर-कर्म्मोंको निबटारा करते थे।

अनन्तर एकदिन वे सब महात्मा बैठे थे, कि ऐसे समयमें देवर्षि नारद मनमाने वहां आ पहुंचे। बुद्धिमान युधिष्ठिरने ऋषिकी आते देखकर अपना सुन्दर आसन छोड़ दिया। अनन्तर देवर्षिके बैठने पर उन्होंने उनको विधिपूर्वक अर्घ देकर सम्पूर्ण राजकार्य्यकी बातें कह सुनायी! ऋषिने पूजा लेकर प्रसन्न चित्तसे उनको अशीस देकर बैठने कहा। राजा युधिष्ठिर मुनिकी आज्ञासे बैठ गये और कृष्णाके पास देवर्षिके आनेका समाचार भेजवाया। द्रौपदी वह बात सुनतेही शुचि और समाहित होकर उस ठौरमें आगयी जहां देवर्षि पाण्डवोंके साथ बैठे थे। धर्म्मचारिणी कृष्णा देवर्षिके पांवोंको प्रणामकर हाथ जोड़ अवगुण्ठितभावसे खड़ी हुई। धर्म्मात्मा सत्यवादी ऋषिश्रेष्ठ नारदने अनिन्दिता राजकन्याको अनेक अशीस देकर जानेकी आज्ञा दी। अनन्तर द्रौपदीके चले जाने पर भगवान् देवर्षि युधिष्ठिर आदि पाण्डवोंसे निरालेमें बोले, कि यशस्विनी द्रौपदी अकेली तुम सबोंकी धर्मपत्नी बनी है; ऐसी दशामें तुम भाइयोंमें बिगाड़ हो सकता है, सो ऐसा कोई नियम करो, कि वह न होने पावे! पूर्वकालमें सुन्द और उपसुन्द नामक दो भाई एकत्र बसते थे। वे दूसरोंसे बधे जानेके अयोग्य और उनका एक राज्य, एक गृह, एक सेज एक भोजन-स्थान था। उनमें सदा ऐसी मित्रता बनी रहने परभी तिलोत्तमाके लिये उन्होंने एक दूसरेको मारडाला। सो हे युधिष्ठिर! तुम आपसकी प्रीति बढ़ानेवाले भ्रातृप्रेम बनाये रखो। यह प्रयत्न करो, कि तुममें भ्रातृभेद न होने पावे।

युधिष्ठिर बोले, कि हे महामुने! सुन्द और उपसुन्द किसके पुत्र थे? क्योंकर उनमें आपसका भेद होगया? और क्योंकर उन्होंने एक दूसरेको मारडाला था? और जिस नारीके लिये उन्होंने एक दूसरेको मारडाला था, वह तिलोत्तमा किसकी कन्या थी? वह क्या अप्सरा वा देवकन्या थी? हे ब्रह्मन्! यह सब विस्तारपूर्वक आद्योपान्त सुना चाहता हूं। हे तपोधन! यह सुननेकी मुझमें बड़ी इच्छा उभड़ी है।

राज्यलाभ पर्व्वमें दो सौ नौ अध्याय समाप्त।

श्रीनारदजी बोले, कि हे पृथापुत्र युधिष्ठिर! भाइयोंके साथ तुम यह पुरानी कथा सुनो। पूर्व्वकालमें महावीर हिरण्यकशिपुके वंशमें निकुम्भ नामक बली तेजस्वी एक दैत्यवरने जन्म लिया था। उसके बड़े पराक्रमी, बड़े वीर्य्यवन्त कुटिलचित्त दो कठोर पुत्र उपजे। उन दो दैत्यराज-पुत्रोंमें एकका नाम सुन्द और दूसरेका उपसुन्द था वे दोनों सदा एकही विषयमें सम्मत, एकही विषयमें दत्तचित्त और एकही कार्य्यके करनेवाले होके समान सुख दुःखसे काल गंवाते थे। दोनों एक दूसरेको प्यारी वाणी बोलते और एक दूसरेका प्रियकार्य्य करते थे; एक भाईके बिना दूसरा भाई भोजन वा गमन नहीं करता था। उन दो भाइयोंके स्वभाव और व्यवहारमें भेद न रहनेके हेतु जान पड़ता था, कि मानों एक मनुष्य दो भागोंमें बट गया है। हर काममें एक बुद्धि रखनेवाले वे दो बड़े वीर्य्यवन्त भाई क्रमसे बढ़ गये। वे तीनों लोक जीतना निश्चय कर विन्ध्य पर्व्वत पर जाकर दीक्षित और समाहित होके कठोर तप करने लगे। पहिले वल्कल पहनके और भूखप्यास छोड़के तपमें चित लगाया और सर्व्वशरीरमें भस्म लगाकर वायु पीकर पांवके अंगूठोंके बल खड़े होकर, हाथ ऊंचे उठाकर, निमेष तजकर और व्रत धारणकर बहुत काल तक अपने मांसकी

आहुति चढ़ायी। उसकालमें यह एक आश्चर्य्य लीला हुई, कि विंध्य पर्व्वतने उनकी तपस्याके प्रभावसे तप कर धुआं वमन किया था। अनन्तर देवगण उनकी कठोर तपस्या देखकर भय खाके तप नष्ट करनेके लिये विघ्न डालने लगी। उन्होंने लुभानेवाले रत्न और नारीसे उन दोनोंको वार वार लुभाया; पर उन दोनों बड़े अच्छे व्रत करनेवाले भाइयोंने किसी प्रकार व्रत नहीं छोड़ा। आगे उन्होंने फिर उन दो महात्माओंके सामने माया फैलाकर यह एक बड़ी भारी लीला दिखायी, कि उन दोनों असुरोंकी माता, बहिन स्त्री और दूसरे स्वजन अलङ्कारसे च्युत होके, केशसे रहित होके और वस्त्र खोके, हाथोंमें शूल लिये हुए एक राक्षससे गिराये जाके अति भय खाकर उनदोनो असुरोंसे पुकार पुकारकर त्राहि त्राहि चिल्लाने लगी। यह देखनेपर भी अति बड़े व्रतधारी सुन्द और उपसुन्दने व्रत नहीं छोड़ा, अनन्तर जब दोनोंमेंसे कोई भी उससे असन्तुष्ट वा कातर नहीं हुआ, तब वे स्त्रियां और राक्षस अन्तर्हित हुए; तिसके पश्चात् सर्व्वलोकोंके मङ्गलकारी प्रभु पितामहने उन दोनों महावीरोंके सामने आकर उनको वर मांगनेको कहा। दृढ़विक्रमी सुन्द और उपसुन्द दोनों भाई प्रभु पितामहदेवको देखकर दोनों हाथ जोड़के खड़े हुए और दोनों एकत्र होकर बोले, कि प्रभो पितामह! हमारी तपस्यामें यदि आप प्रीत और प्रसन्न हुए हो, तो हमको यह वर दें, कि हम दोनों मायाके जानकार अस्त्रके जानकार, बली, कामरूपी और अमर होसकें। श्रीब्रह्माजी बोले, कि तुमने जो जो प्रार्थना की उनमेंसे अमर होनेके अतिरिक्त तुम्हारी सब अभिलाषा पूरी होंगी। अमरताके विना और कुछ प्रार्थना ऐसी करो, कि अमर होनेकी तुल्य हो। तीनों लोकोंके प्रभु बननेहीको इच्छासे तुमने यह बड़ी तपस्या प्रारम्भ की थी, इस लिये तुमको अमरता लाभ होना ठीक नहीं है। हे दोनों दैत्यवर! तीनों लोक जय करनाही तुम्हारी तपस्याका अभिप्राय है; इस कारण मैंने तुम्हारे अमर होनेकी अभिलाषा पूरी नहीं की। सुन्द और उपसुन्दने कहा कि, हे पितामह! हम दोनोंको एक दूसरेके विना इस त्रिलोक भरमें स्थावर जङ्गम आदि किसीसे मृत्युका भय न रहे।

पितामह बोले, कि तुमने जो प्रार्थना की और जो कहा, वही होगा। मैंने तुम्हारी इस प्रार्थनाके अनुसार तुम्हारी मृत्युका नियम निश्चय किया। श्रीनारदजी बोले, कि अनन्तर पितामह सुन्द और उपसुन्दको यह वर देके तपसे निवृत्त कर ब्रह्मलोकमें गये। दोनों भाई दैत्यवर वर पाकर सब लोकोंके बधके अयोग्य होके अपने घरको पधारे। उनके स्वजन उन दोनों मनास्वियोंको वर प्राप्ति और उनका मनोरथ सुफल होते देखकर बड़े प्रसन्न हुए। उन दो भाइयोंने तब जटा छोड़के किरीट आदि अतिमूल्यवान आभूषण और साफ वस्त्र पहिने। अनन्तर सर्व्वोने एक अकाल-कौमुदीका महोत्सव करना प्रारम्भ किया। उनके स्वजन सदा आमोद प्रमोदसे काल काटने लगे। उनके घर घर भक्षण करो भोजन करो, दान करो, खेलो, गीत गाओ, पीओ, ऐसे शब्द सदा उच्चारे जाने लगे। ठौर ठौरमें दैत्योंके सिंह समान गर्ज्जनके साथ करतालीको कठोर आहटसे सम्पूर्ण नगरमें आनन्दका उमङ्ग फैल पड़ी। कामरूपी दैत्योंके बड़े आनन्दसे उस प्रकारोंके भांति भांतिके विहारमें लगे रहनेसे उनको एक एक वर्ष एक एक दिन जान पड़ने लगा।

राज्यलाभ पर्व्वमें दोसौ दश
अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि प्रकाशकौमुदीके महोत्सवके अन्त होने पर तीनोंलोकोंके अधिकार लाभ करनेके अभिलाषी होके दोनों भाइयोंने युक्तिकर सेनाओंको सजने की आज्ञा दी। उन्होंने स्वजन, और वृद्ध दैत्य मन्त्रियोंकी आज्ञासे यात्रा करनेकी क्रिया पूरी कर रात्रिको मघा नक्षत्रमें यात्रा की। तुल्यधर्म्मवाली बड़ी दैत्यसेना गदा, पट्टिश, शूल, मुद्गर आदि शस्त्र लेकर उनके साथ चली। दोनों दैत्यराज चारणोंकी विजयसूचक माङ्गलिक स्तुति पाठसे प्रशंसित होके परम हर्षपूर्व्वक जाने लगे। युद्धमें कठोर कामगामी वे दोनों दैत्यवर आकाश पर चढ़के देवलोककी गये। देवगण उनके आनेकी सुध पाय पितामहका वर देना स्मरण कर अपनी अपनी ठौर छोड़के ब्रह्मलोकमें गये। तेजस्वी विक्रमी दोनों दैत्योंने इसलोक, यक्षगण, राक्षसगण और दूसरे खेचरी प्राणियोंको जीतकर वहांसे चले चले पातालमें बसे हुए सर्पोंको परास्त कर, समुद्र द्वीपमें म्लेच्छोंको हराया। अनन्तर कठोर शासनेवाले दोनों महाबली भाइयोंने भूमण्डलको परास्त करनेको उद्यत होके सेनाओंको पुकार पुकार यह कठोली बात कही, कि राजर्षि वृन्द महायज्ञोंसे और ब्राह्मणगण हव्यकव्यसे देवोंको तेज बल और श्रीवृद्धि पहुंचाते हैं; वह सब लोग इन कार्य्योंसे हमारी शत्रुता करते हैं; सो हम सब एकत्र होकर सर्व्वप्रकारसे उनको नष्ट करेंगे। वे महासमुद्रके पूर्व्व तट पर ऐसी निष्ठुर कल्पना कर सब सेनाओंको आज्ञा देके चारों ओर दौड़े। उन दोनों बली भाइयोंने जिन जिन ब्राह्मणोंको यजन वा याजन करनेको देखा, उसी क्षण उनको मारके आगे बढ़ने लगे। उनकी सेना निःशङ्कचित्तसे मुनियोंके आश्रममें जाके उनके अग्निहोत्र ले लेके जलमें छोड़ने लगी। महात्मा तपोधनवृन्द क्रोधित हो शाप देने लगे, पर यह ब्रह्माजीके वरसे व्यर्थ होने लगा, उन पर बर्त्ताव नहीं कर सका। जब द्विजोंका शाप शिला पर छोड़े शिलीमुखकी भांति व्यर्थ होने लगा, तब वे नियम छोड़कर भागने लगे। भूमण्डलमें जितने समशील, तपःसिद्ध दान्त ऋषि थे, वे इस प्रकार भागे, कि जैसे गरुड़के भयसे सर्प भागें। इस प्रकार आश्रम मथने और कलसे, स्रुव आदि इधर उधर छिरकाये तथा टूट फूट जाने पर सम्पूर्ण जग प्रलय-कालमें नष्ट होनेकी भांति खाली होगया। हे महाराज! अनन्तर मुनियोंके इधर उधर छिपकर दृष्टिके बाहर हो जाने पर दोनों महावीर उनका बध निश्चय कर नाना रूप धरने लगे। वे कभी मदोन्मत्त गजका स्वरूप लेकर दुर्गमें गये हुए तपस्वियोंको भी नष्ट करने लगे। वे दोनों कुटिल कभी सिंहका स्वरूप कभी व्याघ्रका रूप धारण करते थे और कभी दृष्टिके बाहर होजाते थे। इस प्रकार उन्होंने नाना उपायोंसे ऋषियोंको नष्ट किया? तब धरती पर यज्ञ और स्वाध्याय रुक जाकर और ब्राह्मण तथा राजा नष्ट होके एकवारही यज्ञोत्सवका नाश होगया। सब लोक भयभीत होकर हाय हाय करने लगे। मोल विक्री, हाटका कार्य्य, देवी कार्य्य, पुण्यकार्य्य, विवाहकार्य्य, ऋषिकार्य्य और गोरक्षा आदि सम्पूर्ण कार्य्यही रुक गये। नगर और आश्रमोंका सत्यानाश होके केवल हड्डी कङ्कालोंसे पृथ्वी बहुत भयावनी दीख पड़ने लगी। सम्पूर्ण देशोंमें पितृकार्य्य और वषट्कार आदि माङ्गलिक क्रियाके लोप हो जाने पर जग बड़ा भयानक हो देखनेके अयोग्य हुआ। चन्द्र, सूर्य्य, ग्रह, तारे और आकाशमें रहनेवाले अश्विनी आदि नक्षत्र सुन्द उपसुन्दका यह कार्य्य देखकर उदास हुए। वे इस प्रकार कुटिल कार्य्यसे सब और पराजय कर अन्तको

अनुवर्ज्जित होकर कुरुक्षेत्र में निवास करने लगे।

राज्यलाभ पर्व्वमें दो सौ ग्यारह अध्याय समाप्त।

श्रीनारदजी बोले, कि अनन्तर शमदमशील देवर्षि, परमर्षि और सिद्धगण उस भारी प्राणीहत्याको देखकर बड़े दुःखी हुए। वे तब जगत् पर कृपायुक्त हो पितामहके भवनमें गये। अनन्तर वहां पितामहको सिद्ध और ब्रह्मर्षियोंसे चारों ओरसे घिरे और देवोंके साथ बैठे पाया। वहां देवोंके देव महादेव, अग्नि, वायु, चन्द्र, आदित्य, इन्द्र ब्रह्मनिष्ठ ऋषिगण, वैखानस, वालिखिल्य, वानप्रस्थ, मरीचि, अज, अविमुग्ध और तेजोगर्व आदि भिन्न भिन्न तपस्वी ऋषिगण सभी उपस्थित हुए। सम्पूर्ण महर्षिगण दुःखोचित्तसे सुन्द और उपसुन्दके कार्य्योंका वृत्तान्त कह सुनाया उन दोनों दैत्योंने जैसे धूमके साथ जो काम किया और जैसे मारा वह सब क्रमसे आद्योपान्त कह सुनाया! सम्पूर्ण देवगण और परमर्षियोंने उस विषयके लिये पितामहका अनुरोध किया। अनन्तर पितामह उन सबोंका वचन सुनके क्षणभर सोचकर क्या करना ठीक है, उसका निश्चय कर दुराचारी दोनों दैत्योंके वधके लिये विश्वकर्म्माको बुलाया। विश्वकर्म्माके आने पर महानुभव पितामहने उसकी ओर देख आज्ञा दी, कि सबोंकी प्रार्थनीया मनभावनी एक प्रमदा बनाओ। विश्वकर्म्मा उनको प्रणाम कर आदरपूर्व्वक उनकी आज्ञा मानके यत्नसे वार वार सोच विचारकर एकसुन्दरी बाला बनाने लगा। त्रिलोकभरमें दर्शनयोग्य परम सुन्दर जितने स्थावर जङ्गम पदार्थ हैं, विश्वकर्म्मा उन सबोंसे चुन चुन कर देवरूपी एक कामिनी बनाके उसके अङ्गादि सम्पूर्ण शरीरको सजा कर उसको रत्नकी प्रतिमा बनाया। विश्वकर्म्माकी बड़े प्रयत्नसे बनायी हुई वह कन्या ऐसी रूपवती बनी, कि तीनों भुवनमें कोई भी नारी उसकी उपमाके योग्य न रही; उसके शरीर भरमें ऐसा कोई सूक्ष्म स्थानभी न था, कि जिस पर देखनेवालेकी आंख पड़नेसे उसके अपूर्व्व रूपकी शोभामें फंस नहीं जाता था। साक्षात लक्ष्मीकी भांति वह कामिनी हरेक प्राणीके नयन मन चुराने लगी। विश्वकर्म्माने सम्पूर्ण रत्न बटोरके तिल तिल चुनकर उस कन्या को बनाया था; इसलिये पितामहने उसका नाम तिलोत्तमा रखा। अनन्तर तिलोत्तमा दोनों हाथ जोड़के ब्रह्माजीसे बोली, कि हे भूतनाथ! मुझको क्या करना होगा? कहो, कि मैं क्यों साम्प्रत बनायी गयी। पितामह बोले, कि तुम सुन्द और उपसुन्द, दोनों असुरोंके यहां चली जाओ, वहां जाय सुन्दर रूप दिखाय उनको लुभानेकी चेष्टा करो। ऐसी चेष्टा करो, कि वे तुम्हारे रूपकी सम्पद देखके आपसमें झगड़ा छेड़ें।

श्रीनारदजी बोले, कि अनन्तर तिलोत्तमा उनका कहना मानके प्रतिज्ञा ठानकर पितामहके पांव पर सिर नाय देवोंकी चारों ओर परिक्रमा देने लगी। उस समय भगवान पितामह पूर्व्व ओर, महेश्वर दक्षिण ओर, दूसरे देवगण उत्तर ओर और ऋषिवृन्द नाना ओरको मुह फेरे थे। तिलोत्तमा जब परिक्रमा देती रही, तब इन्द्र और भगवान महेश्वर अति धीरज धर अपने अपने स्थानोंमें बैठे थे। महेश्वरमें बड़े वेगसे देखनेकी चाह उभड़ने पर तिलोत्तमा जब उनकी दक्षिण ओरको गयी तब खिले पद्मपलाश समान नेत्रोंसे सुशोभित एक दक्षिण मुख निकल आया; तिलोत्तमा जब उनके पीछे गयी, तब उनका एक पश्चिम मुख निकला; और वह

वाला जब उत्तर ओर गयी, तब उनकी बांई ओरसे एक मुख निकला। महेन्द्रकोभी देखनेकी खाह रहनेके कारण जब तिलोत्तमा उनकी परिक्रमा देती रही, तब उनके सामने पार्श्वमें और पीठ पर सम्पूर्ण शरीरहीमें बड़ी बड़ी सहस्र लाल आंखें निकलीं। हे पार्थ! पूर्वकालमें इस प्रकार महादेवजी चतुर्मुख और बलसूदन सहस्रलोचनयुक्त हुए, और परिक्रमाके काल तिलोत्तमा जिस जिस ओरको गयी थी, देव और महर्षियोंके मुख उस उस ओरको घूम गये थे। उस कालमें उस ब्रह्मसभामें जो जो उपस्थित थे उनमें केवल पितामहके बिना सब महात्माओंकी दृष्टि उस नारीकी देह पर पड़ी थी। जब तिलोत्तमा जाने लगी, तब सम्पूर्ण देव और परमर्षियोंने उसके रूपका उजाला देख अभीष्टकामनाको सिद्ध जाना। तिलोत्तमाके देवकार्य्य साधनको चले जाने पर लोकभावन हिरण्यगर्भने सम्पूर्ण देव और ऋषियोंको बिदा किया।

राज्यलाभ पर्व्वमें दो सौ बारह अध्याय समाप्त।

श्रीनारदजी बोले, कि इधर दैत्य, सुन्द, और उपसुन्द दो भाई भूमण्डलको परास्त कर तीनों भुवनोंको तुच्छरूपसे हथेली तले लाय दुःख खोय बिना एकभी विरोधी अपनोंका मनोरथ सफल जाना और देव, गन्धर्व्व, यक्ष, राक्षस, सर्प, भूपाल आदिके सम्पूर्ण रत्न लेके परम सन्तुष्ट होय काल गंवाने लगे। जब देखा, कि इस त्रिलोक भरमें कोईभी उनका रोकनेवाला नहीं है, तब उद्योग छोड़के देवोंकी भांति परम सुखसे विहार करने लगे। माला, चन्दन, स्त्री, सुन्दर खाने, चबाने और चूसनेकी सामग्री इन सब भांति भांतिकी वस्तुओंसे अति आनन्द भोगने लगे। देवोंकी भांति कभी अन्तःपुरमें, कभी वनमें कभी फूल बाड़ीमें कभी पर्व्वत पर, जब जहां मनचले विहार करने लगे। एक दिन फूलेयुक्त वृक्षोंसे सुशोभित अनरूखी शिलातलवाली विन्ध्याचल चोटी पर विहार करनेको गये। वहां मनमाने सम्पूर्ण दिव्य काम्य वस्तुओंको ले जाने पर स्त्रियोंके साथ प्रमुदित मनसे सुन्दर आसनों पर जा बैठे। नारियां उनके सन्तोषके लिये सुन्दर नाच, गीत और स्तुतिभरे संगीतोंसे उनकी उपासना करने लगीं। ऐसे समय तिलोत्तमा एकही लाल वस्त्र पहिन मनमाने बने ठने उस वनमें आय फूल तोड़ने लगी; और नदी तीरमें उपजे हुए कर्णिकार फूल तोड़ती हुई उस ठौरमें दोनों दैत्यके सामने धीरे धीरे गयी। वे दोनों बहुत मद पीकर आखें लालकर नशेसे चूर थे, सो उस सुन्दरीको देखतेही कामदेवके बाणसे बहुत घायल हुए। वे दोनों कामवश होकरके आसन छोड़के उठ कर उस नारीके पास गये और दोनोंने उस पर मन चलाया। सुन्दने अपने हाथसे उस सुन्दरीका दहिना हाथ थाम लिया और उपसुन्दने उसका बायां हाथ पकड़ा। वे एक तो वर पानेके अहङ्कार, अपने भुजवीर्य्यके अहङ्कार, और धनरत्नोंके अहङ्कारसे उन्मत्त थेही, फिर तिस पर दोनो मद्य और कामके नशेसे बावलोंके समान बने थे; सो एक दूसरेकी ओर भौंह चढ़ायके भगड़ने लगे। सुन्द बोला, कि यह बाला मेरी स्त्री है, तुम्हारी गुरुयानी है, तुम छोड़ दो। उपसुन्द बोला, कि यह नारी मेरी महरी है, तुम्हारे छोटे भाईकी बधु है, तुम त्याग दो। अनन्तर आपसमें ऐसा कहते हुए, कि "यह मेरी स्त्री है, तुम्हारी नहीं" दोनोंहीका क्रोध उभड़ा, दोनोंने उसके रूपकी शोभासे मोहित हो और उसके लिये क्रोधके मारे स्नेह खोय स्नेहको भूलके भारी भारी गदा उठायी। उस एक नारीके लिये काममोहित दोनों

भाइयोंने बड़ी बड़ी गदा उठाके यह कहते हुए, कि "मैंने पहिले कर थामा है,मैंने पहिले कर थामा है" एक दूसरेको बड़ी मार मारी। उस गदाकी चोटसे वे भयानक दोनों दैत्य मारे जाय और शरीरोंको रक्तसे नहाय आकाशसे गिरे दो सूर्य्योंकी भांति धरती पर लोट गये। तब उनकी मित्र, दैत्य और दैत्योंकी स्त्रियां भाग कर पातालमें जाय घुसीं। अनन्तर विशुद्धात्मा भगवान पितामह तिलोत्तमाके सत्कारके लिये देव और महर्षियोंके साथ वहां आ पहुंचे। भगवान पितामहने वहां पहुंच कर तिलोत्तमाको वर देना चाहा। वह वर देना स्वीकार कर उससे बोले, कि भाविनि! तुम सूर्य्यलोकमें विचर सकोगी। तुम्हारा इतना तेज होगा, कि कोई पुरुष तुमको देर तक नहीं देख सकेगा। सर्व्वलोकोंके पितामह प्रभु हिरण्यगर्भ ऐसा वर देके और इन्द्रके हाथ तीनो लोकोंका अधिकार सौंप कर ब्रह्मलोकको सिधारे।

श्रीनारदजी बोले, कि हे भरतवंश श्रेष्ठ! सुन्द और उपसुन्द दोनों भाई मित्रभावयुक्त और हरबातमें एकमत होने परभी तिलोत्तमाके लिये क्रोधित होकर आपही एक दूसरेको मारकर नष्ट हुए। सो स्नेहके हेतु मैं तुमको कहता हूं, कि तुम मेरा प्रिय कर्म्म करना चाहो, तो ऐसा कोई नियम ठहरा लो, कि द्रौपदीके लिये तुम भाइयोंमें बिगाड़ न हो।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे महाराज! महात्मा पाण्डवोंने अमित तेजस्वी महर्षि नारदकी यह बात सुन कर एक दूसरेके मतके अनुसार उस देवर्षिके सामनेही यह नियम ठहराया, कि हममेंसे एक भाई जब द्रौपदीसे मिलेगा, तब जो दूसरा भाई उसको देख लेगा, उसे बारह वर्ष ब्रह्मचारी बनके बनमें बसना होगा। धर्म्मचारी पाण्डवोंके ऐसा नियम निश्चय करने पर महामुनि नारद प्रसन्न होय मनमानी ठौरको चले गये। हे भारत! पहिले पाण्डवोंके नारदकी बातसे ऐसा नियम करलेने पर उन भाइयोंमें आपसका बिगाड़ नहीं हुआ था।

राज्यलाभ पर्व्वमें दो सौ तेरह

अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि इसके पीछे पाण्डवोंने द्रौपदीके विषयमें उस प्रकारका नियम ठहराके उस स्थानमें वास कर अस्त्रोंके प्रभावसे दूसरे भूपालोंको वशीभूत किया। कृष्णा उन बड़े तेजस्वी मनुष्यसिंह पांच पाण्डवों हीके वशमें बनी रही। सरोवरयुक्त बन और हस्तीगण जिस प्रकार एक दूसरेका सौभाग्य बढ़ाते हैं, वैसेही द्रौपदी और उसके पांच पति एक दूसरेकी प्रीति बढ़ाने लगे। महात्मा पाण्डवोंके धर्म्मपथ पर चलनेसे कौरव मात्रही दोषकी आंचसे बचके सुखपूर्व्वक वृद्धि पाने लगे।

हे नरनाथ! कितनेएक दिन बीतने पर एक ब्राह्मणके घरमें कुछ चोर आकर गौ चुराने लगे। हे नृपश्रेष्ठ! लुटेरोंसे ब्राह्मणकी गौ चुरायी जाने पर ब्राह्मण क्रोधसे चेत खोय खाण्डवप्रस्थमें आय दुःख प्रगट करते हुए चिल्ला चिल्लाकर पाण्डवोंको पुकार पुकारके बोले, कि हे पाण्डवो! तुम्हारे राज्यमें आज दुष्ट नीच निठुर लुटेरे एकायक मेरी गौ चुरा रहे हैं, तुम तुरन्त दौड़ो। हा! कितने दुःखकी बात है! काक आकर ब्राह्मणके शान्त यज्ञका घृत हर रहा है, नीच सियार सिंहकी गुफा खाली देखकर मथ रहा है, जो राजा प्रजाकी रक्षा नहीं करते, और छठां भाग करभी लेते हैं, पण्डित लोग उन्हींको सर्व्व लोकोंमें पापी कहते हैं, हे पाण्डवो! चोर ब्राह्मणका धन हर रहे हैं, धर्म्म कर्म्म लोप हो रहे हैं, मैं शोकरूपी कीचड़में डूबकर

बार बार रो रहा हूं, सो मेरा हाथ थामकर मुझको बचाओ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि कुन्तीपुत्र धनञ्जयने निकट आके रोते पीटते हुए उन ब्राह्मण की रुलाई सुनी। उन महाभुजने वह सुनतेही ब्राह्मणको माभै; कहके समझा कर ढाड़स दिया, पर जिस घरमें महात्मा पाण्डवोंके अस्त्र धरे थे, उस घरमें धर्म्मराज युधिष्ठिर द्रौपदीके साथ विराज रहे थे, सो वह भय खाये ब्राह्मणकी बातोंसे बार बार जल उठने परभी ठहराये हुए नियमके अनुसार अस्त्रशालामें प्रवेश करने वा चोरी रोकनेको नहीं जा सके। ब्राह्मणको वैसी रुलाई उनके दुःखीचित्तसे सोचने लगे, कि इन तपस्वी ब्राह्मणकी गौ चुरायी जाती हैं, उन्हें बचाकर इनको आंसू मुझको अवश्य मिटाने चाहिये, यह ब्राह्मण द्वारपर आकार रो रहे हैं, इनको न बचावें, तो मेरे रक्षा न करनेके हेतु राजाको बड़ा अधर्म्म होगा और बचानेहीसे इन सबोंकी इसलोकमें आस्तिकता बन जायगी और अधर्म्मभी नहीं होगा। पर अब अजातशत्रुराजाके यहां जानेसे उनका अनादर होगा और मेरा झूठा व्यवहार होगा, इसमें सन्देह नहीं। और उनके सामने जानेसे मुझको वनमें जाना भी पड़ेगा। वास्तवमें राजाका चाहे अनादर हो, मेरा अनुचित व्यवहारके लिये अधर्म्म हो, और वनमें चाहे मृत्युही हो, इन सबोंको तो सिर पर चढ़ाभी ले सकता हूं, पर धर्म्मको छोड़ नहीं सकता; क्योंकि देह छूटने परभी धर्म्म बना रहेगा। हे नरनाथ! वह ऐसा निश्चय कर अस्त्रशालामें घुस राजा युधिष्ठिरसे मिले, और धनुष लेकर प्रसन्न मनसे निकल ब्राह्मणसे बोले, कि हे द्विज! शीघ्र चलो, पराये धनके लोभी नीच लुटेरोंके बड़ी दूर जाते न जाते हम एकत्र चलकर उनके हाथसे तुम्हारे चुराये हुए धनको छीन लें। महाभुज पृथापुत्र सव्यसाची धनञ्जय यह कहके देह-रक्षक कवच ले कर ध्वजा फहराते हुए रथ पर चढ़े और वेगसे लुटेरोंकी पछियाते जाकर बाणोंसे काटकूट कर परास्त किया। आगे उन ब्राह्मणको उनकी गौ देके प्रसन्न कर यश लिया। अनन्तर वह अपने पुरमें लौटकर सब गुरुओंके पांव लगके उनसे स्वागत किये गये। कुछकाल बीतने पर उन्होंने धर्म्मराजसे कहा, कि प्रभो! मैंने द्रौपदीके संग आपको देखकर तुम्हारे ठहराये हुए नियमको तोड़ दिया है, तो मुझको व्रत पालनेकी आज्ञा दें, मैं वनवासको जाऊं। धर्म्मराज युधिष्ठिर एकायक भाई अर्ज्जुनकी यह बात सुन करकेही, शोकसे विकल हुए; और कुछ टूटी फूटी बातमें कहा, कि "क्यों? आगे वह मलिनचित्तसे भाई धनञ्जयसे बोले कि हे अनघ! यदि मैं तुम्हारे लिये प्रमाण स्वरूप हूं" तो मेरी बात सुनो मैं जब द्रौपदीसे विराज रहा था, तब मेरे यहां जाके मेरा जो अप्रिय किया है, उससे मेरे चित्तमें असन्तोष नहीं पहुंचा। उन विषयमें मैं तुमको आज्ञा देता हूं, सुनो। जब बड़े भाई स्त्रीके साथ विराजते हैं; तब छोटेके उस घरमें जानेसे हानि नहीं होती, पर ज्येष्ठ भाईहीका कनिष्ठके घरमें जाना नियमके विरुद्ध है। अतएव इससे तुम्हारा धर्म्मलोप नहीं हुआ और मेरा मान भी नहीं टूटा। हे महाभुज! रह जाओ, मेरी बात मानो। अर्ज्जुन बोले, कि मैंने आपसे सुना है, कि छलपूर्व्वक धर्म्म करना उचित नहीं है, सो मैं सत्यसे टल नहीं सकूगा। सत्यको लेकरकेही अस्त्र धर रहा हूं। श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर अर्ज्जुन राजा युधिष्ठिरकी आज्ञा लेकर वनचर्य्यामें दीक्षित हो बारह वर्ष वनवासके लिये गये।

अर्ज्जुन वनवास पर्व्वमें दो सौ चौदह

अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर कुरुकुल कीर्त्तिरूपी महाभुज अर्ज्जुन पधारे। महात्मा वेदज्ञ ब्राह्मण आदि बहुतेरे उनके साथ चले। हे महाराज! वेदपारग और वेदवेदाङ्गोंमें पण्डित, अध्यात्मकी चिन्ता करनेवाले ब्राह्मण, गानके पण्डित, पुराणकी कथा कहनेवाले सूत; भगवद्भक्त कथक, ऊर्द्धरेता वनवासी और जो मधुरभावसे सुन्दर उपाख्यान पाठ करते हैं, यह सब जन और दूसरे साथियोंके संग मरुद्गणके साथ चलते हुए देवराजकी भांति अर्ज्जुन चलने लगे। भरतवंश चूड़ामणि अर्ज्जुनने जानेके कालमें अनेक प्रकार सुन्दर सुन्दर वन, सरोवर, नदी, समुद्र, भांति भांतिके देश और पुण्यतीर्थोंको देखा। गङ्गाद्वारमें पहुंचकर वहां वसने लगे। हे जनमेजय! पाण्डववर विशुद्धात्मा अर्ज्जुनने उस स्थानमें जो अद्भुत कर्म्म किया था, वह कहता हूं सुनो। कुन्तीपुत्रके साथ ब्राह्मणोंके वहां विराजनेके काल वे सब ब्राह्मण नाना प्रकारके अग्निहोत्र प्रगट करने लगे। हे महाराज! गंगातीरमें अभिषेक किये हुए पण्डित, नियमयुक्त सुमार्गी महात्मा ब्राह्मणोंसे उन सब अग्निहोत्रोंके प्रबोधित, और फूलोंसे सुशोभित होने तथा बलि और आहुति दिये जाने पर गङ्गाद्वारकी बड़ी शोभा हुई। किसी एक समय पाण्डववर अर्ज्जुन नहानेके लिये द्विजोंसे भरे हुए आश्रमके निकट भागीरथीके जलमें जा उतरे। महाराज! वह नहाय धोय पितरोंका तर्पण कर अग्निकार्य्यके लिये जलसे उठना चाहते थे, कि ऐसे समयमें पातालके नीचे रहनेवाली उलूपी नाम्नी नागराज-पुत्री मदनकी आज्ञा मानकी उनको जलमें घसीट ले गयी। तब उन्होंने कौरव्य नामक सर्पराजके भवनमें जाके अग्नि देखा। आगे भले प्रकार समाहित होकर उसमें अग्निकार्य्य कर लिया। उनके आशङ्कित चित्तसे आहुति देनेसे अग्निको बड़ा सन्तोष हुआ। कुन्तीपुत्र धनञ्जय अग्निकार्य्य होजाने पर मुसकिराते हुए नागराजकन्यासे बोले, कि भाविनि! तुमने यह क्या साहस किया? हे भीरु सुभगे! यह कौन देश है? और तुम कौन? किसकी कन्या हो? उलूपी बोली, कि हे महाराज! ऐरावतवंशमें उपजे कौरव्य नामक एक नागराज हैं, मैं उनकी कन्या उलूपी नामी पन्नगी हूं। हे पुरुषव्याघ्र! तुम स्नानके लिये जब गङ्गाजीमें उतरे, तब मैं तुमको देख करके मदनवाणसे घायल हुई। हे कुरुनन्दन! मेरा विवाह नहीं हुआ, मैं किसीसे पहिले मिली नहीं, अब तुम्हारे लिये कामसे मोहित हुई हूं। हे अनघ! अब तुम आत्मदान कर मुझे आनन्द दो। अर्ज्जुन बोले कि हे भद्रे, जलमें विराजनेवाली! मैंने धर्म्मराजकी आज्ञासे बारह-वर्षके लिये ब्रह्मचर्य्यव्रत लिया है, सो अपने अधीन नहीं हूं; तुम्हारा प्रियभी किया चाहता हूं; पर मैंने पहिले कभी झूठी बात नहीं कही; सो हे भुजङ्गमे। तुम ऐसा विधान करो, कि अब मेरी बातकी सचाई बनी रहे और तुम्हारा प्रियभी कर सकूं और मुझको अधर्म्ममें पड़ना न हो! उलूपी बोली, कि हे पाण्डव! तुम जिस निमित्त पृथ्वीका भ्रमण कर रहे हो और गुरुने जिस प्रकार तुमको ब्रह्मचर्य्य व्रत करनेकी आज्ञा दी है, वह सब कुछ मैं जानती हूं। तुमने नियम किया था, कि तुम पांच भाइयोंमेंसे कोई जब द्रौपदीसे मिलता रहे, तब जो भाई वहां जा पहुंचेगा, उसको बारह वर्षतक ब्रह्मचर्य्य ले वनमें जाना पड़ेगा। तुममें आपसका वनमें जानेका यह नियम केवल द्रौपदीहीसे बना है, सो तुम केवल उस धर्म्मकी रक्षाहीके लिये भेजे गये हो; ऐसी दशामें तुम्हारा धर्म्म बिगड़नेकी कौनसी सम्भावना है? हे सुन्दरनेत्र वाले पुरुष! विह्वल जनको तुम्हें बचाना उचित है, सो मुझको

विह्वल ज्ञान बचानेसे तुम्हारा धर्म्म नहीं बिगड़ेगा। हे अर्जुन! यद्यपि इसमें धर्म्मकी कुछ हानि होती है, सो मुझको प्राण देनेसे तुम्हारा वह पूराहो बना रहेगा। साधुलोग मिलन चाहती हुई नारीकी कामना पूरी करनेका उपदेश करते हैं, सो मुझको भक्ता जान भजो। हे प्रभो! यदि तुम इसमें सम्मत न हो तो, मुझको मरी जान लो! हे पुरुषोत्तम महाभुज! आज मैंने तुम्हारी शरण ली है, मुझको प्राण देकर परम धर्म्म उपार्जन करो। हे कुन्तीपुत्र! मैं अनाथ और दीन होकै बार बार रोती हुई तुम्हारी शरण लेती हूं और कामवश होके तुम्हारे मिलनको प्रार्थना कर रही हूं और तुमभी दोनों और अनाथोंकी सदा रक्षा करते हो, सो तुमको मेरा प्रिय करना चाहिये। अतएव तुम अपनेको सौंप कर मेरी अभिलाषा पूरी करो।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि नागराज पुत्रीके प्रतापी अर्जुनसे ऐसी बात कहने पर अर्जुनने धर्म्मके उपदेशसे उसका मनमाना सम्पूर्ण कार्य्य पूरा किया। उसका उस कौरव्य नामक सर्पराजके भवनमें वह रात गंवा कर सूर्य्योदयके समय उठे और उस नागराजपुत्रीके संग फिर गङ्गाद्वारको लौट आये। आगे सती उलूपी उनको यह वर देकर लौटी, कि तुम जलमें सर्व्वत्र अजेय बनोगे। सन्देह नहीं है, कि सबही जलचर तुमसे जीते जानेके योग्य होंगे।

अर्जुन वनवास पर्व्वमें दो सौ पन्द्रह अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि, अनन्तर इन्द्र पुत्र ब्राह्मणोंसे पहिले दिन का सब व्योरा कहके हिमालयके पास गये। आगे अगस्त्य वटको देखकर वसिष्ठ पर्व्वतमें जा पहुंचे और तुङ्गनाथ नामक पर्व्वत पर अपनी शौचक्रिया करके शुचि होके ब्राह्मणोंको अनेक सहस्र गौ और रत्नदान किये। अनन्तर पुरुषोत्तम पाण्डवश्रेष्ठ हिरण्यबिन्दु नामक तीर्थमें नहाय धोय वहांके पुण्य स्थानोंको देखने लगे। अनन्तर ब्राह्मणोंके साथ उस स्थानसे उतर कर पूर्व्वदिशाको देखनेकी इच्छासे चले। हे भारत! वह क्रमसे तीर्थोंको देखने लगे; नैमिषारण्यसे बहती हुई सुन्दर उत्पालनी नदी, गया और यशस्विनी महानदी गङ्गा, कौशिकी,नन्दा और दूसरी नन्दा और अन्यान्य तीर्थ तथा आश्रमोंको दर्शन करते हुए आत्माको पवित्र कर ब्राह्मणोंको अनेक गौ दान दी। अङ्ग बङ्ग और कलिङ्गदेशमें जितने तीर्थ और पवित्र स्थान हैं, उन्होंने उन स्थानोंमें जाय उनको दर्शन कर उन स्थानोंमें ब्राह्मणोंको धन दान दिया। हे भरतनन्दन! जो सब ब्राह्मण कुन्तीनन्दनके साथ जा रहे थे, वे कलिङ्ग राज्यके द्वार अर्थात् वहांकी पर्व्वत-सन्धितक जाके उनकी आज्ञासे लौट गये। कुन्तीपुत्र वीर धनञ्जय द्विजोंकी आज्ञासे थोड़े मनुष्योंको संग लेकर समुद्रको ओर चले। वह प्रभु कलिङ्ग देशको पीछे छोड़के नाना देश, आश्रम और बड़े बड़े भवनोंको देखते हुए चले। क्रमसे तपस्वियोंसे सुशोभित महेन्द्र पर्व्वतको देखकर समुद्र तीरसे मणिपुरमें जा पहुंचे। हे महाराज! वह महाभुज उस देशमें पुण्य तीर्थ और पवित्र स्थानोंको देखकर अन्तमें मणिपुरनाथ चित्रवाहन नामक धर्म्मज्ञ महीपालके निकट गये। उस भूपकी चित्राङ्गदा नाम्नी एक सुन्दरी कन्या थी। एक दिन वह सुन्दरी मनमाने उस नगरमें टहलती थी, कि ऐसे समय धनञ्जय उसको देखकर कामके वशमें होगये और अपनी अभिलाषा पूरी करनेके लिये राजाके पास पहुंचकर बोले, कि हे महाराज! मैं

महात्मा क्षत्रियका पुत्र हूं मुझको कन्या दान दें, राजा वह बात सुनकर बोले, कि तुम किसके पुत्र हो? तुम्हारा नाम क्या है? अर्ज्जुन बोले, कि मैं पाण्डव कुन्तीपुत्र हूं, मेरा नाम धनञ्जय है। अनन्तर राजा मीठो बातोंमें उनसे बोले, कि हे पुरुषश्रेष्ठ! इस देशमें प्रभञ्जन नामक एक भूपने जन्म लिया था। उनको सन्तान न होनेसे वह सन्तानकी कामनासे भली प्रकार तप करने लगे। पिनाक-धारी ईश्वर उमापति भगवान देवदेव महा-देवने उनको कठोर तपस्यासे प्रसन्न होकर उनको वर दिया, कि पुरुषोंकी परम्परासे उनके इस वंशमें एक एक सन्तान जन्म ले। इस लिये हमारे कुलमें सदा एकही सन्तान उपजती है। मेरे सब पुरखाओंके पुत्र उपजे थे। हे पुरुषेन्द्र! मेरे वंश बढ़ानेवाली यह एकही कन्या हुई है। मैं इसको पुत्र करके समझता हूं। हे भारतवर! मैंने इस कन्याको विधि-पूर्व्वक पुत्रिका बनायो है; इस लिये इस कन्याके गर्भ और तुम्हारे वीर्य्यसे जो एकपुत्र उत्पन्न होगा वह मेरी पुत्रिकाका पुत्र होगा। वह पुत्रही इस कन्याके शुल्कवत होकर मेरे वंशको रक्षा करेगा, इस नियमसे तुम मेरी यह कन्या लो। कुन्ती-पुत्र अर्ज्जुनने "तथास्तु" कहके मान लिया। और उस कन्यासे विवाह कर उस नगरमें तीन वर्ष गंवाया। सुन्दरी चित्राङ्गदाके गर्भसे पुत्र उपजने पर वह उसको गले लगाके और प्रेमसे सम्भाषण करके राजासे विदा होकर देश भ्रमणको निकले।

अर्ज्जुन वनवास पर्व्वमें दो सौ सोलह
अध्याय समाप्त।

———

वैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर भरत-वंश श्रेष्ठ अर्ज्जुन दक्षिण समुद्रके तपस्वियोंसे शोभायमान सब पुण्य तीर्थोंमें गये। उस स्थानमें अश्वमेधका फलदायी पापनाशी प्रसन्न सुपवित्र अगस्त्य, सौभद्र, पौलोम, कारन्धाम, और भारद्वाज यह पांच महातीर्थ थे। उन पांच तीर्थोंके सामने बहुतेरे तपस्वी वसते थे, पर इनके भीतर किसी तपस्वीका वास नहीं था। पुरुषश्रेष्ठ अर्ज्जुनने उन पञ्चतीर्थोंको देखा। उन्होंने उन पञ्चतीर्थोंको पूर्व्वोक्त और धर्म्मज्ञ मुनियोंसे त्यागे हुए देखके उसके सामने वसे हुए तपस्वियोंसे पूछा, कि ब्रह्मवादी ब्राह्मण लोग क्यों यह पञ्चतीर्थ छोड़ देते हैं? तपस्वीगण बोले, कि हे कुरुन-न्दन! इन पञ्चतीर्थोंके जलमें पांच ग्राह हैं, वे तपस्वियोंको मार डालते हैं, सो मुनिलोग इन तीर्थोंमें नहीं वसते।

वैशम्पायनजी बोले, कि पुरुषोत्तम महा-भुज अर्ज्जुन तपोधनोंका वह वचन सुनके उनसे रोके जाने परभी उन सब तीर्थोंको देखने गये। वह पहिले महर्षि सम्बन्धी सौभद्र नामक अच्छे तीर्थमें पहुंच कर उसमें एकायक देहको डुबाकर नहाने लगे। ऐसे समयमें जलके भीतर चलनेवाले एक बड़े ग्राहने उन शत्रु-दमन वीरपुरुषोंमें व्याघ्ररूपी कुन्तीपुत्र धनञ्जयका पांव पकड़ा। महाबली महाभुज पाण्डुपुत्र उस फुर्त्तीसे जलचर जन्तुको लेकर बलपूर्व्वक तट पर उठ आये। हे महाराज! जलचर ग्राह यशो-वन्त अर्ज्जुनसे ऊपर उठाये जातेही एक नारीके स्वरूपमें दिखाई दिया। वह बाला दिव्यरूप सुन्दरतासे चमकती हुई, कल्याणी, मनोरमा और सर्व्व आभूषणोंसे सजी थी। कुन्तीपुत्र धन-ञ्जय उस बड़ी आश्चर्य्य लीलाको देखके अति प्रसन्नचित्तसे उस नारीसे बोले, कि ऐ कल्याणि जलचारि! तुम कौन? क्यों ऐसी बनी हो? और क्यों पहिले ऐसा महापाप किया था? वर्गा नामी वह नारी बोली, कि हे महाबली महा-भाग! मैं देववनमें विराजनेवाली अप्सरा हूं, मेरा नाम वर्गा है, मैं सदासे कुवेरकी प्यारी हूं,

मेरी कामगामी शुभ-लक्षणा और चारसखी हैं. किसी समय मैं उन चार सखियोंकी साथ लोकपालके यहां जा रही थी; उस समय देखा, कि प्रशंसित व्रतधारी एकान्तमें रहनेवाले परम रूपवान एक ब्राह्मण वेद पढ़ रहे हैं। हे महाराज! उनके तपके तेजसे वह वन ढंप गया है; उन्होंने आदित्यकी भांति उस सब स्थानमें उजाला कर दिया है। हम उनकी वैसी अति तपस्या और आश्चर्य रूप देखकर तपमें विघ्न डालनेकी इच्छासे वहां उतरगयीं। हे भारत! सौरभयी, समीचि, बुद्बुदा, लता और मैं यह पांच एकत्र हो कर उस ब्राह्मणके यहां एकबारही जा पहुंची। हे वीर! हम उनके लुभानेके लिये हंसने और गीत गाने लगीं; पर उस विप्रने किसी प्रकारसे हमारी ओर ध्यान नहीं दिया। उनका मन निर्म्मल तपस्यामें निश्चल बना रहा, किसी प्रकार नहीं टला। हे क्षत्रिय नर! अनन्तर उन्होंने क्रोधित होके हमको यह शाप दिया, कि तुम ग्राह बनके जलमें सौ वर्ष चरा करोगी।

अर्ज्जुन वनवास पर्व्वमें दोसो सतरह
अध्याय समाप्त।

वर्गा बोली, कि हे भरतवंशश्रेष्ठ! अनन्तर हमने कातर होकर उन अच्युत तपोधनकी शरण लेकर कहा, कि हे तपोधन! हमने रूप, यौवन और कामके अहङ्कारसे यह अनुचित कार्य्य किया है। हे द्विज! हमारी क्षमा करनी योग्य है। यही हमारे लिये मृत्युवत हुआ है, कि हम ऐसे जितेन्द्रिय मुनिको लुभानेकी इच्छासे यहां आई हैं, धर्म्मचारी लोग विचारते हैं, कि नारी वधके अयोग्य बनायी गयी हैं; सो आप हमारी हिंसा न करें। हे धर्म्मज्ञ! पण्डित लोग कहते हैं, कि ब्राह्मण सर्व्वप्राणियोंके मित्र हैं; हे कल्याणसद्युक्त! पण्डितोंके इस वचनको सत्य होने दें। शिष्टलोग शरण लिये हुए लोगोंकी रक्षा करते हैं; हमने आपकी शरण ली हैं; सो आपको हमारी क्षमा करनी चाहिये।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे वीर! अनन्त सूर्य्यचन्द्रमाकी उजला रखनेवाले शुभकर्म्म किये धर्म्मात्मा वह ब्राह्मण अप्सराओंकी यह बात सुनके प्रसन्न हुए और बोले, कि शत और शत सहस्रका अर्थ अनन्तकालभी होता है, पर मैंने "शत वर्ष" यह शब्द कहा है, उसका अर्थ सौही होगा, अनन्तकाल नहीं होगा। तुम जलचर ग्राह बनके पुरुषोंको पकड़ा करोगी; पर शत वर्ष पूर्ण होने पर एक पुरुषश्रेष्ठ तुमको पकड़ कर स्थल पर उठा लेंगे, तब तुम फिर अपना रूप प्राप्त करोगी, मेरी बात कभी झूठी नहीं ठहरेगी। मैंने पहिले कभी हंसीमेंभी झूठी बात नहीं कही है। तुम्हारे छुटकारा पाने पर वे सब तीर्थ, नारीतीर्थ नामसे प्रख्यात होकर साधुओंके तारनेवाले और पुण्यदायी बनेंगे! वर्गा बोली, कि अनन्तर हम उन ब्राह्मणको प्रणाम कर परिक्रमा दे दुःखी चित्तसे वहांसे भागकर सोचने लगी, कि जो महापुरुष हमको स्वरूप दिलावेंगे उनसे कहां थोड़े कालके बीच हमारी भेंट हो सकती है? हे भारत! हम सब ऐसी चिन्ता करती हुई, पल भरमें महाभाग देवर्षिको देखकर प्रसन्न चित्तसे उनके पांव पर सिरनायके लज्जासे मुह नीचे कर खड़ी रहीं। उनके हमारे दुःखका कारण पूछने पर हमने आद्योपान्त सब ब्योरा कह सुनाया। वह हमारी बात सुनके बोले, कि दक्षिण समुद्रमें प्रायः जलभरी ठौरमें पांच तीर्थ हैं, तुम वहां जाओ, देर मत करो। उस स्थानमें शुद्धात्मा पुरुषश्रेष्ठ पाण्डुपुत्र धनञ्जय तुमको इस दुःखसे निःसन्देह बचावेंगे। हे वीर! हम सब उन महर्षिका वचन सुनके यहां आयी थीं। हे अनघ! अब सचमुच तुमसे मुक्त होगई। मेरी वे चार सखी इसी प्रकार दूसरे जलमें हैं, हे वीर!

तुम इस प्रकार उन चारोंको भी मुक्तकर शुभ कर्म्मका फल लो।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भूपाल! अनन्तर वीर्य्यवन्त पाण्डवश्रेष्ठ अर्ज्जुनने प्रसन्नमनसे उन सबोंहीको उस शापसे बचाया। हे महाराज! अप्सरायें उस जलसे उठके अपने पहिलेके रूपमें दीखपड़ीं। इस प्रकार अर्ज्जुन उन पवित्र तीर्थोंको सुधारकर उनको विदाकर देके चित्राङ्गदाको देखनेके लिये फिर मणिपुरको पधारे। हे राजन! तब उनके वीर्य्य और चित्राङ्गदाके गर्भसे उपजे बभ्रुवाहन नामक पुत्र वहां राजा हुए थे। पार्थ चित्राङ्गदाको देखकर वहांसे गोकर्णकी ओर चले।

अर्ज्जुन वनवासपर्व्वमें दोसौ अठारह अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर अति विक्रमी अर्ज्जुन पश्चिम प्रदेशमें जितने तीर्थ और पुण्य स्थान हैं, एक एक कर उन सबोंमें गये और पश्चिम समुद्रमें जितने तीर्थ और स्थान हैं, वहां घूम घाम अन्तमें प्रभास तीर्थमें जा पहुंचे। मधुसूदन माधवने सुना, कि अति पुण्ययुक्त सुन्दर प्रभास तीर्थमें अजेय सखा बीभत्सु जा पहुंचे हैं। अनन्तर वह उनको भेंटके लिये वहां गये। उस प्रभासमें कृष्ण और पाण्डवसे परस्परकी भेंट होने पर दोनों प्यारे सखा ऋषि नर और नारायनरूपी कृष्ण तथा पाण्डव एक दूसरेको गले लगाके कुशलक्षेम पूछकर उस ठौरमें बैठे वासुदेव अर्ज्जुनका भ्रमण वृत्तान्त सुननेकी इच्छासे बोले, कि हे पाण्डव! तुम क्यों इन तीर्थोंमें फिरा करते हो? अर्ज्जुनने आद्योपान्त सब कह सुनाया। प्रभु वार्ष्णेयने सुनकर कहा, कि यह उचितही हुआ है। अनन्तर वे दोनों प्रभाससे मनमाने विहारकर रहनेके लिये रैवतक पर्व्वत पर गये। इसके पहिलेही कृष्णकी आज्ञासे नौकरोंने पर्व्वत पर भांति भांतिकी भोजनकी सामग्री बनवा रखी थी, इतनी कि जिनसे पहाड़ छिप गया था। अर्ज्जुन वासुदेवके साथ वहां भोजनादि कर और नट नाचनेवालोंके नाच आदि देखने लगे। आगे महामति पाण्डव उनको यथोचित पारितोषिक देके विदा कर भलीप्रकार सजी सेज पर जाकर सोये। अनन्तर महाभुज अर्ज्जुन उस शुभ बिछौने पर लेटकर कृष्णसे भांति भांतिकी नदी ताल पर्व्वत,वन आदि की कथा कहने लगे। हे जनमेजय! वह इस प्रकारकी नाना कथा कहते हुए सो गये। आगे रात बीतने पर मीठे गीत स्तुतिपाठ और वीणा की ध्वनिसे जग उठे; और नित्यकृत्योंका अन्त कर यादवोंसे नमस्कार किये जाय सुवर्णके रथ पर द्वारकाको गये। हे जनमेजय! कुन्तीनन्दनके गौरवके लिये द्वारकापुरीके राजपथ, फुलवाड़ी और भवन आदि सब ठौर सजाये गये थे। सैकड़ों सहस्रों द्वारकावासी अर्ज्जुनको देखनेके लिये राजपथ पर वेगसे पहुंचने लगे; पाण्डवदर्शनके लिये सैकड़ों सहस्रों भोज वृष्णि और अन्धकवंशी नर नारियोंकी बड़ी भीड़ लगी; अर्ज्जुन भोज वृष्णि और अन्धकवंशियोंसे यथायोग्य सत्कृत हुए, नमस्कार योग्य जनोंको नमस्कार किया, और उनसे प्रणाम किये जाय और सब कुमारोंको पावलगी ले सम अवस्थावालोंको वारवार गले लगाया। आगे कृष्णके साथ भांति भांतिके रत्न तथा भोगको सामग्रीयोंसे भरे पूरे सुन्दर भवनमें बहुत दिन काटे।

दोसौ उन्नीस अध्यायमें अर्ज्जुन वनवास पर्व्व समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर कुछ दिनों तक उस रैवतक पर्व्वत पर वृष्णि और अन्धकवंशियोंका उत्सव होने लगा। भोजवृष्णि और

अन्धकवंशी वीर उस गिरि सम्बन्धी उत्सवमें सहस्रों ब्राह्मणोंको भांति भांतिकी सामग्री दान देने लगे। हे महाराज! रैवतक पर्व्वतकी चारों ओरकी उपत्यका और अधित्यकायें रत्नोंसे सजे कल्पवृक्ष समान कामनाओंकी वस्तुओंसे भरे रहोंसे सुहाने लगी। बाजावाले नाचनेवाले और गानेवाले नाना भांतिके बाजे नाच और गान आरम्भ कर दिये। अति वीर्य्यवन्त वृष्णिवंशी कुमारगण सज धज कर सुनेले रथो पर उधर घूमते हुए सुहाने लगे। सैकड़ों, सहस्रों पुरवासी पत्नी और साथियों समेत अनेक प्रकारके यान पर टहलने लगे। कोई कोई पैदलही घूमने लगा। हे भारत! रैवतीके साथ प्रभु हलधर मधुसे मतवाले सहचर गन्धर्व्वोंसे घिरे जाय घूमने लगे। वैसेही सहस्र नारियोंके साथ वृष्णियोंके राजा प्रतपी उग्रसेन सहचर गन्धर्व्वोंसे घेरे जाय घूमने घामनेमें प्रवृत्त हुए। युद्धमें कठोर शाम्ब और रुक्मिनीकुमार मधुसे मतवाले हो सुन्दर माला और वस्त्र पहिने देवोंकी भांति विहार करने लगे। अक्रूर, सारण, गद, बभ्रु, विदूरथ, निशठ, चारुदेष्ण, पृथु, विपृथु, सत्यक, सात्यकि, भङ्गकार महारव, हार्दिक्य, उद्धव, और दूसरे बहुतेरोंने अलग अलग स्त्री और गन्धर्वोंके साथ वहां टहलते हुए उस महोत्सवकी शोभा बढ़ायी। इस प्रकार उस मनोहर अति आश्चर्य्य कौतूहलके वर्त्ताव होने पर वासुदेव और पार्थ एकत्र हो टहलने लगे। उन्होंने इधर उधर घूमते समय सखियोंसे घिरी नाना आभूषणोंसे बनीठनी, शुभलक्षणोंसे जड़ी वसुदेवकन्या सुभद्राको देखा। अर्ज्जुन उस कोलाङ्गी बालाको देखकरके ही मदनबाणसे मोहित हुए। हे भारत! पुण्डरीकाक्ष कृष्ण उनके मनको सुभद्रा पर बहुत चलते देखके हंसकर बोले, कि यह क्या है? वनवासीके मनमेंभी काम डामाडोल मचाता है? हे पार्थ! यह कन्या सारणकी सगी बहिन, मेरीभी बहिन है, इसका नाम सुभद्रा है। यह बालाही मेरे पिताकी प्यारी कन्या है। तुम्हारा चित्त इस पर झुका हो, तो कहो, मैं स्वयं ही पितासे यह कहूं, तिससे तुम्हारा मङ्गल हो सकता है। अर्ज्जुन बोले, कि वसुदेवकी कन्या, वासुदेवकी बहिन अनुपम रूपवती यह कन्या किसके मनको मोहित न करेगी? तुम्हारी बहिन यह सुभद्रा यदि मेरी रानी बने, तो इसमें सन्देह नहीं, कि तुमसे मेरा सर्व्व प्रकार कल्याण होगा। हे जनार्द्दन? कहो, अब किस उपायसे सुभद्रा मिल सकती है। यदि मनुष्यको सामर्थ में हो तो सर्व्व प्रकारसे वह करूं। वासुदेव बोले, कि हे पुरुषश्रेष्ठ पार्थ! क्षत्रियोंका स्वयम्वर विवाहका नियम तो है, पर उसकी शङ्का होरही है, क्योंकि नारियोंका स्वभाव और हृदय शूरता पाण्डित्य आदि पर नहीं चलता। वे पहिले देखनेमें सुन्दर जन पर मोहित होती हैं। अतएव शूर, क्षत्रियोंके लिये बलसे कन्या हर कर विवाह करनेके जिस नियमको धर्म्मज्ञगण प्रशंसा करते हैं, हे अर्ज्जुन! तुम उस विधानके अनुसार बलपूर्व्वक इस शुभलक्षणा मेरी बहिनको हरलो, स्वयम्वरका प्रयोजन नहीं है, क्योंकि कौन जानता है, कि सुभद्राका कैसा अभिप्राय है? अनन्तर अर्ज्जुन और कृष्णने क्या करना उचित है, उसका निश्चय कर इन्द्रप्रस्थमें धर्म्मराजके यहां शीघ्र जानेवाला दूत भेज दिया। महाबाहु पाण्डवनन्दन युधिष्ठिरने वह सब वृत्तान्त सुनतेही उसको आज्ञा भेजवायी।

सुभद्राहरण पर्व्वमें दोसौ बीस
अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले कि हे जनमेजय! अनन्तर युधिष्ठिरकी आज्ञा पाने पर पुरुषश्रेष्ठ धनञ्जयने

वासुदेवको उपदेशसे क्या करना है, ठीक कर उनको आज्ञा लेकर यात्रा की। वह खड्ग, कवच, गोधा, उङ्गली रक्षक आदि पहिने वह सनाह हो शैव्य और सुग्रीव नामक घोड़े जोते, जाल-मालासे सजे, विधिपूर्व्वक कल्पित, सर्व्वशास्त्रोंके अनुसार बने, प्रज्वलित अग्नि समान चमकीले सुनीले, बादल सदृश गम्भीर शब्द करनेवाले और विपक्षीके हर्षनाशी रथ पर चढ़ आखेटके मिससे चलने लगे। सुभद्रा शैलराज रैवतकका पूजकर परिक्रमा दे देवोंको पूजा कर और ब्राह्मणोंसे स्वस्ति कहलवा कर द्वारकाकी ओर जारही थी, कि ऐसे समय कामवाणसे घायल कुन्तीनन्दन धनञ्जयने उसको ओर दौड़के एकायक उस सर्व्वाङ्ग-सुन्दरी सुभद्राका रथ पर चढ़ाया। पुरुषव्याघ्र अर्ज्जुन इस प्रकारसे सुन्दरी सुभद्राको लेके सुवर्णरथ पर अपने नगरको ओर जाने लगे। सैनिकलोग सुभद्राको अर्ज्जुनसे पकड़ी जाती देखकर चिल्लाते हुए द्वारका नगरकी ओर दौड़े। उन सबोंने सर्व्व प्रकारसे देवसभा समान उस राजसभामें उपस्थित हो सभापालसे अर्ज्जुनका विक्रम-वृत्तान्त कह सुनाया। सभापाल उनसे सब वृत्तान्त सुनके सुवर्णसे सुहावनी बड़ी आहट मचानेवाली युद्धके लिये सजनेकी सूचना देनेवाली भेरी बजाने लगा। भोज वृष्णि और अन्धक लोग उस भेरीके शब्दसे उदास हो, अन्नपान तज करके चारों ओरसे बटुरने लगे। तेज अग्नि जिसप्रकार अपना आधार इन्धन पकड़ लेता है, वैसेही महारथी पुरुषव्याघ्र वृष्णि और अन्धक लोग परम सुन्दर चादरोंसे आच्छादित मणियोंसे खचित अग्निकी उजाले समान चम-कीले सैकड़ों सुनहले सिंहासनों पर जा बैठे। देवोंके समागमकी भांति उनके बटुरने पर सभापालने उनसे अर्ज्जुनका किया कार्य्य कह सुनाया। अहङ्कारसे नेत्रलाल किये गर्व्वित वे वीरगण उस वृत्तान्तको सुनतेही रिसाकर सिंहासनोंसे उठ खड़े हुए। उनमेंसे किसी किसीने कहा, कि तुरन्त रणकी तय्यारी करो; किसी किसीने कहा, कि प्रास लाओ; किसी किसीने कहा मूल्यवान शरासन और बड़े बड़े कवच लाओ; किसी किसीने चिल्लाकर सारथीको पुकारके कहा, कि तुरन्त रथ जोतो; कोई कोई शीघ्रताके लिये सुवर्ण जड़े घोड़े लेकर रथ जोतने लगे। तब रथ कवच ध्वजा आदि लानेके लिये वीरोंका कोलाहल उठने लगा। अनन्तर गलेमें वनमाला डाले कैलासपर्व्वत समान नीलाम्बर पहिरे मदसे उन्मत्त मदोन्मत्त-बलदेवजी बोले, कि जनार्द्दनके कुछ न कहतेहो तुम यह क्या कर रहे हो? इनका अभिप्राय न जान करकेही तुम क्रोधके मारे गर्ज्जन कर रहे हो। यह महामति कृष्ण पहिले अपना मत प्रकट करें, आगे वह जानके तुम वेगसे वही पूरा करना। अनन्तर सब जन धीमान हलधरकी सुनने योग्य वह बात सुनके उनको साधु साधु करकर चुप हो, फिर सभामें बैठ गये; तब शत्रुमर्द्दन रामने वासुदेवसे कहा कि, जनार्दन तुम क्यों कुछ नहीं कहते? क्यों उदासीन समान बैठे ताक रहे हो? अच्युत! हम सबने पृथापुत्रका भले प्रकार सत्कार किया था। वह कुबुद्धि कुलाङ्गार वैसे सत्कारके योग्य नहीं है; जो सुवंशी करके अपना परिचय देता है, वह कभी अन्न-खाकर अन्नके बासनको तोड़ नहीं सकता है। यद्यपि ऐसा वैवाहिक सम्बन्ध बनानेका मन चाहता है, तोभी कोई ऐश्वर्य्य चाहनेवाला पहिलेका उपकार स्मरण कर ऐसे साहसके काममें हाथ नहीं डालते हैं! उस पाण्डवने हमारा अनादर कर और तुमको तुच्छ समझके अपनी मृत्यु-स्वरूप सुभद्राको हर लिया है। गोविन्द! उसने मेरे शिर पर लात मारी है; सो सर्प जिस प्रकार दूसरेके पांवको छू नहीं सकता, तैसेही मैं भी कभी यह न सह सकूंगा। भोज, वृष्णि

और अन्धक सबोंने बादल और नगाड़ेकी भांति उन गरजते हुए बलदेवकी बातको मान लिया।

दोसौ इक्कीसवें अध्यायमें सुभद्राहरण पर्व्व समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर क्षत्रियोंके निज निज वीर्य्यके अनुसार बार बार इस प्रकार कहने पर, वासुदेव धर्म्मार्थयुक्त यह बचन कहने लगे, कि अर्ज्जुनने जो कार्य्य किया है, उससे हमारे कुलका अपमान नहीं हुआ; वास्तवमें इसका सन्देह नहीं कि उन्होंने हमारा सम्मान बहुत बढ़ाया है। वह जानते हैं, कि हम धनके लोभी नहीं हैं, इस लिये उन्होंने धन देकर विवाहकी चेष्टा नहीं की है। और स्वयंवरमें शङ्का है, सो उन्होंने उसकाभी प्रयत्न नहीं किया। पशुकी भांति कन्यादान किसी क्षत्रियको प्यारा नहीं है, और कन्या बेचनाभी किसी मनुष्यकी सम्मति-युक्त नहीं। मुझको जान पड़ता है, कि इन सब दोषोंकी भली भांति आलोचना करकेही अर्ज्जुनने एकायक कन्या हरली है। सुभद्रा जैसी यशस्विनी है, पार्थभी वैसेही गुणवन्त हैं, सो यह सम्बन्ध अयोग्य नहीं है; इसकाभी विचार कर उन्होंने कन्या बलसे हरली है। फिरभी भरतवंशी यशोवन्त शान्तनुनन्दन कुन्ती-भोजके दौहित्र उस अर्ज्जुनको ऐसा कौन है, जो मित्र बनाना न चाहता होगा? विशेष इस त्रिलोकी भरमें भगनेत्र हर विरूपाक्ष महादेवके बिना कोईभी ऐसा नहीं दीखता; जो बलपूर्व्वक अर्ज्जुनको परास्त कर सके। हे आर्य्य! उनका वह रथ, मेरे वे सब घोड़े, वह स्वयं वैसे योद्धा और वैसो शीघ्रतासे शस्त्र फेंकना (यह सब बने रहते) इन्द्रलोक आदि जितने भर लोक हैं, उनमें ऐसा कौन होगा जो उनका सामना कर सके? सो मेरा विचार यह है; कि तुम तुरन्त दौड़कर प्रसन्नचित्तसे धनञ्जयको ढाढ़स देके लौटा लाओ। यदि वह बलपूर्व्वक तुम सबोंको परास्त कर अपनी राजधानीमें जाय, तो आजही तुम्हारा यश लोप हो जायगा, ढाढ़स देनेसे तुम्हारी पराजय नहीं होगी। हे जनाधिप! यादवोंने वासुदेवकी वह बात सुन कर उसके अनुसार कार्य्य किया। प्रभावी अर्ज्जुनने द्वारियोंसे आदर पाय द्वाकापुरीमें लौटकर सुभद्रासे विवाह कर नाना प्रकार मनमाने विहार कर वर्ष भर काल गंवाया। अनन्तर पुष्करतीर्थमें जाय शेष काल काटने लगे। बारह वर्ष होजाने पर खाण्डवप्रस्थमें लौट राजा युधिष्ठिरके निकट जा पहुंचे। आगे वह विनयपूर्व्वक राजा युधिष्ठिर और ब्राह्मणोंको पूजकर द्रौपदीके निकट गये। द्रौपदी प्रेमको रिसके साथ उनसे बोली, कि हे कुन्तीपुत्र! फिर यहां क्यों? जहां सात्वतपुत्री है, वहीं जाओ; रस्सीसे बंधी वस्तुके ढेर पर एक और भी कठिन बन्धन डालनेसे पहिलेका बन्धन अवश्यही ढीला हो जाता है, अब तुम नये प्रेमके जालमें बहुत फंसे हो, सो पहिलेका बंधा मेरे प्रेमजालका बन्धन ढीला होगया है। धनञ्जय द्रौपदीको इस प्रकार नाना रीतिसे बिलपते देखकर बार बार समझाने लगे और बार बार क्षमा मांगी। अनन्तर उन्होंने लाल पाटम्बर पहिरे हुई सुभद्राके यहां जाय वेगसे उसका गोपी वेष बनाके उसको अन्तःपुरमें भेजवाया। वीरपत्नी यशस्विनी ताम्र रङ्गकी बड़ी बड़ी आंखवाली उस बालाने उस वेषमें औरभी सुहाकर परम सुन्दर भवनमें पहुंचके पहिले कल्याणी कुन्तीके निकट जाय उनके पांवको प्रणाम किया। कुन्तीने अति प्रसन्न हो सर्व्वाङ्ग सुन्दरी नयी बधू सुभद्राका सिर चूम कर अनेक अशीस दी। अनन्तर पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखवाली सुभद्राने वेगसे द्रौपदीके

निकट जाय उसको प्रणाम किया और कहा, कि मैं आपकी दासी आयी हूं। कृष्णा उसी क्षण उठकर माधवकी बहिनको गले लगा प्रीतिपूर्व्वक बोली, कि तुम्हारे पतिका कोई सपत्न न रहै। सुभद्राने तब प्रमुदित चित्तसे "तथास्तु" यह बात कही।

हे जनमेजय! अनन्तर महारथी पाण्डवगण और कुन्ती परम प्रीति पूर्व्वक रहने लगी। शत्रुओंके दुःखदायी विशुद्धात्मा पुण्डरीकाक्ष श्रीकृष्णचन्द्रने जब, सुना कि पाण्डवश्रेष्ठ अर्ज्जुन इन्द्रप्रस्थमें जाकर राजधानीको पहुंचे हैं, तब वह युद्धविद्यामें पण्डित महारथी वीर सेनाओंकी अच्छी रखवारीमें भ्राता और पुत्रोंसे घेरे जाय और श्रेष्ठ वृष्णि तथा अन्धकोंसे मिलकर बलभद्रके साथ खाण्डवप्रस्थमें आ पहुंचे। और धीमान अति कीर्त्तिवन्त दाता अक्रूर, वृष्णि सेनापति अतिते जस्वी शत्रुनाशी अनावृष्टि, बड़े यशोवन्त उद्धव, साक्षात वृहस्पतिके चेले अति बुद्धिमान महानुभव सत्यक, सात्यकि, सात्वत, कृतवर्म्मा, प्रद्युम्न, शाम्ब, निशठ, शङ्कु, चारुदेष्ण, विक्रमी झिल्ली, विपृथु, सारण और महाभुज पण्डित गद, यह सब और बहुतेरे दूसरे वृष्णि, भोज और अन्धक अनेक यौतुक लेकर उस स्थानमें आये। राजा युधिष्ठिरने यह सुनकर, कि माधवका शुभागमन हुआ, उनको आदर पूर्व्वक लिवालानेके लिये नकुल और सहदेवको भेजा। बड़े भारी वृष्णिदलने उन दो पुरुषोंसे आदर पूर्व्वक लिवाये जाय खाण्डवप्रस्थ पुरीमें प्रवेश किया। तब हृष्ट पुष्ट जनोंसे भरे वणिकोंसे सुहावने उस नगरकी ठौर ठौरमें फूलोंकी माला लटकती, जलती हुई सुगन्धी अगुरुकी गन्ध उड़ती, तथा पवित्र गन्धवाले चन्दनका रस छिरका था और वहांके सब राजपथ साफ आर्द्र और ध्वजा पताकाओंसे सुहाते थे। वृष्णि, अन्धक और भोजोंसे घेरे पुरुषोत्तम महाभुज केशव रामके साथ उस नगरमें आकर सहस्रों ब्राह्मण और पुरवासियोंसे आदर पूर्व्वक ग्रहण किये गये; अनन्तर इन्द्रपुरके समान राजभवनमें प्रवेश किया। राजा युधिष्ठिरने विधि पूर्व्वक बलदेवजीको स्वागत कर श्रीकृष्णकी सिर सूंघके हाथोंसे गले लगाया। कृष्णने प्रसन्न मनसे विनयपूर्व्वक उनकी पूजा कर पुरुषश्रेष्ठ भीमको विधिपूर्व्वक नमस्कार किया। युधिष्ठिरने उन सब वृष्णि और अन्धकोंको यथा नियम आदरसे ग्रहण किया। उन्होंने किसी किसीको गुरुकी भांति प्रणाम किया, किसी किसीसे समअवस्थावालेंके सदृश व्यवहार किया और किसी कीसीको प्रेमालापसे सम्मानित किया; और किसीने उनको प्रणाम किया। अति यशोवन्त श्रीमान कमलनेत्र कृष्णने विवाहकी रीतिके अनुसार वर और वरकी ओरके लोगोंको अच्छे धन दिये और सुभद्राको ज्ञातियोंके देने योग्य यौतुकके स्वरूपमें धन दिया। उन्होंने पाण्डवोंको सुशिक्षित सारथि समेत चार घोड़ेके किङ्किणीजाल मालासे सुहावने सहस्र सुनौखे रथ, मथुरा खण्डकी तेजस्वी बहुत दूध देने वाली दश सहस्र गौ, चन्द्रमा समान रङ्गवाली विशुद्ध सुवर्णसे सजी सहस्र घोड़ी, काले केशरवाली सुफेद पवन समान तेजस्वनी अच्छी सिखी सिखायी सहस्र घोड़ी, स्नान-पानोत्सव प्रयोग दक्ष सेवामें तेज युवती गौर रङ्गकी सुवेश पहिनी, रोगोंसे छूटी, सुन्दरी भली प्रकार बनीठनी गलेमें सोनके सौ मुहर पाहनी हुई सहस्र दासी वाह्लिक देशीय सैकड़ों रुहलों घोड़े, भांति भांतिके मूल्यवान वस्त्र और कम्बल आदि अनेक सामग्री प्रसन्न मनसे दे दी, और सुभद्राको मनुष्यके लेजाने योग्य दश भार विशुद्ध और बिन मिलावटी दो प्रकार अग्निके रंगका सुवर्ण यौतुकमें दे दिया। हलधर रामने प्रसन्न हो विवाहके विषयमें

सम्बन्धको बड़ाई बढ़ानेके लिये नाना मद प्रगट करनेवाले पहाड़की समान बड़े साहस प्यारे, युद्धसे मुंह न मोड़ने वाले सुवर्णहारसे सजे, झनकती हुई घण्टालिया लटकाये बैठनेके हौदे लगाये अनेक प्रकारके सुन्दर सुन्दर सहस्र हस्ती महावत समेत धनञ्जय को दिये। वस्त्र कम्बलादि रूपी फेनभरे बड़े बड़े गज रूपी बड़े ग्राहोंसे पूर्ण और झण्डेरूपी शैवालोंसे पूरे उस अनन्त धन-रत्न रूपी जलकी लहरोंके प्रशस्त पाण्डवरूपी सागरके भर जानेपर वह शत्रुओंको शोकमें डुबाने लगा। धर्मराज युधिष्ठिरने वह सब लेकर वृष्णि और अन्धकोंके महारथियोंका भले प्रकार सत्कार किया। अनन्तर पुण्यवन्त जन जिस प्रकार देवलोकमें विहार करते हैं, तैसेही महात्मा कुरु, वृष्णि और अन्धक-वंशी लोग वहां एकत्र होकर आनन्द लूटने लगे। वे अपनी अपनी प्रीतिके अनुसार वहां ठौर ठौरमें बड़े बड़े यानों पर घूम और ताल बजा बजाके नाचने गानेका बड़ा कोलाहल मचाते हुए यथा योग्य विहार करने लगे। अति वीर्यवन्त महारथी अन्धक और वृष्णि-लोग उस नगरमें बहुत दिनोंतक आनन्द उड़ा अन्तमें कौरवोंसे पूजे जाय उनके दिये अमल रत्नोंको ले रामको आगे करके द्वारका पुरीमें गये। हे भारत! बड़े यशोवन्त महानु-भव वासुदेव अर्जुनके साथ उस सुन्दर इन्द्रप्रस्थ नगरहीमें रहे और उनके साथ यमुना तटपर मृग शूकर विद्ध करते हुए आखेटका आनन्द लेने लगे।

अनन्तर शचीने जिस प्रकार प्रख्यात जयन्त-को प्रसव किया था, तैसेही कृष्णकी प्यारी बहिन कल्याणी सुभद्राने दीर्घबाहु चौड़ी छातीवाले बैल समान बलवान नरोंमें श्रेष्ठ शत्रुमर्द्दन वीर अभिमन्युको प्रसव किया। वह शत्रुनाशी पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन-कुमार अभी अर्थात् निर्भयचित्त मन्युयुक्त हुए थे, सो सब लोग उनको अभिमन्यु कहते थे। यज्ञस्थलमें मथनद्वारा जिस प्रकार शमीगर्भसे अग्नि उपजता है, वैसेही सात्वतीके गर्भसे धनञ्जयसे उस महारथी अभिमन्युने जन्म लिया था। हे भारत! उस कुमारके जन्म लेतेही बड़े तेजस्वी कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने ब्राह्मणोंको दश सहस्र गौ और दश सहस्र निष्क दान दिया। चन्द्रमा जिस प्रकार सब प्रजाओंका प्यारा है, वैसेही अभिमन्यु बालपनसे पिता, चचे और वासु-देवके प्यारे बने। कृष्णने उनके सब शुभ जात-कर्म्म किये थे। वह असाधारण बालक शुभ तिथिके चन्द्रमाकी समान दिन पर दिन बढ़ने लगा। वेदका जानकर शत्रुनाशी अभिमन्युने अर्जुनसे आदान, सन्धान, मोचण विनिवर्त्तन, स्थान, मुष्ठि प्रयोग, प्रतिकार, मण्डल और भेद इन दशाङ्ग युक्त तथा मन्त्रमुक्त, पाणिमुक्त, मुक्ता-मुक्त और अमुक्त यह चार पाद-युक्त सम्पूर्ण दिव्य और मानुषी वेदको शिक्षा की। महाबली अर्जुनने उनको अस्त्र विज्ञान और सौष्ठव और उत्सर्पण प्रसर्पण आदि सब क्रियाओंके विषयमें अच्छी शिक्षा दी; उन्होंने शास्त्रमें और प्रयोगके विषयमें उसको अपने सदृश बनाया और उसे गुणयुक्त परपराभव सर्व लक्षणसे भरे, कठोर, बैलके समान कन्धेवाले बड़े मुखवाले सर्प समान, सिंह सदृश दर्पयुक्त, बड़े चापधारी उन्मत्त गजकी भांति विक्रमी, बादल और नगाड़ेके समान गरजने वाले पूर्णचन्द्रानन और शूरता वीर्य तथा डीलडौलमें कृष्णकी भांति देखकर सन्तोष माना। देवराज जिसप्रकार अर्जुनको देखते थे अर्जुन उस पुत्रको वैसेही देखते रहे।

शुभलक्षणा पाञ्चालीनेभी पांच पतियोंसे पांच पर्व्वत समान बड़े वीर पञ्चपुत्र प्राप्त किये। अदितिने जिसप्रकार देवोंका प्रसव किया था, वैसेही पाञ्चालीने युधिष्ठिरसे

प्रतिविन्ध्य, वृकोदरसे सुतसोम, अर्जुनसे श्रुत-कर्म्मा, नकुलसे शतानीक, सहदेवसे श्रुतसेन ये पांच महारथी वीरपुत्र प्रसव किये। ब्राह्मणोंने शास्त्रोंके अनुसार यह जानकर, कि युधिष्ठिरका पुत्र प्रतिविन्ध्य पर्व्वतकी भांति शत्रुको मारने योग्य होगा, उसका नाम प्रतिविन्ध्य रखा। सहस्र सोमयज्ञ करनेके पीछे भीमसेनसे सोमके उजाले समान तेजस्वी बड़े चापधारी सुतके उपजनेसे उसका नाम सुतसोम हुआ। किरीटीके अनेक श्रुतकर्म्म कर लौटने पर उनका वह पुत्र उपजा था, सो उसका नाम श्रुतकर्म्मा हुआ। कुरुवंशकी कीर्त्ति बढ़ानेवाले शतानीक नाम एक राजर्षि थे, नकुलने उस राजाके नामके अनुसार अपने पुत्रका नाम शतानीक रखा था और सहदेवसे द्रौपदीके जिस पुत्रने जन्म लिया था, वह कृत्तिका नक्षत्रमें हुआ था, सेनापति कार्त्तिकेय कृत्तिकाको सन्तान थे, सो सहदेवके पुत्रका नाम श्रुतसेन हुआ। हे महाराज! द्रौपदीके कुमारोंमें हरेकने एक दूसरेके वर्ष वर्ष भर पीछे जन्म लिया था, वे सब एक दूसरेके हित चाहनेवाले और यशोवन्त हुए थे। हे भरतवंश श्रेष्ठ! पुरोहित धौम्यने विधिपूर्व्वक उनका जातकर्म्म चूड़ा उपनयन संस्कार कर्म्म एकके बाद दूसरा, उसी रीतिसे सब कराया। अनन्तर सुचरित्र बालकोंने वेद पढ़के अर्जुनसे सब दिव्य और मानुषी अस्त्रोंकी शिक्षा ली। हे राजशार्द्दूल! पाण्डवलोग देवकुमारोंके समान उन सब चौड़ी छातीवाले कुमारोंको लाभ कर प्रसन्न हुए।

दो सौ बाईसवें अध्यायमें यौतुक-आहरण पर्व्व समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भारतश्रेष्ठ! पाण्डवगण राजा धृतराष्ट्र और शान्तनुनन्दन भीष्मको आज्ञासे इन्द्रप्रस्थमें बस कर दूसरे राजाओंको वशमें लाने लगे। आत्मा जिस प्रकार पुण्यलक्षणयुक्त शरीरको अवलम्ब कर सुखसे विराजती है, वैसे ही सब प्रजा धर्म्मराज युधिष्ठिरको आश्रय कर सुखसे रहने लगी। नीतिमान युधिष्ठिर धर्म्म, अर्थ, काम इन तीनों वर्गों की, अपने बन्धुओंकी भांति इस प्रकार सेवा करने लगे, कि उनमें एक दूसरेका बिगाड़ न उभड़ने पावे। धर्म्म, अर्थ, काम, मानो यह देह धरके धरती पर उतर आये थे; राजा युधिष्ठिर मानो उनमें एक चौथे बन कर शोभा पाने लगे। प्रजाओंने उन राजाको अच्छे वेद-पाठी बड़े यज्ञकारी और सम्पूर्ण पुण्यवन्त प्राप्त किया था। उनके साम्राज्यके दिनोंमें राजाओंकी लक्ष्मी न टलती, चित्त परब्रह्मकी ओर झुका और धर्म्म बहुतही बढ़ा चढ़ा था। जिस प्रकार प्रयुज्यमान चतुर्वेदसे फैला हुआ बड़ा यज्ञ सुशोभित होता है, वैसेही धर्म्मराज युधिष्ठिर चार भाइयोंसे और भी अधिक सुहाने लगे। जिस प्रकार देवगण प्रजापतिजीको घेरकर उपासना किया करते हैं, वैसेही धौम्य आदि बृहस्पति सदृश प्रधान प्रधान ब्राह्मणगण उनकी चारों ओर घेरकर उपासना करते थे। पूर्णचन्द्रमा समान निर्म्मल धर्म्मराज युधिष्ठिरकी ओर प्रजाओंके नयन और मन दोनों एकहीरूप झुक पड़े थे। यही नहीं, कि प्रजा उनको राजाही जान कर प्रेमी बनी थी, वरण वह ऐसेही कार्य्यमें दत्त-चित्त होते थे, कि जिनसे प्रजाको सन्तोष मिले। वह बुद्धिमान बड़े पाण्डव मीठी बोली बोलते थे, उनका वचन कभी झूठा, युक्तिके विरुद्ध असह्य वा अप्रिय नहीं होता था। हे भरतश्रेष्ठ! वह बड़े तेजस्वी पुरुष अपने और दूसरे सब जनोंके हित साधनेमें सदा तुल्य भावसे रहकर परम सुखसे काल गंवाने लगे। उनके भाईलोग भी अपने अपने तेज

बलसे भूपालोंको तपा कर बिना कण्टक प्रमुदित चित्तसे बसने लगे।

कुछ दिन बीते, अर्जुन श्रीकृष्णसे बोले, कि कृष्ण! अब ग्रीष्मकाल आया, यदि तुम चाहो तो चलो हम यमुनाजीके किनारे जांय; हे जनार्द्दन! हम मित्रोंसे जूट बांधके वहां विहार कर सन्ध्याको फिर लौटेंगे। श्रीकृष्णजी महाराज बोले, कि कुन्तीपुत्र! मेरी भी इच्छा हो रही है, कि हम मित्रोंके संग सुख चैनसे यमुना किनारे विहार करें।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भारत! अनन्तर अर्जुन और कृष्ण आपसमें ऐसी बातें कर धर्मराजकी आज्ञा ले मित्रोंके साथ निकले। वे अनेक पेड़ोंसे घिरी, इन्द्रपुरीकी भांति नाना घरोंसे सजी, स्वादिष्ट भक्ष्य, भोज्य और पानकी सामग्रीसे भरी, महामूल्य भांति भांतिकी सुगन्धी मालाओंसे सुहावनी, अच्छी विहारकी ठौरमें जा पहुंचे और नाना प्रकारके रत्नोंसे सुशोभित पुरीमें बिना विलम्ब जा घुसे। साथी लोग सुखसे खेलने कूदने लगे। स्थूल-कुचवाली सुन्दर नितम्बिनी, मतवाली चाल चलती युवती श्रीकृष्ण और अर्जुनकी आज्ञासे खेलमें प्रवृत्त हुईं, कोई वनमें, कोई जलमें कोई घरमें प्रीतिके साथ विहार करने लगीं। महाराज! तब द्रौपदी और सुभद्रा मदसे मतवाली बन उन सब स्त्रियोंको वस्त्र और गहने देने लगीं। कोई कोई नारी आनन्दित चित्तसे नाचने लगीं। कोई कोई गाने लगीं, कोई कोई रमणी हंसी ठट्ठेमें मग्न हुईं, कोई कोई अच्छी मदिरा पीने लगीं, कोई कोई एक दूसरेको मारने, पीटने तथा रोने लगीं; और कोई कोई रहस्य युक्ति करने लगीं, वास्तवमें जिसकी जैसी इच्छा थी, वह उसीको करनेमें प्रवृत्त हुई। तब वह वन बंसी बीणा मृदङ्ग आदिके मनभावन बाजेसे भर कर बहुत सुहावना बन गया। हे महाराज! इस प्रकारसे बड़ा भारी उत्सव उपस्थित हो जाने पर महात्मा शत्रुपुरके जयकारी धनञ्जय और श्रीकृष्ण निकटकी एक सुन्दर ठौरमें जाय बड़े दामी आसनों पर बैठे। वे उस स्थानमें अतीत विक्रमके सम्बन्धमें और दूसरी भांति भांतिकी कथा कहते सुनते हुए खेलने लगे। जिस प्रकार देवलोकमें दोनों अश्विनी कुमार एकत्र विराजते हैं; तैसेही वासुदेव और धनञ्जन प्रमुदित मनसे उस स्थानमें बैठे थे, कि ऐसे समयमें बड़े सालके वृक्ष समान लम्बे, तपे सुवर्ण सदृश उजाला-वाले, हरी और पिङ्गल रङ्गकी चमकीली दाढ़ीसे शोभित, लम्बाई और चौड़ाईमें उपयुक्त प्रमाण सम्पन्न बालसूर्य्यकी भांति, पद्मपत्र सुखयुक्त, तेजसे प्रदीप्त पिङ्गल वरण, जटाधारी, चीर पहिने हुए एक ब्राह्मण उनके पास आया। वे लोकोंमें न मिलने योग्य, तेजसे प्रकाशमान द्विजोत्तमको निकट देखतेही आसन छोड़के खड़े हुए।

खाण्डवदाहपर्व्वमें दोसौ तेईस
अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर ब्राह्मणने श्रीकृष्णचन्द्रजी महाराज और अर्जुनसे कहा, कि तुम दोनों सब लोकोंमें बड़े वीर हो, इस खाण्डवप्रस्थके निकट विराजते हो; मैं बहुत खानेवाला ब्राह्मण हूं, सदा अपरिमित भोजन खा जाता हूं। अब तुमसे भिक्षा करता हूं, कि तुम भोजन देकर मुझको प्रसन्न करो। वीर अर्जुन और कृष्ण यह बात सुनके उनसे बोले, कि कहिये, कैसा अन्न भोजन करनेसे आपकी तृप्ति होगी, हम उसका प्रयत्न करेंगे। वे कैसा अन्न बनवावेंगे, इस विषयमें आपसमें बात चीत कर रहे थे, कि ऐसे अवसरमें उस ब्राह्मणरूपी भगवानने उत्तर दिया, कि मैं वैसा अन्न खाया नहीं

चाहता हूं। मैं अग्नि हूं, जो अन्न मेरे योग्य हो वही मुझको दो। देवराज इन्द्र सदा खाण्डव नामक बड़े वनकी रखवारी करते हैं, सो मैं उसको जला नहीं सकता हूं। इन्द्रका सखा तक्षक नाम सर्प साथियों समेत सदा इस वनमें बसता है, इसी लिये वह वज्रधारी सर्व्व प्रयत्नोंसे इसकी रक्षा करते हैं, साथ साथ अनेक जीव इस वनमें रहते हैं, उनको जलाने चाहने परभी मैं देवराजके तेजसे मनोरथको सफल कर नहीं सकता हूं। वह मुझको जलते देखनेसे जलधरको जलधारासे बुझा देते हैं, सो मनमें खाण्डवको जलानेकी बड़ी चाह रखने पर जला नहीं सकता हूं। तुम दोनों अस्त्र-विद्यामें पण्डित हो, तुम मेरी सहायता करो, तो मैं इस खाण्डववनको जला सकता हूं; तभी मेरा अच्छा भोजन होगा, तुमसे मैं यही अन्न मांगता हूं। खाण्डवदाहके कालमें जो सब जीव इधर उधर भागने पर होंगे, उनको और जलधरकी जलधाराओंको तुम अस्त्रविद्याके बलसे सब प्रकार रोकना।

श्रीजनमेजयजी बोले, कि हे ब्रह्मन्! भगवान अग्निने क्यों देवराजसे रक्षित अनेक जीवोंसे पूरित खाण्डव वनको जलाना चाहा था? मुझको जान पड़ता है, कि उनके रिसाकर खाण्डवके जलानेको चाहनेका कोई विशेष कारण होगा। हे ब्रह्मन्! मैं इसका सत्य तत्त्व जाना चाहता हूं; सो यह कहें, कि क्यों वह खाण्डवदाह हुआ था।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे नरनाथ! खाण्डवदाहके विषयमें ऋषिकी स्वीकृत पौराणिक कथा आपसे कहता हूं, सुनिये। महाराज! पुराणोंमें सुना है, कि पूर्व्वकालमें बल विक्रमयुक्त महेन्द्र समान श्वेतकि नामक प्रख्यात एक भूप थे। उनके सदृश धीमान, दाता और यज्ञशाली कोई दूसरा नहीं था। उन्होंने बहुत दक्षिणा दे दे कर ज्योतिष्ठोम आदि क्रतु और देवयज्ञ आदि पांच महायज्ञ किये थे। हे महाराज! उनकी बुद्धि सदा केवल क्रियारम्भ, यज्ञ और नाना दान बिना किसी अन्य कार्य्यमें कभी नहीं रहती थी। बुद्धिमान पृथ्वीपतिके ऋत्विजोंके साथ बहुत दिनों तक यज्ञ करने पर ऋत्विजोंने धुएंसे घबराकर और उदास होके उन नरेशको छोड़ दिया। भूपालने बार बार समझाय बुझाय उनको बुलाया, पर उनकी आखें धुंधली हो जानेसे उन्होंने फिर उस यज्ञमें आना नहीं चाहा। अनन्तर भूपालसे उन सब पुरोहितोंकी आज्ञासे दूसरे पुरोहित लाकर उस आरम्भ किये हुए यज्ञको पूरा किया। कुछकाल बीते महीपालने एक समयसौ वर्षोंमें पूरा होने-वाला यज्ञ करना चाहा; पर उनके पुरोहितोंने उसको पूरा करना स्वीकार नहीं किया। बड़े यशोवन्त भूप आलस्य तज मित्रोंके साथ अतियत्नसे शिरनाय गिड़गिड़ाय समझाय बुझाय दान दे पुरोहितोंको हाथ जोड़ने लगे। पर अति तेजस्वी पुरोहितोंने किसी प्रकार उनका मनोरथ सिद्ध नहीं किया। तब राजर्षि रिसा कर उन आश्रमोंमें टिके विप्रोंसे कहने लगे, कि ब्राह्मणो! यदि मैं पतित हूं और सदा आपकी सेवामें दत्त चित्त न हूं, तो मैं ब्राह्मणोंसे निन्दित हूंगा और आप उसी क्षण मुझको त्याग दे सकते हैं; पर जब मैं न तो पतित और आप पर अप्रसन्न चित्त हूं, तब अनुचित रीतिसे मुझको त्यागना वा जिस क्रतुयज्ञको करनेमें मैं उद्यत हूं उनमें बाधा देना आपके योग्य नहीं है। मैं आपकी शरण लेता हूं, सो आप प्रसन्न होवें। हे द्विजवरगण! यदि विद्वेषवश मुझको त्याग देवें, तो मुझको याज्य कार्य्यके लिये अन्य पुरोहितोंके निकट जाना पड़ेगा और अपना कार्य्य पूरा करनेके लिये समझाय बुझाय दान दे उनको प्रसन्नकर अपना काम

उनको सच सच जताके अभिलाषा सिद्ध कर लूंगा। राजा येह वचन कह कर चुप हो रहे। अनन्तर पुरोहित लोग यह तो जानतेही थे, कि स्वयं उन नृपवरका याजन कार्य्य नहीं कर सकेंगे, सो क्रोध कर बोले, कि हे महाराज! सदा आपके दैवीकर्म्म होते हैं, हम सदा उन कार्य्यों को कर कर थक गये हैं, तुमभी बुद्धिकी गड़बड़ीसे शीघ्रता चाहते हो, सो इन थके मांदे पुरोहितोंको त्याग कर तुमको अन्य पुरोहितोंका आसरा ढूंढ़ना चाहिये; तुम रुद्रके यहां जाओ, वही तुम्हारे याजन कार्य्य करनेके समर्थ होंगे। भूप श्वेतकि उनका यह लाञ्छन वचन सुनकर क्रोधके वशमें होगये; अनन्तर कैलाशपर्व्वत पर जाके कठोर तपस्या करने लगे। हे महाराज! उन्होंने वहां नियमयुक्त, व्रतशील और धीर उपासनामें नियुक्त होके बहुत दिनोंतक महादेवजीकी आराधना की और कुछकाल कभी बारहें मुहूर्त, कभी सोलहवे मुहूर्त पर फलमात्र खाते थे। उन्होंने छःमास भले प्रकार समाहित, ऊर्द्ध्वबाहु और निमिष बर्ज्जित होके अचल जड़वत् काटे। हे भारत! भगवान शङ्कर उस प्रकार कठोर तपस्या करते हुए उन नृप-शार्दूलकी तपस्यासे बड़े प्रसन्न हो उनको दर्शन देकर बोले, कि हे नरवर! मैं तुम्हारी तपस्या देखकर बड़ा प्रसन्न हूं, तुम्हारा मङ्गल होगा, तुम मनमाना वर मांगो। राजर्षि श्वेतकि अति तेजस्वी महात्मा महादेवजीको यह बात सुन शिरनाय बोले, कि हे सुरेश्वर! हे देवनाथ! सर्व्व लोकोंके प्रणाम योग्य भगवान! आप यदि मुझपर प्रसन्न हुए हों; तो आप स्वयं मेरा याजन कार्य्य करें। भगवान रुद्र राजाका यह वचन सुन प्रसन्न हो, लाजभरे मुहसे बोले, कि महाराज! इस याजन कार्य्य करनेका हम लोगोंको अधिकार नहीं है; पर तुमने याजन-रूपी वर मांगनेके लिये कठोर तपस्या की है, सो हे शत्रुनाशी नृप! मैं इस नियमसे तुम्हारा याजन कार्य्य कर सकता हूं, कि यदि तुम बारह बर्ष ब्रह्मचारी और भले प्रकार समाहित सदा बिना रोक टोक आज्यकी धारसे अग्निको तपा सको, तो जो प्रार्थना करते हो वह मुझसे प्राप्त करोगे। पृथ्वीनाथ श्वेतकि शूलधर रुद्रकी ऐसी आज्ञा सुनकर उनका कहा सब काम करने लगे। जब बारह वर्ष बीते, तब वह फिर लोकभावन भगवान भूतनाथके निकट जा पहुंचे। शङ्कर उनको देख करकेही बड़े प्रसन्न हो बोले, कि नरनाथ! मैं तुम्हारे कार्य्यसे बहुत सन्तुष्ट हुआ हूं, पर हे शत्रु-दमन! याजन कार्य्य करना ब्राह्मणोंहीके लिये विधिबद्ध है, सो मैं स्वयं इस क्षण तुम्हारा याजन करनेमें प्रवृत्त नहीं हूंगा। धरती पर दुर्व्वासा नामसे प्रख्यात महाभाग एक द्विजोत्तम हैं, वह मेराही अंश हैं। वह तेजस्वी महर्षि मेरे नियोगसे तुम्हारा याज्य कार्य्य करेंगे। तुम यज्ञकी सामग्री बटोरो। राजा श्वेतकिने रुद्रकी आज्ञासे राजधानीमें लौटकर यज्ञकी सामग्री फिर इकट्ठी की और पुनः रुद्रके यहां पहुंच कर बोले, कि हे प्रभो महादेव! मैंने सब वस्तु तथा उपकरण संग्रह किये हैं। मेरी प्रार्थना यह है, कि आपकी कृपासे काल मेरी दीक्षा होवे। भगवान् रुद्र उन महात्मा महीपालकी यह बात सुनके दुर्व्वासाको बुलाकर बोले, कि विप्रवर! इन महीपालका नाम श्वेतकि है, तुम मेरे नियोगसे इनका याज्य कार्य्य करो। ऋषिने स्वीकार किया। अनन्तर महात्मा महीपतिकी अभिलाषानुसार जैसे कहा गया था, वैसेही भूरिदक्षिण यज्ञ प्रारम्भ हुआ। हे महाराज! अनन्तर महायज्ञ हो जाने पर जो सब बड़े तेजस्वी याजक और सदस्य लोग उसमें दीक्षित हुए थे, वे दुर्व्वासाकी आज्ञासे अपने अपने घरको चले गये।

अनन्तर महाभाग दुर्व्वासाभी अपने आश्रमको पधारे।

महाराज! उस भारी यज्ञमें अपरिमित हव्य पीकर भगवान हुताशनको विकार हो गया। वह दिन पर दिन तेजसे हाथ धोने लगे। उनके अङ्गमें ग्लानि जान पड़ने लगी। वह अपनेको कम तेजखी होते देखकर सर्व्व-लोकोंसे पूजे जाते हुए पवित्र ब्रह्मलोकमें गये। आगे वहां बैठे हुए श्रीब्रह्माजीसे बोले, कि हे जगपते। अब मैं तेजरहित और दुर्व्वल हुआ हूं, आपकी कृपासे अपनी पूर्व्व प्रकृतिको पाना चाहता हूं। सर्व्वलोकोंके धाता भगवान अग्निका यह वचन सुनकर हंसके बोले, कि हे महाभाग! तुमने बारह वर्ष बिना रोक टोक वसुधारासे आहुति दिये हुए हव्यको पान किया है, सो तुमको ऐसी ग्लानि हुई है। हव्य-वाहन! तुम कमतेज हुए हो; इससे एकायक दुःखी मत होना, तुम स्वास्थ्यको प्राप्त करोगे। हे विभावसो! पूर्व्वकालमें तुमने देवोंके नियोगसे देवोंके शत्रुओंकी वासभूमि जिस कठोर खाण्डव वनको भस्म किया था, अब उस स्थानमें अनेक प्रकारके प्राणी बसते हैं, तुम उनकी चर्व्वीसे तृप्त हो और अपनी प्रकृतिको प्राप्त कर सकोगे; सो उस खाण्ड-वको जलानेके लिये शीघ्र जाओ। उसको जलानेसे तुम्हारी यह ग्लानि दूर होजायगी।

अग्नि पितामहके मुखसे यह वचन सुन उसी क्षण बड़े वेगसे दौड़े और घोर खाण्डव वनमें शीघ्र पहुंच क्रोधसे एकायक पवनके सहारे जल उठे। खाण्डव वनवासी सब प्राणी उस वनको जलते देखकर आग बुझानेके लिये निज निज शक्तिके अनुसार प्रयत्न करने लगे। सैकड़ों सहस्रों हस्ती क्रोधकर शीघ्रताके साथ सूड़से तुरन्त जल उठाके सींचने लगे और अनेक सिरवाले सर्प क्रोधसे मुर्भा कर वेगपूर्व्वक बहुत फणोंसे अग्नि पर जल छोड़ने लगे। हे भरतकुल प्रदीप! तैसेही दूसरे प्राणियोंने भी धूल छिरकना शाखा, पीटना आदि अनेक उपायोंसे शीघ्र आग बुझायी। हव्यवाहन खाण्डववनमें वारम्वार, यहां तक कि सातवार जल उठे थे, पर इस प्रकार रोके जानेके कारण उनका मनोरथ सुफल नहीं होसका।

खाण्डवदाह पर्व्वमें दोसौ चौबीस अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर ग्लानि-युक्त हव्यवाहन खाण्डव दाहकी आशा छोड़कर क्रोधित-चित्तसे पितामह श्रीब्रह्माजीके निकट गये और व्योरेवार उनसे सब अहवाल कह सुनाया। उन भगवानने पल भर सोच कर कहा, कि हे अनघ! मैंने इसका एक अच्छा उपाय निश्चय किया है, तिससे आजही तुम देवराजके सामने खाण्डववन जला सकोगे। हे विभावसो! नर-नारयण नामक उन सनातन दो देवताओंने देवकार्य्यके लिये मर्त्यलोकमें अवतार लिया है। लोग उनको अर्ज्जुन और वासुदेव करके जानते हैं। अब वे दोनों खाण्डवके निकट विराजते हैं। तुम खाण्डव-दाहके लिये उनसे सहारा मांगो; तब बन सब देवोंसे रक्षित होने परभी जला सकोगे। वासुदेव और अर्जुन वहां के प्राणियोंको बिना सन्देह रोक सकेंगे! हव्यवाहन यह सुन करकेही तुरन्त कृष्णार्जुनके पास गये।

हे नृपोत्तम! अग्निने उनके सामने पहुंच कर जो कहा था, वह मैंने पहिलेही आपसे कहा है। हे नृपशार्द्दूल! तिसके पीछे अर्जुन इन्द्रके बिनाइच्छातसे खाण्डववनको जलानेकी इच्छा करनेवाले अग्निसे बोले, कि हे भगवन! मेरे अनेक दिव्य अस्त्र हैं, उनसे मैं वज्रधारी सैकड़ों इन्द्रसे युद्ध कर सकता हूं, पर युद्धकालमें मेरा वेग सर्व्वप्रकारसे सह ले, ऐसा मेरे भुज

वीर्य्यके योग्य चाप नहीं है; विशेष मुझको शीघ्रतासे वाण छोड़ने पड़ेंगे, सो अनेक अक्षय वाणोंका प्रयोजन है। और मेरा जो रथ है, वह प्रयोजनके अनुसार उन वाणोंको ले नहीं सकेगा, सो पीतवरण वायु समान वेगवान दिव्य घोड़े और बादल सदृश गरजनेवाले सूर्य्यकी भांति तेजयुक्त रथका प्रयोजन होगा। और इन माधवके भुजवीर्य्यके योग्य कोई अस्त्र नहीं है, कि जिससे यह रणभूमिमें पिशाच और सर्पोंको गिरावें। अतएव हे भगवन्! ऐसा कोई उपाय कहिं, कि जिससे देवराज इस बड़े वनमें वर्षाकरनेसे हम उनको रोका सकें और यह बड़ा कार्य्य भलीभांति पूरा हो। हे पावक! पौरुषसे जिसकी साधना होगी, वह हम करने को प्रस्तुत हैं, पर युद्ध करनेके लिये जिन उपकरणोंकी आवश्यकता हो, वह आप हमको देवें।

खाण्डवदाह पर्व्वमें दोसौ पच्चीस
अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर भगवान धूमकेतु हुताशनने अर्ज्जुनका यह वचन सुन जलके घर जलनाथ अदितिनन्दन लोकपाल वरुणजीको भेंटके लिये उनको स्मरण किया। जलनाथ वरुण उनका स्मरण करना जानके सम्मुख आ पहुंचे। हुताशन चौथे लोकपाल उन सनातन देवदेव जलाधिपका आदरपूर्व्वक स्वागत कर बोले, कि राजा सोमने, तुमको जो तूणीर और शरासन तथा कपिध्वज रथ दिया था, वह सब तुरन्त दे दो। पार्थ उस गाण्डीव शरासनसे और बासुदेव चक्रसे बड़ा भारी कार्य्य पूरा करेंगे। सो वह आजही मुझको दो। वरुणजीने देता हूं कहके मान लिया। अनन्तर जो धनुष बड़ा वीर्य्यवन्त, सर्व्वशस्त्र मथनयोग्य, यश और कीर्त्ति बढ़ानेहारा, शस्त्रोंसे काटे जानेके अयोग्य, सम्पूर्ण अस्त्रोंसे बड़ा, शत्रुसेनाको नष्ट करनेवाला, राज्यबढ़ानेवाला सैकड़ों, सहस्रों चापका सामना करने परभी न टूटने फूटनेवाला, रंग विरंगके सुन्दर सुन्दर वरणोंसे रंगा, मनोहर और जिसकी पूजा देवदानव गन्धर्व्व सदा किया करते हैं, वरुणजी ने ऐसाही अद्भुत धनुष और दो ऐसे तूणीर, कि जिनमें वाण रखनेसे खर्च किये नहीं चुकते, दे दिये। जो रथ मन और पवनकी भांति वेगवान, पाण्डुरवर्ण बादल सदृश चांदोकी नाईं उजाला-वाले सुवर्णसे सुशोभित, गन्धर्व्वोंके नगरके घोड़ोंसे खींचा जाता है, जो दिव्यास्त्र और सब उपकरणोंसे भरा और देव दानवोंसे अजेय, जिसकी घरघराहट बड़ी दूरसे सुनाई देती है, जिसको भुवनके प्रभु प्रजापति विश्वकर्म्माने बड़ी तपस्यासे बनाया था, जिसका रूप सूर्य्यसदृश दृष्टिसे देखनेके अयोग्य, जिस पर चढ़ प्रभु सोमने दानवोंको परास्त किया था, जिसका उजाला बहुत जलता है, जिसके किरण दूर से अनुभव होते हैं, जो अकाशतलके नये बादलसमान दीख पड़ता है, जिसके ऊपर इन्द्र धनुषसदृश शोभायमान मनोहर परमसुन्दर सुनौले झण्डेकी लकड़ीके ऊपर सिंहशार्द्दूल समान पराक्रमी सुन्दर दिव्य वन्दर मानों सर्व्वलोकों को जलानेकी इच्छासे विराज रहा है, और ध्वजापताकामें प्रकटित भांति भांतिके भूतोंके गम्भीर कोलाहलको सुनकर शत्रुसेनाकी चेतना जाती रहती है, वरुणजीने ऐसा कपिवर सहित रथ ध्वज-युक्त दिया। अर्ज्जुन खड्ग कवच गोधा और अङ्गरक्षक पहिनके स्नान कर अनेक उस पताकाओंसे सुशोभित अनुपम सुन्दर रथकी परिक्रमा देकर देवोंको प्रणाम कर पुण्यात्मा जनके विमान पर चढ़नेकी भांति उस पर चढ़ और ब्रह्माके बनाये उस गाण्डीव श्रेष्ठ शरासनको आनन्दसे ले लिया। अनन्तर वीर्य्यवन्त अर्ज्जुनने हुताशनके आगे सिर नाय,

बल प्रकट कर उस गाण्डीवमें गुण चढ़ाया। बली पाण्डुनन्दनके गुण चढ़ानेके कालमें उसका शब्द जिस जिसके कानोंमें पैठा उस उसका हृदय थरथराने लगा; अर्जुन इस प्रकारसे रथ, धनुष और दो महान अक्षय तूणीर पाकर आनन्दित चित्तसे हुताशनको सहारा देनेको समर्थ हुए, अनन्तर हुताशनने श्रीकृष्णचन्द्रको चक्र और दयित अस्त्रास्त्र दे दिया, इससे वह भी तब अग्निकी सहायता करनेके योग्य बने। आगे अग्निने उनसे कहा, कि हे मधुसूदन! तुम युद्धस्थलमें इस अस्त्रसे बिना सन्देह मानवके अतिरिक्त अन्य प्राणियोंकोभी परास्त कर सकोगे। तुम रणस्थलमें इस अस्त्रसे देव, दानव, राक्षस पिशाच, नाग और मनुष्य इनसे निःसन्देह अधिक शक्तिमान होगे। हे माधव! यह अस्त्र यदि शत्रुदल पर वार वार फेंका जाय, तौभी बिना रुकावट शत्रुनाश करता हुआ फिर तुम्हारे हाथमें आ जायगा। अनन्तर वरुणजीने उनको दैत्यकुलनाशी घोररूपी वज्रसमान गरजनेवाली कौमोदकी गदा दी, तब अस्त्रने पण्डित अर्जुन और श्रीकृष्ण ध्वजा, रथ और शस्त्रादि प्राप्त कर प्रसन्नचित्तसे बोले, कि हे भगवन! अब हम लोग सम्पूर्ण सुरासुरसे लड़नेको समर्थ हुए; सर्परक्षाके लिये युद्ध चाहनेवाले अकेले वज्रधारी इन्द्रसे लड़ना हमारे लिये कोई बड़ो बात न रही। अर्ज्जुन बोले, कि हे पावक! तीनों लोकोंमें ऐसा पदार्थही नहीं है, कि जिसे वीर्य्यवन्त चक्रपाणि जनार्द्दन रणस्थलमें टहलते हुए इस चक्रसे मार नहीं सकेंगे। मैं भी यह अक्षय तूण और गाण्डीव धनुष लेकर सम्पूर्ण लोक परास्त करनेका उत्साह कर सकता हूं सो आप आजही इच्छानुसार इस बड़े वनको सम्पूर्ण रूपसे घेर कर जलावें; हम आपको सहारा देनेको समर्थ हुए हैं।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि भगवान हुताशन अर्ज्जुन और श्रीकृष्णचन्द्रके यह वचन सुनके पावक तैजसका रूपधारण कर उस वनको जलाने लगे। तब वह सातशिखा फैला कर सब ओर फैलकर खाण्डववन जलाने लगे। उस कालमें जान पड़ने लगा, कि मानो युगके अन्त होनेवाला काल प्रकटित हो रहा है। हे भरतवंशश्रेष्ठ! प्रज्वलित अग्निदेव उस बड़े भारी वनको पकड़ कर उसमें घुसके बादल की गड़गड़ाहटकी भांति भयानक शब्दसे सब प्राणियोंको थरथराने लगे। हे भारत! तब जलते हुए उस वनने सूर्य्यकिरणोंसे रंगे हुए सुमेरु पर्व्वतका स्वरूप धारण किया।

खाण्डवदाह पर्व्वमें दोसौ छव्वीस
अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर रथियोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण और अर्ज्जुन रथ पर चढ़कर उस वनको दोनो ओर रहके चारों ओरके प्राणियोंको नष्ट करने लगे। खाण्डववासी प्राणी जहां जहां भागते दीख पड़े, वे दोनो वीर तहां तहां दौड़ने लगे। वे दोनों महारथी रथ पर वनके चारों ओर इतना शीघ्र फिरने लगे, कि दोनो रथ आपसमें जुड़े हुए जान पड़ने लगे; तिनमें विछोह दीख नहीं पड़ा। खाण्डव वनके जलनेसे सैकड़ों सहस्रों प्राणी बड़ा कोलाहल मचाते हुए चारो ओर गिरने लगे। किसी किसीका एक एक अङ्ग जल गया; कोई कोई अति तापसे जल भुनके गिरगया; किसी किसी जन्तुकी आंखें फूट गयी; कोई कोई दुबकाय गये; कोई कोई भयसे दौड़ने लगे; किसी किसी प्राणीने बच्चेसे, किसी किसीने पितासे किसी किसीने भाईसे लिपट कर वासस्थल ही में प्राण छोड़े, पर स्नेहवश उनको छोड़ नहीं सके। कोई कोई देहधारी दांतसे दांत

पीसता अनेकबार गिरता पीटता और बहुत चक्कर खाता फिर आगमें गिरने लगा। कोई पंख जलने, कोई नेत्र जलने अथवा कोई पांव जलने पर मृत दीख पड़ने लगा। वहांके जलाशय अग्निसे तपने और उबल उठनेसे मछली कछुए आदि प्राणी इधर उधर मरे दिखाई देने लगे। उस वनमें देहियोंकी जो सब देह जली, वह सब जली देह मानों भांति भांतिको अग्निदेहके समान प्रतीत होती रहीं। उस वनसे जो सब पक्षी उछल रहे थे, अर्ज्जुन उनको बाणोंसे टुकड़े टुकड़े कर कर जलते हुए अग्निमें गिराने लगे। वे प्राणी सब देह काटे जानेसे बड़ा कोलाहल मचाते हुए वेगसे कुछ ऊपर चढ़कर फिर उस खाण्डव वनहीमें गिरने लगे; समुद्रमथनके कालमें जैसा घोर शब्द उठा था वैसेही बाणोंसे घायल बनैले जानवरोंका बड़ा कोलाहल सुन पड़ने लगा और जलते हुए अग्निकी बड़ी बड़ी शिखा देवोंको घबराहटमें डालनेवाली बनके आकाशमण्डलमें छागई। अनन्तर महात्मा देवगण उस अग्निकी शिखाओंसे बहुत तपकर पुरमें बसे ऋषियोंके साथ असुरनाशी सहस्र नेत्र, शतक्रतु सुरनाथके पास गये और बोले, कि हे अमर नाथ! क्या अग्नि इन अमरवृन्दको जला रहा है? क्या अब हम सब लोगोंका प्रलय काल आ गया है? श्रीशम्पायनजी बोले, कि हाथी पर चढ़े हुए वृत्रनाशी उनसे वह सुनके और स्वयं देखके खाण्डव वनकी रक्षाके लिये चल निकले। उन्होंने अनेक महारथोंसे आकाशमण्डलको छाकर जल वर्षाना आरम्भ कर दिया। सैकड़ों बादल देवराजकी आज्ञासे खाण्डव वन पर रथके पहियेकी लकड़ीके समान मोटी धारसे जल वर्षाने लगे। सब मोटी धार अग्निके तेजसे आकाशहीमें सूख गयी, एकभी धार अग्नि पर गिर नहीं सकी। आगे नमुचिसूदन इन्द्र बहुत क्रोध कर फिर बड़े बादलोंसे अग्निके ऊपर बहुत जल वर्षाने लगे। तब वह बड़ा भारी वन अग्निशिखा और जल धारासे गीला धूआं और बिजलीसे मिला और ऊपरके बादलोंसे घिरा प्रकट होकर बड़ा भयानक दीख पड़ने लगा।

खाण्डवदाह पर्व्वमें दो सौ सताइस अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर पाण्डुनन्दन अर्ज्जुनने देवराजकी उस प्रकार जल वर्षाते देखकर अपना उत्तम अस्त्र प्रकट करके बाण वर्षा कर उसको रोका। चन्द्रमा जिस प्रकार ओससे जगको छाय देता है वैसेही अमियात्मा पाण्डुनन्दनने सैकड़ों बाणोंसे सम्पूर्ण खाण्डव वनको छुपाया। वहांका आकाशमण्डल सव्यसाची धनञ्जयके फेंके बाणोंसे ऐसा ढंपा, कि कोई प्राणी वहांसे निकल नहीं सका। पर महाबली सर्पराज तक्षक उस समय वहां नहीं था। जब खाण्डवदाह आरम्भ हुआ था, तब कुरुक्षेत्रमें गया था। उसका पुत्र बली अश्वसेन वहां था। तक्षकके उस पुत्रने अग्निसे निकलनेकी बड़ी चेष्टा की, पर अर्ज्जुनके बाणसे बन्धुआ बन कर निकल नहीं सका। आगे उसकी माता सर्पकन्याने उसको निगल कर बचाया। नागकन्या उसे बचानेकी चाहसे उसका सिर निगल कर उसकी पूछको निगलती हुई आकाशमार्गसे निकल रही थी, ऐसे समयमें अर्ज्जुनने उनकी देख चौड़ी नोखवाले तेजबाणसे उस सर्पिनका सिर काट डाला। शचीनाथने यह देखकर अश्वसेनको बचानेके लिये उसीक्षण पवन चला कर अर्ज्जुनको मोहमें डाला। उस अवसरमें अश्वसेन बचकर भागा। अर्ज्जुनने तब उस सर्पसे ठगे जाकर और वह माया देखकर आकाश

तक पहुंचे हुए भयानक प्राणियोंको दो तीन भागोंमें काट कूट डाला। विभत्सु, वासुदेव और पावकने बहुत क्रोध कर उस कुटिल गामी सर्पको शाप दिया, कि तुम्हारी प्रतिष्ठा जाती रहेगी। अनन्तर पाण्डुपुत्रने उस वञ्चनाको स्मरण कर क्रोधसे तुरन्त दौड़नेवाले बाणों से आकाश मण्डलको छाय सहस्रनेत्रसे लड़ाई मचायो। देवराजनेभी उनकी युद्धमें कांटवड देखकर अपना तीक्ष्ण अस्त्र छोड़कर आकाश मण्डलको छा लिया। अनन्तर पवनने बड़े शब्दके साथ फैलकर सम्पूर्ण समुद्रमें हलचल मचाके अति घोर बादल वृन्द उपजाये। उन सब बादलोंसे उस ठौरमें बिजली, वज्राघात और गड़गड़ाहटके साथ जलधारा वर्षने लगी। प्रतिविधानकी शक्ति रखनेवाले अर्जुनने उन सबको दूर करनेके लिये सुन्दर वायव्यास्त्रको मन्त्र पढ़ कर छोड़ा, तिससे इन्द्रके उस वज्र और बादलोंका वीर्य्य तथा तेज नष्ट हुआ, और जलधारा सूखी तथा बिजली नष्ट हुई, पल भरमें अकाश मण्डल शुद्ध और अन्धेरेसे साफ होगया। सुखदायी ठण्डी हवा चलने लगी और सूर्य्यमण्डलने पहिलेकी प्रकृति प्राप्त की ; तब अग्नि बिना रोक टोक देहियोंकी देहसे निकली हुई चर्वीसे औरभी प्रबल होकर आनन्दकी उमङ्गमें नाना आकार धरके और बड़े शब्दसे जग भरमें शिखायें फैलाकर जल उठा। हे महाराज! सुपर्ण आदि पतत्रीगण श्रीकृष्ण और अर्जुनसे उस खाण्डवदावानल को रक्षित होते देखकर अहङ्कारसे आकाशको उड़े और वज्रसमान पंख चोंच और नखोंसे वासुदेव और धनञ्जयको मारनेकी इच्छासे आकाशसे नीचे उतर आये तथा जलतेहुए मुखवाले विसैले सर्पगण कठोर बिष गिराते हुए पाण्डवके सामने आ गिरे। आगे पाण्डुनन्दनने क्रोधकी आगसे सुलगे हुए बाणोंसे उन सबको काट कूट डाला, सो वे देहको नष्ट करनेके लिये भले प्रकार जलते हुए अग्निमें जा गिरे। अनन्तर असुर, गन्धर्व्व, यक्ष राक्षस, और पन्नगगण लड़नेके लिये बड़ा कोलाहल मचाते हुए दौड़े। क्रोधके मारे तब उनका तेज बढ़ने लगा। वे अयःकण्प अर्थात् लोहेकी गेंद गिरानेके यन्त्र और चक्राश्म अर्थात पत्थरके टुकड़ोंको बड़ी दूर फेंकनेका लकड़ीका बना यन्त्र, भुसुण्डो अर्थात पत्थर फेंकनेका चमड़ाको रस्सीसे बना हुआ तन्त्र, यह सब अस्त्र लेके हाथ उठाकर श्रीकृष्ण और अर्जुनको नष्ट करनेके लिये उद्यत हुए। विभत्सु उनको अयोग्य वचन कह कहके बाण वर्षाते देखकर चोखे बाणोंसे उनके सिर मथने लगे। शत्रुकुलनाशी बड़े तेजस्वी श्रीकृष्ण चक्रसे उन सब दैत्य दानवोंको नष्ट करनेलगे। कोई कोई अति बली दैत्य दानव शरोंसे बिद्ध और चक्रसे घायल हो उत्साह छोड़ ऐसे चुप हुए, कि जैसे जलके सोतेमें लहरकी चोटसे घूमते हुए तिनके तीर पाके स्थिर होते हैं। अनन्तर देवोंके अधीश असुरसूदन इन्द्र अति क्रोधकर पाण्डुरवर्ण गज पर चढ़के धनञ्जय और श्रीकृष्ण पर चढ़ आये और वेगसे अमोघ अस्त्र वज्र लेकर उन पर छोड़नेको उद्यत होके देवोंसे बोले, कि इस वार यह दोनों मरेंगे। देवोंने देवराजको महावज्र उठाते देखकर सबने अपना अपना अस्त्र ले लिया। हे महाराज! यमराज कालदण्ड लेकर खड़े हुए, धननाथने गदा ली; वरुणने पाश और विचित्र अशनि लिया; स्कन्द शक्ति लेकर अचल गिरि मेरुकी भांति खड़े हुए ; दोनों अश्विनी कुमार हाथोंमें दीप्यमान औषधि लेकर खड़े हुए, धाताने धनुष लिये ; जयने मूषल लिया ; महाबली त्वष्टाने रिसाकर पर्व्वत उठाया ; सूर्य्यका अंश हाथोंमें देवशक्ति लेके लड़नेको उद्यत हुआ। मृत्युदेवने परश्वध लिया ;

अर्यमा घोर परिघ लेके घूमने लगे और मित्र अस्तुरेके समान नोखदार चक्र लेकर खड़े रहे। भग, पूषा और सविता भयानक धनुष और निस्त्रिंश लेके क्रोधसे अर्ज्जुन और श्रीकृष्णको ओर दौड़े। अपने तेजसे दीप्यमान महाबली रुद्रगण, वसुगण, मरुद्गण, विश्वेदेवगण, और साध्यगण, यह और दूसरे अनेक देवगण भांतिभांतिके अस्त्र लेकर पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण और अर्ज्जुनको नष्ट करनेके लिये चढ़ दौड़े। तब युग अन्त होनेके कालकी भांति भूतोंको मोहनेवाले आश्चर्य नक्षत्र पतन आदि बुरे बुरे चिन्ह प्रगट होने लगे। युद्धमें अति कठोर अर्ज्जुन और श्रीकृष्ण देवोंके साथ देवराजको युद्धमें सब प्रकारसे सन्नद्ध देखकर सज्य शरासन लेकर निर्भय और अटल चित्तसे खड़े हुए। युद्धमें दक्ष वे दोनों वीर सब आये हुए देवोंको वज्र समान बाणोंसे क्रोधपूर्व्वक सब प्रकारसे पछाड़ने लगे; अनन्तर देवोंने कृष्णार्ज्जुनसे बारम्बार सब प्रकार सङ्कल्प खोकर भय खायके युद्धस्थलको छोड़कर देवराजकी शरण ली। आकाशमें खड़े मुनियोंने देवोंको कृष्णार्ज्जुनके आगे पीठ दिखाते देखकर अचरज माना। अर्ज्जुन और श्रीकृष्णका रणस्थलमें वार वार भुजवीर्य्यका प्रमाण पाय देवराज बहुत प्रसन्न हुए; और फिर लड़ने लगे। वह तब सव्यसाची धनञ्जयकी सामर्थ जाननेको चाहसे बहुत पत्थर वर्षाने लगे। अर्ज्जुनने बहुत क्रोधकर महावेगवान बाणोंसे उस पत्थरवृष्टिको रोका। इन्द्र पत्थर वृष्टिको बिफल देखकर फिर और भी अधिक पत्थर गिराने लगे। इन्द्रनन्दन बड़े तेज बाणोंसे उस भयानक पत्थरवृष्टिको रोककर पिताका आनन्द बढ़ाने लगे। अनन्तर महेन्द्रने पाण्डुपुत्रको मारनेकी इच्छासे दोनों हाथोंसे मन्दर पर्व्वतको वृक्षसहित एक बड़ी भारी चोटीको उखाड़ कर फेंका। अर्ज्जुनने अग्निमग, जलती हुई नोख वाले बड़े तेज बाणोंसे उस पहाड़की चोटीको सहस्र खण्डोंमें तोड़ डाला। आकाश मण्डलसे चन्द्र सूर्य्यादि ग्रह टुकड़े टुकड़े हो गिरनेके कालमें जैसे पड़ते हैं, वह टूटी फूटी पहाड़की चोटी गिरनेके कालमें तैसीही दीख पड़ी। उस बड़ी भारी चोटीके खाण्डववन पर गिर जानेके हेतु उस काल उसकी चोटसे बहुतेरे प्राणियोंने प्राण छोड़े।

खाण्डव दाहपर्व्वमें दोसौ अट्ठाईस
अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर खाण्डव वनके रहनेवाले दानव राक्षस सर्प ऋक्ष भेड़िये उन्मत्त हस्ती केशरवाले सिंह, बाघ और दूसरे बनैले भूत उस पहाड़के गिरनेसे भय खाय अकुलाय भागने लगे, और श्रीकृष्ण तथा अर्ज्जुनका अस्त्र उठाये और उस बनको सब ओरको बड़े शब्दसे डोलता हुआ देखा। तब वे वनका चारों ओरसे जलते और श्रीकृष्णको अस्त्र मारते देखकर बड़ा भयानक शब्द करने लगे। उन सब बनैले जीवोंके भयानक शब्द और अग्निकी चटचटाहटसे आकाश मण्डल ऐसे गूजने लगा, कि जैसे मेघ गर्ज्जनसे गूजे। अनन्तर महाभुज श्रीकृष्णने उनको मारनेके लिये अपने तेजसे जलता हुआ अति ऊंची नोखवाला बड़ा भारी चक्र उठाया। उस चक्रसे दानव निशाचर आदि वे सब जानवर भय खाय टुकड़े टुकड़े होय उसी क्षण अनलके मुखमें जाय गिरे। दैत्यगण श्रीकृष्णचन्द्रके चक्रसे टुकड़े टुकड़े हो और चर्व्वी तथा रक्तधारसे नहाकर सन्ध्याकालके घने बादलकी भांति दीखने लगे! हे भारत! वृष्णिनन्दन श्रीकृष्ण यमराजको भांति सहस्रों पिशाच, पक्षी, सर्प और पसु मारते हुए फिरने लगे। सर्व्व भूतोंकी आत्मा श्रीकृष्णके इस प्रकार पिशाच उरग

राक्षस आदिको नष्ट करने पर उस कालमें उनका आकार बड़ा रूखा जान पड़ने लगा; आये हुए देवोंमेंसे एकभी कृष्णार्ज्जुनके युद्धमें जय नहीं पा सका। देवोंने जब देखा, कि कृष्णार्ज्जुनके बाहुबलसे उस वनको बचानेके लिये दावानल बुझाना उनसे बन नहीं पड़ा, तब वे पीठ दिखाकर चले गये। हे महाराज! अमरनाथ अमरोंको मुख मोड़ते देख प्रसन्न होकर केशव और अर्ज्जुनकी प्रशंसा करने लगे। अनन्तर सब स्वर्ग पतियोंके निवृत्त होने पर महेन्द्रको इस प्रकार आकाशवाणी हुई, कि तुम्हारा सखा सर्पराज तक्षक मारा नहीं गया, खाण्डवदाहके कालमें वह कुरुक्षेत्रमें गया था। हे इन्द्र! तुम मेरे वचनसे निश्चय जानना, कि कोई भी किसी प्रकारसे वासुदेव अर्ज्जुनका युद्धमें सामना नहीं कर सकेगा। यह लोग देवलोकमें प्रशंसित पुरातन देव नर नारायन हैं; इनका जैसा वीर्य्य और जितना पराक्रम है, वह तुमभी जानते हो। यह युद्धमें अजेय और दुर्द्धर्ष हैं, इनको पराजय करना सर्व्व लोकोंमें किसीकी सामर्थ नहीं है। यह दो पुराण ऋषिसत्तम; अमर, असुर, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व्व, नर किन्नर, पन्नग आदि सबोंके बड़े पूजनीय हैं, सो हे इन्द्र! तुम देवोंके साथ यहांसे लौट जाओ। यह खाण्डवदाह विधिपूर्व्वकही हुआ। तब अमरनाथ इन्द्र वह वचन सच जानकर क्रोध तज देवलोकको गये। हे महाराज! देवोंने अपने नाथ इन्द्रको चले जाते देखकर सेनाओंके साथ उनकी राह ली। वीर अर्ज्जुन और वासुदेवने सेनागण और इन्द्रको मुख मोड़ते देखकर सिंहनाद किया। हे महाराज! इन्द्रके चले जाने पर वे निर्भय होकर खाण्डववनको जलाने लगे। पवन जिस प्रकार बादलोंको भगाता है, तैसे ही अर्ज्जुन देवोंको परास्त कर खाण्डवमें रहनेवाले प्राणियोंको मारमारकर फूकने लगे। उनके वाणोंसे काटे जानेसे कोई भी प्राणी वहांसे निकल नहीं सका। बड़े बड़े महाबली प्राणियोंका अर्ज्जुनसे लड़ना तो दूर रहा, वे उनकी ओर ताकभी नहीं सके। अर्ज्जुन कभी कभी एक वाणसे सौ प्राणी मारने लगे। वे सब प्राणी मानों साक्षात कालसे मारे जाय और प्राण छोड़ अग्निके मुखमें गिरने लगे, वे नतो नदी, नतो तट, न रूखी ठौर और न श्मशान कहीं भी मङ्गल प्राप्ति नहीं कर सके; सभी ठौर कड़े तापसे तपने लगे। अगणित प्राणी दीन मनसे बड़ी चिल्लाहटके साथ रोने पीटने लगे, हस्ती हरिन और भेड़िये चिल्लाकर रोने लगे, उस शब्दसे अति दूरकी गङ्गाचर और समुद्रचर मछलियां और विद्याधर तथा उन स्थानोंके निकट जितने वनवासी थे, सब बहुत भय खागये। हे महाभुज! किसीका कृष्णार्जुनसे लड़ना तो दूर रहा, अर्ज्जुन और जनार्दन पर दृष्टि चलानाभी बन नहीं पड़ा, जिन सब राक्षस, दानव और नागोंने एकत्र मिल कर दौड़के भागना चाहा श्रीकृष्णने उनको चक्रसे नष्ट किया, वे चक्रके वेगसे सिरकटे, धड़कटे बनके प्राण छोड़ जलती हुई आगमें जा गिरे और दूसरे बड़े भारी भारी जीवभी आगके मुहमें गिरने लगे। तब अग्नि मांस रक्त और चर्बीसे भली प्रकार तृप्त होय धुआं तज आकाशको चढ़ गये और पिङ्गल आखें जीभ, मुख और ऊंचे ऊंचे वालोंको प्रज्ज्वलित कर जीवोंकी चर्बी पीने लगे। उन कृष्णार्जुनसे अमृत पीकर प्रमुदित और तृप्त होय परम सन्तोष प्राप्त किया। अनन्तर मधुसूदनने एकायक देखा, कि मय नामक असुर तक्षकके वासस्थानसे भागा जाता है। और पवनके सारथि अग्नि शरीर लेके और जटा धरके बादलके समान शब्द करते हुए उसको पकड़नेकी इच्छा कर रहे हैं; तब वासुदेवजी उसको मारनेके लिये चक्र उठाके

खड़े हुए। मयदानवने उनको चक्र उठाते और अग्निको निगलनेकी इच्छा पर आते देखकर कहा, कि हे अर्ज्जुन दौड़ो, मुझे बचाओ। अर्ज्जुन उसका वह करुणस्वर सुनकर मानों जीवन दे करही बोले, कि मत डरो। वह दयाशील थे, सो मयको ढाढ़स दिया। अनन्तर अर्ज्जुनके नमुचिके भाई उस दैत्यको ढाढ़स देने पर दाशार्ह श्रीकृष्णने फिर उसे मारना नहीं चाहा; और अग्निभी जलानेको प्रवृत्त नहीं हुए।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि धीमान हुताशनने अर्ज्जुन और श्रीकृष्ण द्वारा इन्द्रसे रक्षित होकर पन्द्रह दिनमें उस वनको जलाया। उस वनके जलानेके कालमें अग्निने केवल अश्वसेन, मय और शार्ङ्गक नामक चार पक्षी इन छओंको नहीं जलाया।

खाण्डवदाह पर्व्वमें दोसौ उनतीस अध्याय समाप्त।

जनमेजय बोले, कि हे ब्रह्मन्! यह प्रगट करो, कि उस वनके जलानेके समय उस दशामें अग्निने क्यों शार्ङ्गक पक्षियोंको नहीं जलाया। अश्वसेन और मयदानव जिन उपायोंसे नहीं जले वह आपने कह सुनाया है; पर चार शार्ङ्गके न जलनेका कारण नहीं कहा; हे ब्रह्मन्! शार्ङ्गकोंका बचना मुझको अचरजसा जान पड़ता है; कहो, कि वे उस अग्निदाहसे क्यों नहीं मरे।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे शत्रुदमन! उस दशामें हुताशनने जिस कारण शार्ङ्गकोंको नहीं जलाया, वह आपसे कहता हूं, सुनो। हे महाराज! मन्दपाल नाम प्रख्यात तपस्वी विद्वान् व्रतशील धर्म्मके जानकार अति श्रेष्ठ एक महर्षि थे। वह स्वाध्यायमें नियुक्त और जितेन्द्रिय होके सदा तपस्या और धर्म्म करते थे। वह ऊर्द्ध्वरेता ऋषियोंकी बाटसे चलकर तपस्याके दूसरे पारको उतर गये थे। हे भारत! जब वह देह छोड़के पितृलोकको गये, तब बटोरी हुई तपस्याका कोई फल प्राप्त नहीं हुआ। उन महर्षिने अपनी कठोर तपस्यासे उपार्ज्जन किये हुए लोकमें न जाने पाकर धर्म्मराजके निकट देवोंसे पूछा, कि मेरी तपस्यासे उपार्ज्जन किया हुआ पुण्यलोक क्यों रुका है? जिन कर्म्मोंके करनेसे इन सब पुण्यलोकोंमें जाया जाता है क्या मैंने उन कर्म्मोंको नहीं किया है? हे देवगण! आप कहें, कि क्यों मेरी तपस्याका फल रुका हुआ है, मैं उसको करनेको प्रस्तुत हूं। देवोंने कहा, कि हे ब्रह्मन्! सुनो इसमें सन्देह नहीं कि मानवगण क्रिया, ब्रह्मचर्य्य और सन्तान उपजाना इन सब विषयोंका ऋणी बनके जन्म लेते हैं। यज्ञ, तपस्या और पुत्रोत्पादन इन तीन कर्म्मोंसे यह ऋण चुकता है। तुमने बहुत तपस्या और यज्ञ किया है, पर तुम्हारे सन्तान नहीं है, सो यह सब पुण्यलोक तुम्हारे लिये रुके हैं। तुम पुत्र उपजाओ, तो इन श्रेष्ठ लोकोंको भोगने पाओगे। हे ब्रह्मश्रेष्ठ! श्रुति है, कि पुत्र पिताको पुत-नामक नरकसे बचाता है, सो तुम पुत्र उपजानेका प्रयत्न करो।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर मन्दपाल देवोंका वह बचन सुनकर सोचने लगे, कि किस योनिमें जन्म लेनेसे शीघ्र अधिक सन्तान उपज सकती हैं। अनन्तर उन्होंने यह सोचकर कि पक्षीकी जातिको स्वल्पकाल में बहुत सन्तान होती हैं, शार्ङ्गिक पक्षी बनके जरिता नाम शार्ङ्गिकासे मिलकर उसके गर्भसे चार ब्रह्मवादी पुत्र उपजाये। अनन्तर वह अण्डेमें उपजे हुए बच्चोंको उनकी माताके साथ उस वनहीमें छोड़के लपिताके पास गये। हे भारत! उन महाभागके लपिताके पास

चले जाने पर जरिता पुत्रस्नेहसे कातर हो अनेक प्रकारकी चिन्ता करने लगी। ऋषिके उस खाण्डव वनमें उन अण्डोंमें स्थित बच्चोंको छोड़ने परभी जरिता पुत्र शोकसे कातर हो कर त्यागनेके अयोग्य उन बच्चोंको छोड़ नहीं सकी; उनको स्नेहके मारे अपनी वृत्ति अवलम्बन कर पालने लगी। अनन्तर ऋषि मन्दपालने लपिताके साथ उस वनमें चरते हुए देखा, कि अग्नि खाण्डव वन जलानेको आ रहा है; ब्रह्मके जानकार विप्रर्षि वह महातेजस्वी मन्दपाल जातवेदाका वह अभिप्राय समझकर अपनी सन्तानोंको बालक जानके उनके लिये उनसे विनय करनेकी इच्छासे भयखाय स्तव करने लगे कि, हे अग्ने! तुम सर्व्वलोकोंके सुखस्वरूप हुए हो; तुम हवनके पदार्थ ग्रहण किया करते हो। हे पावक! तुम सर्व्व लोकोंके हृदयमें छिप कर चरा करते हो। कविगण तुमको अद्वितीय कहा करते हैं, और तीन प्रकारका भी कहते हैं तथा तुमको अष्टधा कल्पना करके यज्ञ किया करते हैं। हे हुताशन! परमर्षिगण कहते हैं, कि तुम्हीने संसारको रचा है; और तुम्हारे न रहनेसे आजही जगन्मण्डल नष्ट होता। ब्राह्मणगण तुम्हीको प्रणाम कर स्त्रीपुत्रोंके साथ शाश्वत-लोककी जय करके उसमें जाते हैं। हे अग्ने! पण्डितलोग तुमको बिद्युतके साथ आकाशमें स्थित मेघ कहते हैं। हे पावक! तुमसे शिखा निकलकर सर्व्व भूतोंको जलाती हैं। हे महाद्युते! कर्म्मोंका विधान करनेवाला वेद तुम्हाराही वचन है; और यह सब स्थावर जङ्गमात्मक जीव तुम्हींसे बने हैं। हे अग्ने! पहिले तुम्हींमें जलका विधान है, यह सम्पूर्ण जगत तुममें स्थित है; और सम्पूर्ण हव्यकव्य तुम्हींको आश्रय कर विद्यमान हैं। हे देव! तुम्हीं दहन, तुम्हीं विधाता, तुम्हीं वृहस्पति, तुम्ही दोनों अश्विनीकुमार तुम्हीं अर्क, तुम्ही सोम और तुम्ही पवनस्वरूप हो।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे महाराज! अति तेजस्वी मन्दपालमुनिके इस प्रकार अग्निको स्तुति करने पर अग्नि उन पर प्रसन्न हुए और प्रीतिपूर्व्वक उनसे कहा, कि बोलो तुम्हारा अभीष्ट क्या है, मैं पूरा कर देता हूं। मन्दपाल दोनों हाथ जोड़के बोले, कि हे हव्यवाहन! तुम जब खाण्डववनको जलाओगे, तब मेरे बच्चोंको मत जलाना। भगवान् हव्यवाहनने तथास्तु कहके मान लिया, और उस कालमें खाण्डवदाव जलाने के वास्ते जल उठे।

खाण्डवदाह पर्व्वमें दोसौ तीस
अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर अग्निके जलने पर वे शार्ङ्गकपक्षीके बच्चे बहुत भय खाय घबरा उठे; उनको ढूंढ़ने परभी बचनेका कोई उपाय नहीं मिला। उनकी माता तपस्विनी जरिता बच्चोंको बहुत छोटे देखकर दुःख शोकसे विलपती हुई कहने लगी, कि मेरा दुःख बढ़ानेवाला यह भयानक अग्नि वनको जलाता हुआ सब ठौरमें उजाला करके डरावने स्वरूपमें आय रहा है। पर मेरे छोटे छोटे इन बच्चोंके पंख नहीं जमे है, तथा वे उड़ भी नहीं सकते और अज्ञान हैं; और यह पुरुषोंकी एकही गति हैं, यह मेरे हृदय दुःखा रहे हैं। यह अग्नि हर घड़ी वृक्षोंको चाटता और भय उभाड़ता हुआ इधर आ रहा है। पर मेरे इन बिना पंखके बच्चोंको भागनेकी शक्ति नहीं है, और मुझ अकेलीकोभी इतनी सामर्थ नहीं है, कि इन सबोंको लेकर इस विपत समुद्रसे भाग सकूं; इनको छोड़कर भागभी नहीं सकती हूं। हा! मेरा हृदय मानों डोल

रहा है। मैं किस बच्चेको लेकर जाऊं; किसको छोड, क्या करूं जो मनोरथ सिद्ध हो? ऐ बेटो! तुम क्या विचारते हो? मैं तो सोच समझ कर तुम्हारे बचनेका कोई उपाय नहीं देखती; मैं अपनी देहसे तुमको छिपाके अन्तमें तुम सबोंके साथ जल मरूंगी। तुम्हारा निर्दयी पिता पहिले चले जानेके कालमें बोला था, कि "मेरे चार बेटोंमें ज्येष्ठ जरितारी नामक पुत्रसे वंश प्रतिष्ठित होगा; सारिसृक्क नामक पुत्र सन्तान उपजायके कुल बढ़ावेगा; स्तम्बमित्र नामक पुत्र तपस्या करेगा और द्रोण नामक प्रशंसित पुत्र वेदमें पण्डित होगा।" पर अब यह दुःखदायी विपद आ पड़ी; मैं किसे ले जा सकूंगी? क्या करनेसे कार्य्यको निबटा सकूंगी! जरिता ऐसे बहुविधि सोच कर घबरा उठी; उसको अपनी बुद्धिसे अपने पुत्रोंको बचानेका कोई उपाय नहीं सूझ पड़ा।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि शार्ङ्गकोंने माताको इस प्रकार बिलपते सुनकर कहा, कि माता! तू स्नेह छोड़कर वहां जा, कि जहां आग नहीं हो। हे माता! हम मर जायंगे तो तेरी और सन्तान उपज सकेंगी; पर तेरे मरनेसे वंशरक्षाका उपाय न रहेगा। हे माता! अब तेरे लिये वह काल आ पहुंचा है, जब कि हमारे साथ प्राण छोड़ना अथवा हमें छोड़के अपनेको बचाना, इन दो विषयोंकी भले प्रकार आलोचना वही करना चाहिये, जिसके करनेसे हमारे कुलका मंगल हो, तू फिर सर्व्वनाशी पुत्रस्नेह मत कर, ऐसा करनेसे स्वर्गलोकदायी पुत्र चाहने-वाले पिताका सब कर्म्म व्यर्थ हो जायगा। जरिता बोली, कि हे पुत्रो! इस वृक्षके निकट धरतीके भीतर मूषका बिल दीख पड़ता है, तुम तुरन्त इसमें जा घुसो; यहां अग्निका भय जाता रहेगा। तुम्हारे इसमें पैठनेसे मैं धूरसे इस बिलका मुंह तोप दूंगी; अब प्रज्वलित अग्निसे बचनेका यही एक उपाय देखती हूं। जब आग बुझेगी, तब मैं आकर बिलके मुखसे राखका ढेर हटा दूंगी। तुम अग्निसे बचनेके लिये मेरा यह बचन मानो। शार्ङ्गने कहा, कि हमारे पंख नहीं जमे हैं, हम मांसपिण्डही हैं; सो मांस-खानेवाले मूष अवश्य हमको नष्ट करेंगे; इस भयकी बातको जान बूझ कर हम इसके भीतर घुस नहीं सकते। अब क्योंकर अग्नि हमें न जलावे, क्योंकर मूष हमें न खावे, क्योंकर पिताका पुत्र उपजाना व्यर्थ न होवे, क्योंकर हमारी माताका प्राण बचे, इनमेंसे किसीका एकभी उपाय नहीं देखते; सो निश्चयही हमारी मृत्यु आ पहुंची है। पर बिलमें घुसें तो मूषसे और बाहर रहें तो अग्निसे मरेंगे; इन दो मृत्युओंके विषयमें समझ बूझके देखनेसे यही युक्ति होती है, कि अग्निसे जल मरना अच्छा है, मूषसे खाये जाना उचित नहीं है; क्योंकि शिष्ट हुताशनके मुखसे देह छोड़नेसे सुगति होगी बिलमें मूषसे खाये जानेसे अनुचित मृत्यु होगी।

खाण्डवदाह पर्व्वमें दोसौ एकतीस
अध्याय समाप्त।

जरिता बोली, कि इस गड्ढेसे एक छोटा मूष निकला था; एक बाज आके पावोंसे उसे पकड़ ले गया है; इस बिलमें तुमको भय नहीं है। शार्ङ्गोंने कहा, कि हम बाजका मूष ले जानेका ब्योरा नहीं जानते, और लेभी गया हो, तो उस बिलमें ढेर और मूष रहभी सकते हैं; उनसे हमको बिना सन्देह भय होरहा है; और यहां अग्नि आवे, कि नहीं इसमें सन्देह है, क्योंकि उलटे वायुसे अग्निका बुझनाभी देखा गया है; सो बिलमें रहनेसे निश्चयही हमारी मृत्यु

होगी और बाहर रहनेसे मृत्यु होनेमें सन्देह है। हे माता! जिस स्थानमें मृत्युका होना निश्चय हैं, उससे वह किसी प्रकार अच्छा है, कि जहां मृत्युमें सन्देह हैं; सो न्यायके अनुसार तुमको आकाशहीको उड़ जाना उचित है; तुम्हारा जीवन बचे तो तुम दूसरे अच्छे पुत्र पासकोगी। जरिता बोली कि हे बेटो! जब पक्षीवर बाज बिलसे मूषको लेकर वेगसे भागा था, तब मैंने उसके पीछे दौड़कर असीस दिया था, कि "हे बाजराज! तुम हमारे शत्रुको लेके भागते हो, सो तुम बिना शत्रु देवलोकमें सुनीली देह पाकर बसो।" अनन्तर उस बाजके मूषको खाजाने पर मैं उसे जता कर घरको लौट आयी। हे बेटो! अब तुम चित्तमें कोई शङ्का न उठाकर बिलमें जाओ, वहां तुमको कोई शङ्का न होगी; महात्मा बाजने मेरे सामनेही मूषको खाडाला है। शार्ङ्गोंने कहा, कि हे मायो! हमने नहीं देखा, कि बाज मूषको हरले गया है, सो हम विशेष न जानके बिलमें घुस नहीं सकते। जरिता बोली, बेटो! तुम मेरी बात मानो, इसमें तुम्हें कोई भय नहीं हैं, क्योंकि मैं जानती हूं, कि बाज मूषको हर लेगया है।

शार्ङ्गोंने कहा, कि हम नहीं समझते, कि तुम झूठे उपचारसे हमारा भय भगाती हो, क्योंकि बुद्ध भयद्वारा बिगड़नेसे जो कर्म किया जाता है, वह ज्ञानसे नहीं होता है। हमने कभी तुम्हारा कोई उपकार नहीं किया, और तुम यहभी नहीं जानती, कि हम कौन हैं, फिर क्यों कष्ट उठाकर हमको बचानेकी चेष्टा कर रही हो। देखो न तो तुम हमारी कोई हो और न हम तुम्हारे कोई लगते हैं। हे मा! तुम युवती और रूपवती हो और पति ढूढ़नेकी सामर्थभी रखती हो, सो तुम पतिके पीछे जाओ, तिनसे अच्छा पुत्र पा सकोगी। हम अग्निमें घुसकर अच्छे लोकमें जायंगे। यदि अग्नि हमको न जलावें, तो फिर तुम हमारे पास आना।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि शार्ङ्गों पुत्रोंसे यह बात सुनकर, उन्हें उस खाण्डवबनमें छोड़के तुरन्त ऐसी बिन पीड़ाकी ठौरमें चली गयी, कि जहां अग्निका भय नहीं था; अनन्तर अग्नि वेगसे और तेज शिखायें लिये मन्दपालके पुत्र शार्ङ्गोंके खोतेके पास आये। तब उन पक्षियोंने प्रज्वलित अग्निको देखा; और उनका ज्येष्ठ उस अग्निको सुनाय सुनाय कहने लगा।

खाण्डवदाह पर्व्वमें दोसौ बत्तीस अध्याय समाप्त।

जरितारि बोला, कि ज्ञानी जन मृत्युकालके पहिलेसे जागते रहते हैं, उनको कभी मृत्युकी पीड़ा सहनी नहीं पड़ती। बिन चेतन जन मृत्युकाल आजाने पर सोते हुएके समान रहता है, उसको मृत्युकी पीडा भोगनी पड़ती है; और वह मोक्षको नहीं पा सकता।

सारिसृक्क बोला, हमारा यह प्राणका क्लेश आ गया है; तुम धीर और बुद्धिमान हो, तुम्ही हमारी रक्षा करो; क्योंकि बहुतेरोंमेंसे एकही पुरुष बुद्धिमान और शूर होता है।

स्तम्बमित्र बोला, ज्येष्ठ भ्राता कनिष्ठोंके त्राता होते हैं, सो ज्येष्ठ भ्राताही विपत्तसे बचाते हैं। जो ज्येष्ठ भाई न बचावें, तो कनिष्ठ क्या कर सकता है?

द्रोण बोला, कि वह कुटिल कर्म्मवाला सुवर्णरेता सात जीभ सात मुह सहित वेगसे जलाता लहलहाता हमारे खोते पर आ रहा है।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे पृथ्वीनाथ! मन्दपालके पुत्रोंने ऐसा कह सुनकर जिस प्रकार अग्निका स्तव किया था, वह कहता

हूं सुनो। जरितारि बोला, कि हे जलानेवाले! तुम वायुकी आत्मा हो, तुम लताओंकी देह हो। हे शुक्र! तुम्हारे उपजनेका स्थान जल है और तुम जलके उपजानेका स्थान हो। हे महार्गोर्थ! तुम्हारी शिखा सूर्य्यकी उजालेके समान ऊंचे नीचे पीछे किनारे और सब जगह फैली रहती हैं।

सारिसृक्क बोला, कि हे धूमकेतु! हमारी मा दृष्टिके बाहर उड़ गयी है, पिताको भी हम नहीं पहिचानते और अभीतक हमारे पंख नहीं जमे, हम बहुत बच्चे हैं। हे अग्ने! अब तुम्हारे बिना हमारा बचानेहारा नहीं है; सो तुम हमको बचाओ। हे अग्ने! तुम्हारा जो कल्याणकारी रूप और सात शिखा हैं, उन्हींसे हम भय खाये और शरण लिये हुओंको बचाओ। हे जातवेदे! तुम अकेलेही ताप फैलाते हो। हे देव! किसी किरणको तुम्हारे बिना ताप पहुंचानेवाला कोई नहीं है। हे हव्यवाहन! हम ऋषिपुत्र और बच्चे हैं, हमारी रक्षा करो, हमारे यहांसे अन्य स्थानको जाओ।

स्तम्बमित्र बोला, कि हे अग्ने! तुम अकेले सम्पूर्ण ब्राह्मणरूपी हो; तुम्ही पर यह सम्पूर्ण जगत विराजमान है; तुम जीवोंको पालते हो; तुम तेजः पदार्थ हो; तुम हव्यको वहन करते हो; और तुम अच्छे हव्यरूपी हो। पण्डितलोग तुमको कारण-रूपमें एकरूपी और कार्य्य-रूपमें बहुरूपी जानते हैं। हे हव्यवाहन अग्ने! तुम पहिले सृष्टिको रचते हो; आगे काल आने पर तुम्ही बढ़कर फिर उसका नाश करते हो; सो तुम्ही सम्पूर्ण भुवनकी उत्पत्ति-स्थान हो और प्रलय स्थानभी तुम्ही हो।

द्रोण बोला, कि हे जगपते! तुम जीवोंके भीतर रहके बढ़कर उनका खाया हुआ अन्न नित्य नित्य पचाते हो; सो सब भूत तुम्हारी ही शरणमें रहते हैं। हे शुक्र! हे जातवेद! तुम सूर्य्य स्वरूप बनके किरणसे भूमिमें उपजा हुआ सब रस और धरतीमें स्थित जल ले समय समय पर फिर उसे वृष्टि द्वारा छोड़कर सब अनाज उपजाते हो। हे शुक्र! तुम्हीसे यह सब पत्तेवाली लता, सरोवर और मङ्गलनिधान समुद्र उपज रहे हैं। हे कड़े किरणधारिन्! हमारी यह देह रसनेन्द्रियके नाथ जलपति वरुण पर निर्भर है; अतएव तुम जब उस जलके विधाता हो, सो हमारे कल्याणकारी हो; ऐसी दशामें हमको बचाना हो तुमको उचित है, तुम आज हमको नष्ट मत करो। हे पिङ्गलनेत्र! हे लालग्रीव हे कृष्णवर्त्मन्! हे हुताशन! तुम हमसे दूर रहो, सागरके पास बने घरके समान हमे छोड़ो। श्रीवैशम्पायनजी बोले, आगे जातवेदा अग्नि द्रोणकी यह बात सुन प्रसन्न हुए; और मन्दपालसे जो कुछ सुना था; वह स्मरण कर बोले, हे द्रोण! तुम ऋषि हो, तुमने जो कहा, वह वेदस्वरूप है, तुम्हारी अभिलाषा पूरी करूंगा, तुम भय मत खाओ। पहिले मन्दपालने तुम्हारे लिये मुझसे कहा था, कि "जब तुम खाण्डव वनको जलाओगे, तब मेरे पुत्रोंको न जलाना।" हे द्रोण! मन्दपालकी वह बात और तुम्हारी यह बात हमारे लिये बहुत अधिक हुई है; सो कहो, तुम्हारे लिये मुझको क्या करना होगा? हे ब्रह्मश्रेष्ठ! तुम्हारी इस स्तुति पर मैं बड़ा कृतार्थ हुआ हूं; तुम्हारा मङ्गल होगा। द्रोण बोला, हे हुताशन शुक्र! यह सब बिल्ली नित्य हमको सताती हैं, सो तुम इन्हे वंशसहित जलाओ। अनन्तर अग्निने शार्ङ्गोंको जनाय जनायके उनकी प्रार्थना पूरी की, और बढ़ चढ़कर खाण्डव वनको जलाने लगे।

खाण्डवदाह पर्व्वमें दोसौ तेंतीस अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे कौरव्य। इधर वह मन्दपाल तेज प्रकाशमान अग्निसे वैसा वचन कहने परभी पुत्रोंके लिये सोचमें रहे; किसी प्रकार मनको स्थिर नहीं कर सके। वह पुत्रके लिये मनको उदास कर लपितासे बोले, लपिते! नहीं जानता मेरे बेटे जो चलने नहीं जानते हैं, कैसे हैं! जब वायु चलनेके साथ अग्नि तेज होगा, तब मेरे बेटे अग्निसे बच नहीं सकेंगे, उनकी माता क्योंकर उन बच्चोंको बचा सकेगी? वह तपस्विनी पुत्रोंको बचानेका उपाय न देखकर शोकसे विकल होगी। क्योंकर ऊपर उड़नेमें असमर्थ मेरे बच्चोंको लेके हृदयमें दुःख पाय बहुत रोती पीटती दौड़ेगी! हा! बेटा जरितारि क्योंकर जीयेगा? सारिसृक्क क्योंकर प्राण बचावेगा? स्तम्बमित्र क्योंकर बचेगा? द्रोण क्योंकर रक्षा पावेगा? मेरो वह तपस्विनी स्त्री क्योंकर जी सकेगी? हे भारत! महर्षि मन्दपाल वनमें इस प्रकार विलप रहे थे; वह देखकर लपिता ईर्षावश उनसे कहने लगी, कि तुमने जिन पुत्रोंकी बात कही, उनके लिये मत सोचो वे तेजस्वी और वीर्य्यवन्त हैं, अग्निसे उनको भय नहीं है, और तुमने स्वयं उन पुत्रोंको रक्षाके लिये अग्निसे कहा था। महात्मा हुताशननेभी तथास्तु कहके उस बातको मान लिया था। वह लोकपाल होकर कभी कही बातको विरुद्धता नहीं करेंगे, इस लिये इस विषयमें तुम्हारा चित्त स्वस्थ है, वास्तवमें तुम्हारा मन बच्चोंके कार्य्यका विरोधी है: तुम मेरी शत्रु जरिताहीको स्मरण कर व्याकुल होरहे हो। पहिले जरिता पर तुम्हारा जैसा स्नेह था, अब मुझ पर वैसा नहीं है; जिनके दो पक्ष हैं, वह स्त्री पुत्रादि स्वजनोंका कष्टमें पड़नेसे स्नेह खोय उनकी उपेक्षा कर सकता है, उसको कभी आत्मपक्षकी उपेक्षा न करनी चाहिये, सो अब तुम जिसके लिये शोक करते हो, उस जरिताहीके निकट चले जाओ, मैंने न समझ बूझके जैसे पुरुषकी शरण ली थी; उसीके फलसे अकेली चरा करूंगी।

मन्दपाल बोले, तुम मुझको जैसा समझ रही हो, मैं तिस भावसे नहीं चलता हूं। पर केवल सन्तान उपजानेहीके लिये ऐसे फिर रहा हूं। अब मेरी उपजायी सन्तान कष्टमें पड़ी हैं। जो गये विषयको छोड़ भावीको आशा करता है, वह मूढ़जन लोगोंका अनादर प्राप्त करता है, सो तुम जो चाहती हो सो करो, मेरा हृदय उन सन्तानोंके लिये बड़ा उदास है, यह प्रज्वलित अग्नि वृक्षको चाटते हुए मेरे उस विकल हृदयमें अमङ्गलका भय और दुःखही को ला रहा है। श्रीवैशम्पायनजी बोले, अनन्तर अग्निके शाङ्गोंके खोताको छोड़ कर आग बढ़नेसे जरिता रोती पीटती हुई तथा पुत्रोंको ढूढ़ती फिरती वहां आ पहुंची और देखा, कि सब पुत्र वनमें अग्निसे बचे चंगे और कुशलसे हैं। अनन्तर वे माताको देखकर रोने लगे। जरिता उनको निहारकर वार वार आंसू गिराने लगी और उनको हर घड़ी चिल्लाते देखकर धीरे धीरे सबको निकट जाके गले लगाया। हे भारत! इस अवसरमें महर्षि मन्दपाल एकायक जा पहुंचे, उनके पुत्रोंने उनको देखकर आनन्द प्रकाश नहीं किया। वह ऋषि हर पुत्र और जरितासे वार वार सम्भाषण करने लगे, पर उन्होंने भला बुरा कुछभी उत्तर नहीं दिया। आगे मन्दपाल जरिताका नाम लेकर बोले, कौन तुम्हारा बड़ा बेटा, कौन मझला, कौन तीसरा और कौन छोटा है। मैं दुःखवश वार वार तुमसे यह पूछता हूं, तुम क्यों प्रतिउत्तर वा सम्भाषण नहीं करती हो। मैं तुम्हें छोड़के यहांसे चले जा करके शान्ति पा नहीं सका। जरिता बोली, तुमको बड़े बेटे, मझले, तीसरे

बेटे वा छोटे बेटेसे क्या प्रयोजन है? पहिले तुमने मुझको हर बातमें निकृष्ट देखा था; जिसके पास गये थे, अब उस मधुरहासिनी युवती लपिताहीके पास जाओ। मन्दपाल बोले, नारिओंके लिये सौत वा दूसरे पुरुषके बिना इस लोक में अधिक शोचनीय वैरकी आग जलानेवाला और परलोकमें पुरुषार्थ नष्टकारी और कुछ दोख नहीं पड़ता। सप्तर्षिके बीचमें स्थित ऋषिश्रेष्ठ महानुभव वसिष्ठ अति पवित्र स्वभावी और सदा पत्नीके प्रेमी और हितकारी कार्य्यमें लगे रहते थे। तिस परभी सर्व्व लोकोंमें प्रशंसिता सुव्रता अरुन्धतीने उन ऋषिवर वसिष्ठको व्यभिचारका कलङ्क लगाके अनादर किया था। वह कल्याणी अरुन्धतीके वैसी अनुचित चिन्ता करने पर वह धूआं और सूर्य्यसमान प्रकाशवती, बिन देखे रूपधरी कभी दीखती कभी न दीखती कुलक्षणोंके समान लोगोंकी आंखोंमें पड़ती है। वसिष्ठ जैसे अरुन्धतीके अनिष्ट नहीं थे; मैं भी तैसेही तुम्हारा अनिष्ट नहीं हूं; मैं केवल सन्तानहीके लिये मिला हूं; ऐसी दशामें तुम मुझ पर अरुन्धतीके समान व्यवहार करती हो; स्त्रियोंका भार्य्या कहके कदापि न बिश्वास करना चाहिये; उनके पुत्र होनेसे वे पतिको सेवादि कार्य्य अवश्य कर्तव्य करके नहीं समझती। श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर उनके पुत्र उनकी उपासनामें प्रवृत्त हुए, वह भी उन पुत्रोंको ढाढ़स देने लगी।

खाण्डवदाह पर्व्वमें दोसौ चालीस अध्याय समाप्त।

मन्दपाल बोले, मैंने तुमको अग्निसे जल जानेसे बचानेके लिये महानुभव अग्निको जनाया था; उस पर उन्होंनेभी तथास्तु करके मान लिया था।

मैं उन अग्निको बात, तुम्हारे माताको धर्म्मनिष्ठा और तुम्हारे वीर्य्यको स्मरण कर पहिले यहां नहीं आया था। हे बेटो! तुम वेदमें प्रसिद्ध ऋषि हो; अग्निभी तुमको जानते हैं। श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर ऋषि मन्दपाल पुत्रोंको समझाय बुझाय पत्नीको साथ लेके वहांसे दूसरी ठौर गये। भगवान अग्निने इस प्रकार श्रीकृष्ण और अर्ज्जुनको सहायतासे जगत्‌के हितके निमित्त खाण्डव वनको जलाया। उस स्थानमें मेद और वसाकी नदी साख कर परम परितृप्त होके अर्ज्जुनके सामने प्रगट हुए। अनन्तर भगवान इन्द्र देवोंसे घेरे जाय आकाशमण्डलसे उतरकर अर्ज्जुन और केशवसे बोले, कि जो कर्म्म देवतालोग भी सहजमें निमटा नहीं सकते, तुमने उसे पूरा किया है, अब मैं तुम पर प्रसन्न हूं, तुम वर मांगो; यद्यपि पुरुषके लिये वह दुर्लभ हो, तौभी तुमको दूंगा। अनन्तर पार्थने इन्द्रजीसे सब अस्त्र मांगे। अति द्युतिमान देवराज उन्हें देनेका काल निश्चय कर बोले, कि हे पाण्डव! जब भगवान महादेव तुम पर प्रसन्न होंगे, तब मैं तुमको सब अस्त्र दे दूंगा। हे कुरुनन्दन! जब उन अस्त्रोंके देनेका काल आ पहुंचेगा तब मैं जान लूगा; मैं तुम्हारो महातपस्यासे तुमको सब अग्नास्त्र सब वायव्य अस्त्र और अपने दूसरे अस्त्रोंको भी दे दूंगा; तुम लेना। अनन्तर बासुदेवने प्रार्थना की, कि अर्ज्जुनसे उनका सदा प्रेम बना रहे। देवराजने सुबुद्धिमान श्रीकृष्णको वह वर दिया; प्रभु देवराज इस प्रकार श्रीकृष्ण और अर्ज्जुनको वर देकर हुताशनको सम्भाषण करके देवलोकमें गये। भगवान पावक मृग और पक्षियोंके सहित खाण्डववनको जलाके अति तृप्त होकर पन्द्रह दिनके पीछे बुझ गये। वह रक्त, मेद और मांस खाय परम प्रसन्न

होय श्रीकृष्ण और अर्ज्जुनसे बोले, कि तुम दोनों वीर और पुरुषोंमें श्रेष्ठ हो, मैं तुमहीसे बड़ा सुखपाके तृप्त हुआ, अब आज्ञा करता हूं, कि तुम्हारी गति न रुकेगी, जहां चाहोगे, वहीं जा सकोगे। हे भरतश्रेष्ठ! महात्मा पावक उनको ऐसी आज्ञा देने पर अर्ज्जुन वासुदेव और मयदानव यह तीन एकत्र होकर कुछ काल घूम फिरकर सुन्दर नदी तटमें जा बैठे।

दोसौ पैंतीसवें अध्यायमें खाण्डवदाह पर्व्व समाप्त।

आदि पर्व्व समाप्त।

महाभारत।

सभापर्व्व।

नारायण, नरोत्तम नर, देवी सरस्वती और व्यासजीको प्रणाम कर जय कीर्त्तन करे।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि श्रीकृष्णचन्द्र अर्ज्जुन और मयदानव तीनोंके एकत्र होकर उस सुन्दर नदीके तटपर बैठने पर मयदानवने माधवके सामने अर्ज्जुनको वारम्बार उपासना कर दोनों हाथ जोड़के मीठी बातोंसे कहा, कि हे कुन्तीनन्दन अर्ज्जुन! इन क्रोधयुक्त दैत्य नाशी श्रीकृष्ण और जलाने चाहनेवाले प्रज्ज्वलित अग्निसे आपने मेरी रक्षा की है, सो कहें, मैं पलटेमें आपका क्या उपकार करूं? अर्ज्जुन बोले, कि हे महावीर! तुम्हारे वचनहीसे सब कुछ मिल गया, अब जहां जी चाहे जाओ; इतनाही चाहिये, कि तुम सदा हम पर कृपा रखना और तुम परभी हमारा प्रेम बना रहे। मय बोला, कि हे पुरुषश्रेष्ठ प्रभो! आप जो वचन बोलते हैं, वह तो आपहीके योग्य है, पर तौभी मैं प्रीतिसे आपका कुछ उपकार करना चाहता हूं। हे पाण्डव! मैं शिल्पकार्य्योंमें दक्ष और दानवोंका विश्वकर्म्मा हूं, इसी हेतु आपके लिये कुछ किया चाहता हूं। अर्ज्जुन बोले, कि हे अनघ! तुम मृत्युके मुखसे अपनेको रक्षित जानकर पलटेमें उपकार करना चाहते हो, सो इस दशामें तुमसे कोई कार्य्य करा लेना ठीक नहीं है; पर यहभी नहीं चाहता, कि तुम्हारी कल्पना व्यर्थ हो, सो तुम श्रीकृष्णचन्द्रका कोई कार्य्य कर दो, उसीसे मेरा प्रत्युपकार हो जायगा। अर्ज्जुनकी आज्ञासे जब मयदानवने वासुदेवसे प्रार्थना करी। तब उन्होने सोचा, कि इसको किस काममें लगाऊं? पलभर ऐसी चिन्ताकर प्रजापति लोकनाथ श्रीकृष्णचन्द्रने आज्ञा की, कि हे शिल्पदक्षदानव! तुम मेरा प्रिय कार्य्य करना चाहो, तो युधिष्ठिरके लिये अपनी इच्छानुरूप एक सभा बना दो। वह सभा ऐसी बने, कि जिसे देखकर धरती भरका कोईभी मनुष्य वैसी दूसरी सभा न बना सके और जिसमें दिव्य, आसुर वा मानवीय, सर्व्व प्रकारके अभिप्राय अर्थात् बनावटकी सब चतुरता दीख पड़ें।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि मयदानवने प्रसन्नचित्तसे वह बात मानके पाण्डवोंके लिये विमानके समान एक सभा-मण्डपको छवि बनायी। अनन्तर कृष्ण और जिष्णु दोनों यह सब वृत्तान्त धर्म्मराज युधिष्ठिरसे कह कर मयदानवको सम्मुख ले गये। युधिष्ठिरने

उसकी यथायोग्य पूजा करी और उसनेभी बड़े सम्मानसे पूजा ग्रहण की। महाराज! सर्व्वकर्म्मके जानकार मयदानव उसकाल पाण्डवोंसे दानव वृषपर्व्वाके विन्दु सरोवरमें किये हुए यज्ञादिकी एराभी वहां वहने लगा। आगे कुछ काल तक थकावट दूरकर बड़ी चित्तासे महात्मा पाण्डवोंकी सभा बनानेकी नेव डाली। महानुभव श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर आदिके मतसे बड़ा तेजोवन्त मयदानवने शुभ दिनको विधिपूर्व्वक पुण्यकर्म्म कर सहस्रों ब्राह्मणोंको अनेक प्रकारके धन देके पायसान्नसे भले प्रकार तृप्त किया, आगे सर्व्व ऋतुओंमें सर्व्व सुख देनेवाली सुन्दर, मनभावनी पांच सहस्र हाथतक फैली सभा भूमि बनायी।

प्रथम अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि पूजनीय जनार्द्दनने खाण्डवप्रस्थमें परम प्रीतिपूर्व्वक, पाण्डवोंसे सब भांति पूजे जाकर कुछ दिन परम सुखसे गंवाया, आगे एक दिन पिताके दर्शनको जाना चाहा। जगपूज्य पद्मनेत्र श्रीकृष्णचन्द्र धर्म्मराज और पृथाको सम्मानित कर अपनी फूफी कुन्तीके दोनों पांवों लगे। पृथाने उनको सिर सूंघके गलेसे लगाया। आगे अति यशोवन्त भगवान हृषीकेश अपनी सुभाषिणी बहिन सुभद्राको देख आनन्दके आंसुओंसे नेत्रोंको भर उसके पास गये और बड़े प्रेमसे संक्षेपमें उसको अर्थ पूरित, हित, उत्तरके अयोग्य सत्य वचन बोले। सुभद्राने भी वार वार उनके पांव लगकर स्वजनोंसे जो कुछ कहना था, कह दिया। वृष्णिवंशी श्रीकृष्णने बहिनका उचित आदर कर द्रौपदी और धौम्यकी भेंट की और धौम्यकी यथोचित पूजा कर द्रौपदीको सम्मानित किया और कर प्रकारसे समझाया। आगे एकपवर विद्वान जनार्द्दन अर्जुनके संग युधिष्ठिरादि भाइयोंके निकट गये। इन्द्र जिस प्रकार अमरवृन्दसे घेरे जाते हैं, वैसेही यदुकुलश्रेष्ठ महाबली श्रीकृष्णचन्द्र पांच भाइयोंसे घेरे गये, अनन्तर नहा धोके शुचि होकर अलङ्कारादि पहिरे यात्राकालके कर्म्मोंको पूरा करनेको इच्छासे देव द्विजोंको माला मन्त्र, नमस्कार और नाना प्रकारके सुगन्धित पदार्थोंसे पूजने लगे। यदुकुलश्रेष्ठ सनातन भगवान पुण्डरीकाक्षने सब कार्य्य कर लेनेके पीछे बाहरकी कक्षामें निकलके पूजनीय ब्राह्मणोंसे दधि भरे पात्र, फल और अक्षतसे स्वस्ति कहलाकर धन देके परिक्रमा की। आगे गदा, खड्ग, शार्ङ्ग आदि अनेक अस्त्रोंसे सजे सजाये, शैब्य तथा सुग्रीवादि चार घोड़ेवाले, कामगामी, गरुड़ध्वज सुवर्ण रथ पर चढ़के शुभ दिनको, शुभ संयोग शुभमुहूर्त्त पर पधारे। कुरुनाथ युधिष्ठिरभी उनके प्रेमसे पीछे रथ पर चढ़ और सारथिवर दारुकको अलग बैठाके आपही रथकी रास थाम ली। दीर्घभुज अर्जुन भी रथ पर चढ़के श्रीकृष्णको परिक्रमा दे सुवर्ण दण्डयुक्त श्वेत चंवर डोलाने लगे। प्यारे शिष्योंके पीछे पीछे जानेसे गुरु जिस प्रकार सुशोभित होते हैं, शत्रुनाशी नारायण भाइयोंके पीछे चलनेसे वैसी शोभा पाने लगे। अनन्तर गोविन्दने अर्जुनको बड़े प्रेमसे गले लगाकर युधिष्ठिर तथा भीमसेनकी पूजा की और नकुल सहदेवकोभी गले लगाके लाड़ दुलार किया। युधिष्ठिर आदिनेभी कृष्णको गले लगाया; केवल दोनों माद्रीकुमारोंने उसको प्रणाम किया। इस प्रकारसे आधा योजन पथ जानेके पीछे शत्रुपुर जीतनेवाले धर्म्मके जानकार श्रीकृष्णने युधिष्ठिरको प्रकार कर यह कहके कि "आप लौट जायं" उनके दोनों पांव पकड़ लिये। धर्म्मराज युधिष्ठिरने शिर सूंघके यादवश्रेष्ठ कमललोचन केशवको उठा कर जानेको आज्ञा दी। इसके अनन्तर मधुसूदन "फिर आऊंगा"

इत्यादि यथायोग्य सम्भाषण पूर्व्वक अति कष्टसे उनको निवृत्त कर ऐसे प्रसन्नमनसे अपनी पुरीको गये, कि जैसे इन्द्र अमरावतीकी ओर जायं। जितनी दूर आंख चली पाण्डवोंकी दृष्टि श्रीकृष्ण पर रही जमी रही और अति प्रेमके कारण उनका मन श्रीकृष्णके पीछे पीछे चला, पर किसी प्रकार उनकी आंख और मन नहीं उकताया। प्रियदर्शन श्रीकृष्ण शीघ्रही उनकी दृष्टिके बाहर होगये। श्रीकृष्ण पर मन लगाये हुए पुरुषोंमें श्रेष्ठ पाण्डवगण इच्छा न रहने-परभी अपने नगरको शीघ्र लौटे। तब देवकीनन्दन श्रीकृष्णभी गरुड़ समान दारुकके साथ रथ पर चढ़के द्वारकामें जा पहुंचे। सात्वत वीर सात्यकि उनके पीछे पीछे गये।

श्री शम्पायनजी बोले, कि अक्षय शीलयुक्त धर्म्मराज युधिष्ठिर भाइयोंके साथ लौट करके बन्धुओंमे घिरे जाय पुरीमें गये। आगे बन्धुओं, भाइयों और पुत्रोंको विदा कर पुरुषवर धर्म्मराज द्रौपदीके साथ एकान्तमें आनन्द भोगने लगे। इधर कमलनेत्र केशवभी प्रसन्न मनसे अपने सुन्दरपुरमें प्रवेशपूर्व्वक यदुश्रेष्ठ उग्रसेनादिसे पूज जाय और वृद्धपिता वसुदेवजी यशस्विनी माता और ज्येष्ठ भ्राता बलदेवजीको प्रणाम कर विराजने लगे। अनन्तर प्रद्युम्न, शाम्ब, निशठ, चारुदेष्ण, गद, अनिरुद्ध, भानु आदि पुत्रोंको गले लगाय वृद्धोंकी आज्ञासे रुक्मिणीजीके भवनमें जा विराजे।

दूसरा अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर मय-दानव विजयियोंमें श्रेष्ठ अर्ज्जुनसे बोला, कि आपकी आज्ञा हो, तो अब विदा लेकर चला जाऊं; पीछे आऊंगा। पहिले मैंने कैला-सके उत्तर मैनाक पर्व्वतके निकट दानवोंके यज्ञकालमें बिन्दुसरोवरके पास एक विचित्र सुन्दर मणि-जड़ित भाण्ड बनाया था; उस समय उसे सत्य प्रतिज्ञा करनेवाले वृषपर्व्वाकी सभामें रखा था। हे भारत! यदि वह आज तक विद्यमान हो, तो मैं मैनाकसे लौटते समय उसे लेआऊंगा और आपकी यश-बढ़ा-वनी मनभावनी सर्व्वरत्नसे सुहावनी विचित्र सभा बनाऊंगा। हे कुरुनन्दन! जान पड़ता है, कि उस विन्दुसरोवरमें एक बड़ी कठोर गदाभी पड़ी है। राजा वृषपर्व्वाने लक्ष गदा-ओंके समान, बड़ा भार सहने योग्य, सुवर्ण, बिन्दु जटित, शत्रुनाशी उस कठोर गदासे शत्रुओंको हननकर उसे वहां गाड़ रखा है। गाण्डीव जैसे आपके योग्य है, वह गदाभी वैसेही भीमसेनके योग्य है। फिरभी वरुणजीका देवदत्त नामक बहुत बजनेवाला बड़ा भारी शङ्खभी उस सरोवरमें है; इसका सन्देह न कीजिये, कि मैं वह सब लाके आप को दूंगा। वह असुर पार्थसे ऐसा कहके पूर्व्वोत्तर ओरको पधारा। कैलासके उत्तर मैनाकपर्व्वतके निकट हिरण्यशृङ्ग नामक अनेक मणियोंसे भरा, बड़ा भारी गिरि है, वहीं सुन्दर बिन्दुसरोवर विद्यमान है। उस सरो-वरके तटपर भगीरथीने श्रीगङ्गाजीके दर्शनके लिये बहुत वर्ष गंवाये थे। हे भरतश्रेष्ठ! उस स्थानमें सर्व्वभूतोंके अधीश इन्द्रजीने सौ महायज्ञ करके शोभाके लिये पहिले कभी न बने मणिके यूप और सोनेके चैत्य बना रखे हैं। वहीं यज्ञ कर उन शचीनाथने रिद्धि-सिद्धि लाभ की थी। अति तेजोवन्त सनातन भूतनाथ महादेव सर्व लोकोंको रचके उस स्थानमें विराजमान होकर सहस्रों भूतोंसे पूजे जाते हैं। उस स्थानमें नर नारायण, ब्रह्मा, यम और रुद्र सहस्र युगोंके अन्त होने पर यज्ञ किया करते हैं। वासुदेव केशवने धर्म्म संस्थापन करनेके लिये उस स्थानमें बहुत वर्षों तक सदा श्रद्धा सहित यज्ञ

किया था, और उस स्थानमें उन्होंने सुवर्ण-मालायुक्त यूप चमकीले चैत्य और दूसरी सहस्रों बनी बनायी वस्तु दान दी थीं। हे भरतनन्दन! मयदानवने वहां जाके वृषपर्व्वाकी अधिकार की हुई गदा,शङ्ख और सभा बनानेके योग्य जितनी स्फटिककी सामग्री थी, सब ले ली। यक्ष और राक्षस लोग जो अनेक धनकी रखवारी करते थे, उस मयासुरने वहां जाके वह भी ले लिया। वह सब ले कर असुरने तीनों लोकोंमें प्रशंसित, मणिकी उस अप्रतिम सुन्दर सभाकी रचा और भीमको वह अच्छी गदा तथा अर्ज्जुनको देवदत्त नामक वह बड़ा भारी शङ्ख दिया। महाराज! सुनीले वृक्षोंसे सुहावती वह सभा चारों ओर पांच सहस्र हाथ फैली बनी। उस सभाने सूर्य्य चन्द्रमाकी शोभाके समान चमकता अति सुन्दर स्वरूप प्राप्त किया। अपनी प्रभाके प्रभाव से सूर्य्यकी तेज-प्रभाको भी लजाया। लोकोंमें न मिलने-वाले तेजसे मानों प्रज्वलितकी भांति आकाश-मण्डलको ढंप लिया। वास्तवमें दक्ष संमति मयने जैसी लम्बी चौड़ी, अति निर्म्मल, थकावट मिटावनी, मनोहररूपिणी, अनेक चित्रोंसे सुहावनी, रत्नप्राचीर वेष्टित बहुमूल्य सभा बनायी। वैसी न तो श्रीकृष्ण चन्द्रकी न ब्रह्मा-जीकी और न किसी दूसरे सुरकी थी। आकाश में उड़नेवाले,महाबली,भारी देहधारी लालनेत्र शुक्तिकर्णवाले, अस्त्र लिये हुए आठ सहस्र किङ्कर नामक भयावने राक्षस मयकी आज्ञासे सभाकी रखवारी करने और वहने ढोनेमें लगे थे। उक्त सभामें मयने एक बड़ा सरोवर खुदवाया। उस सरोवरमें मणिके मृणाल और सुनीले कह्लार कदम्ब सुहाते थे और भांति भांतिके पक्षी इधर उधर खेल कूद रहे थे, खिले कमल और सुनीली मछली तथा कछुओंसे सुहावने चित्रित स्फटिककी सीढ़ी-वाले मन्दपवनसे आन्दोलित, मोती विन्दुओंसे खचित, महामणि शिलापट्टकी वेदीसे चारो ओर समण्डित; मणि रत्नोंसे सुशोभित उस अमल जालको देखकर कोई कोई राजकर्म्म-चारी भ्रमसे उसमें गिर गये। उस सभाके चारो ओर फूलवाले, नील, घनी छांहवाले अनेक भांतिके मनहरनेहारे वृक्ष और सुगन्धी वन तथा हंस, कारण्डव तथा चकवोंसे भरे तालाव इधर उधर सुहाते थे। गन्धवहनेवाली पवन सर्व्वत्र जलमें उपजे कमलोंकी सुगन्ध ले ले पाण्डवोंकी सेवा किया करती थी। महाराज! मयने चौदह महीनेमें ऐसी अच्छी सभा पूरी बनाकर धर्म्मराजको समाचार दिया।

तीसरा अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर नरनाथ युधिष्ठिरने मधुयुक्त, घृतमिश्रित पायसान्न, बहुविध फल मूल और हरिण शूकर आदिके मांससे दशसहस्र ब्राह्मणोंको यथायोग्य भोजन कराके सभामें प्रवेश किया। महाराज! उन्होंने नाना दिशाओंसे आये विप्रवरोंको तिलौदन, जीवन्तीशाक, हविष्यान्न मांसके अनेक पकवान इत्यादि बहुविध चाबने, चूसने चाटने, पीनेकी अपरिमित सामग्री और कोरे चीर, गहनोंसे प्रसन्न किया और उनमेंसे हरेकको सहस्र गौ दान दी। हे भरतनन्दन! उस कालमें पुण्याह ध्वनि अर्थात् "आज कैसा शुभदिन है" लोगोंका यह आनन्द कोलाहल आकाशमें गूंजने लगा। कुरुश्रेष्ठ युधिष्ठिरको बाजे और फूल धूपादिकी मनहरनी गन्धसे देवोंकी पूजाकर सभामें घुसने पर वहां मल्ल,झल्ल, नट,सूत और स्तुतिगाने वाले अपना अपना गुण प्रगट कर उनकी उपासना करने लगे।

पञ्च पाण्डव ऐसी भीड़भड़ाके से उक्त सभाको प्रतिष्ठा कर अमरावतीमें बैठे देवराजकी भांति परम सुखसे वहां विराजने लगे। वहां

अनेक देशोंसे आये नरेश और ऋषि पाण्डवोंके साथ बैठते थे। असित, देवल, सत्य, सर्पमाली, महाशिरा, अर्व्वावसु, सुमित्र, मैत्रेय, शुनक, बलि, वक, दाल्भ्य, स्थूलशिरा, कृष्णद्वैपायन, शुक, सुमन्त, जैमिनि, पैल, मेरे सहित व्यास जीके सब शिष्य, तित्तिरि, याज्ञवल्क्य लोमहर्षण और उनके पुत्र, अप्सुहोम्य, धौम्य, अणी-माण्डव्य कौशिक, दामोष्णीश, त्रैवलि, पर्णाद, वरजानुक, मौञ्जायन वायुभक्षी पारा-शर्य्य, सारिक, वलीवाक, शिलीवाक, सत्यपाल, कृत-श्रम, जातुकर्ण, शिखावान, आलम्ब, पारिजातक, महाभाग पर्व्वत, महामुनि मार्कण्डेय, पवित्र-पाणि, सावर्ण, भालुकि, गालव, जङ्घावन्धु, रैभ्य, कोपवेग, भृगु, हरिबभ्रु, कौण्डिन्य बभ्रुमाली, सनातन काक्षीवान, औषिज, नाचिकेत, गौतम पैङ्ग, वराह, शुनक, महातपा शाण्डिल्य कण्डिन, वेणुजङ्घ, कालाप और कठ, धर्म्मके जानकार संयतात्मा और जितेन्द्रिय यह सब और वेद वेदान्तमें पण्डित, धर्म्मज्ञ और पवित्र दूसरे अनेक ऋषिसत्तम बहुविध विशुद्ध पुण्य-कथा कहकर धर्म्मराजकी उपासना करते थे। और श्रीमान महात्मा धर्म्मात्मा मुञ्जकेतु, विवर्द्धन, संग्रामजित, दुर्म्मुख, वीर्य्यवान उग्रसेन पृथ्वीनाथ कक्षसेन, अपराजित क्षेमक, काम्बोजराज कमठ, बड़े पराक्रमी कम्पन (जिन्होंने कालकेयआदि असुरकुलनाशी वज्रधारी देवराजकी भांति, अकेले बलसे उठे मदसे भरे शस्त्रोंमें छंटे तेजसे विकट यवनोंको कंपाया था) मद्रनाथ जटासुर, कुन्ति, किरात-राज पुलिन्द, अङ्ग, बङ्ग पुण्ड्रक पाण्ड्य, उड्रराज, अन्ध्रक, सुमित्र, शत्रुनाशी शैव्य, किरातराज सुमना, यवननाथ चाणुर, देवराज, भोज, भीमरथ, कलिङ्गराज श्रुतायुध, मगधनाथ जयसेन, सुकर्म्मा, चेकितान, शत्रुनाशी पुरु, केतुमान, वसुदान, वैदेह कृतक्षण, सुधर्म्मा, अनिरुद्ध, अति बलवन्त श्रुतायु, दुर्द्धर्ष अनूप-राज, सुदर्शन क्रमजीत, पुत्रसहित शिशुपाल, करूषाधिप, वृष्णिवंशके कठोर देवरूपी कुमारगण, आहुक, विपृथु, गद, सारण, अक्रूर, कृतवर्म्मा, शिनिपुत्र सत्यक, भोसक, आकृति वीर्य्यवन्त द्युमत्सेन, बड़े चापधारी कैकेयगण और सोमकपुत्र यज्ञसेन यह सब और विद्वोंके जाने दूसरे बहुतेरे क्षत्रियभी धर्म्मराज युधिष्ठि-रकी उपासनामें लगी रहते थे। महाराज। प्रद्युम्न, शाम्ब, युयुधान, सात्यकि, सुधर्म्मा, अनिरुद्ध, नरश्रेष्ठ शैव्य आदि वृष्णिनन्दनगण और अति पराक्रमी जितने राजकुमार मृगछाल पहिरे अर्ज्जुनसे अस्त्र सीखते थे, वे भी उस सभामें उपस्थित रहते थे। इनके उपरान्त धनञ्जयके सखा तुम्बुरु, अमात्य सहित चित्र-सेन, और ताललयमें रटे, गाजेबाजेमें छटे गन्धर्व्व, किन्नर, और अप्सरा निकट रहती थीं। लयस्थान तथा प्रमाणके सुजान महामन किन्नर और गन्धर्व्व तुम्बुरुकी आज्ञा पाय दिव्यतानसे नियमपूर्व्वक गाय बजाय पाण्डव और ऋषियोंको उस सभामें प्रसन्न करते थे। स्वर्गमें देवगण जैसे ब्रह्माकी उपासना करते हैं, वैसे सत्य प्रणठाने, व्रतमाने पुरुषगण उस सभामें बैठे युधिष्ठिरकी उपासना करते थे।

चौथा अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे महाराज! महात्मा पाण्डवगण और प्रधान प्रधान गन्धर्व्व उस सभामें बैठे थे, कि ऐसे समयमें सकल वेदोपनिषदोंके जानकार, सुरोंके पूजनीय, इति-हास तथा पुरानोंके जाननेवारे, अतीत कल्पके विशेषज्ञ, और धर्म्मके तत्वज्ञ, शिक्षा कल्प-व्याकरणादि षड़ङ्ग शास्त्रोंमें असाधारण ज्ञानी परस्पर विरुद्ध विधिवाक्योंका एका करनेवाले, वाक्योंको अलग अलग कर देने और एक कर्म्ममें अनेक धर्म्म सन्निवेश करनेके लिये अधिकारके अनुसार सम्बन्ध निरूपणके

विषयमें बड़े पण्डित, वाग्मी अति प्रगल्भ स्वभावी, मेधावी, स्मृतिमान, नीति शील, कवि, भले बुरेको अलग करनेमें ज्ञान रखने वाले; प्रत्यक्ष, अनुमानादि प्रमाणोंसे वस्तुओंके विचारक, प्रतिज्ञा हेतु आदि पांच प्रकारके अङ्गयुक्त वाक्योंके गुण दोष जाननेवाले, बृहस्पतिजीके भी बात उठाने पर उनकी बातोंके क्रमसे उत्तर देनेमें समर्थ, धर्मार्थ काम मोक्ष चारों वर्गोंके सारके जानकार, योग-बलसे क्या ऊर्द्ध क्या अध, क्या तिर्य्यक सम्पूर्ण भूमण्डलके प्रत्यक्षदर्शी, वेदान्त-विचार और-योगविभागके जाननेवाले, झगड़ा उठा कर देव और असुरोंको निर्वेदयुक्त करनेके सम्पूर्ण उद्यत सन्धिविग्रहादिके तत्त्वज्ञ, अनुमानसे कार्य्याकार्य्य विभागमें अभिज्ञ, सन्धिविग्रहादि बड़े गुणी, विधिके उपदेश करनेवाले, सर्व्व-शास्त्रोंमें पण्डित, युद्ध और नृत्यगीतादिको चाहनेवाले, किसी कार्य्यसे चित्तको न हटाने-वाले, और दूसरे सब गुण रखनेवाले, आत्म तत्त्व ढूढ़नेवाले, बड़े तेजस्वी महर्षि नारदजीने पारिजात, धीमान रैवत, सुमुख और सौम्य, इनके साथ लोकमण्डलमें घूमते घामते हुए पाण्डवोंके दर्शनके लिये प्रसन्न होके मनके समान तेज चालसे उनकी उस सभामें आकर जय अशीससे धर्म्मराजकी जयजयकार तथा पूजा की। ऋषिको आते देखकर सर्व्व धर्म्मके जानकार अति नम्र व्यवहार धर्म्मकुमारने एकायक अनुजोंके समेत खड़े होय प्रीति दर्शाय शिर झुकाय प्रणाम कर पाद्य, अर्घ योग्य आसन गौ, मधुपर्क, बहुविधि रत्नादि सर्व्व-कामनाओंसे उनकी पूजा की। वह भी युधिष्ठिरसे योग्य पूजा पाय प्रसन्न हुए। वेदपारग महर्षि श्रीनारदजी पाण्डवोंसे पूजे जाय युधिष्ठिरसे धर्म्मार्थ-कामयुक्त यह नीचे लिखे प्रश्न किये।

श्रीनारदजी बोले, महाराज! तुम्हारा धन सञ्चित और उचित कार्य्यमें व्ययित तो हो रहा है? तुम्हारा मन धर्म्म पर बना तो है! और दूससे चित्त ऊबता तो नहीं। हे नरनाथ! तुम्हारे पुरखे अच्छी, मझली और बुरी प्रजासे जैसे धर्म्म अर्थकी रीतिसे अच्छा बर्त्ताव करते थे, तुमभी वैसेही करते तो हो? अर्थके लिये धर्म्मको और धर्म्मके लिये अर्थको हानि तो नहीं पहुंचाते? अथवा हालमें सुखदायी कामके वशमें हो जाय धर्म्मार्थ दोनोंको हनते तो नहीं? हे परोपकारी जय-निहारी कालविहारी युधिष्ठिर! तुम योग्य कालमें भागकर तुल्य रीतिसे धर्म्म अर्थ कामकी सेवा तो करते हो? हे अनघ! वक्तृता प्रगल्भता आदि छः राज-गुण, साम दानादि सात उपाय और बलाबल द्वारा राजाओंके चौदह भांतके दोषोंको भले प्रकार जानते हो कि नहीं? हे जयशील! अपनी और परायी दशाको समझ बूझकर कार्य्य तो करते हो? और शत्रुओंसे हेल मेलकर कृषि वाणिज्यादि आठ प्रकारके कर्म्म कर लेते तो हो? हे भरतकुल-प्रदीप! तुम्हारी दुर्गनाथादि सप्तविध प्रकृति शत्रुओंसे मोहित होकर अथवा आढ्य बनके व्यसनी तो नहीं बनी? वे सब भली भांति तुम्हारी प्रेमी तो बनी हैं? छली निडर दूतोंसे, तुमसे अथवा तुम्हारे मन्त्रियोंसे तुम्हारी परामर्श प्रकाश तो नहीं होती? शत्रु, मित्र और विरागी जो कुछ करना चाहते हैं, वह जान तो लेते हो? उचित कालमें सन्धि-विग्रह तो करते हो? उदासीन और मध्यस्थों पर मध्यस्थताको अवलम्ब तो करते हो? हे वीर-वर! निर्द्दोष, काज अकाजके समझदार, प्यारे, तथा अपने समान सुवंशी वृद्धोंको मन्त्रीके पदों पर बैठाया तो है? क्योंकि, हे भारत! मन्त्रही राजाकी जयकी जड़ है। सब शास्त्रोंमें पण्डित मन्त्रीगण मन्त्र छिपाकर भली रीति तुम्हारे राज्यकी रक्षा तो करते हैं? तुम

निद्राके अधीन तो नहीं होते? उचित समय पर जागते तो हो? हे अर्थज्ञ! शेष निशिमें उचित अनुचितकी चिन्ता तो कर लेते हो? अकेले अथवा अनेकोंके साथ युक्ति तो नहीं करते? तुम्हारी गुप्तयुक्ति तो राज्यमें नहीं फैलती? थोड़ी चेष्टासे मिलनेवाले, पर बड़े फलदायी, ऐसे कार्य्योंको शीघ्र आरम्भ तो करते हो? किसी हेतुसे इनमें बाधा तो नहीं डालते? सब कार्य्योंका अन्तभाग तुम्हारी दृष्टिमें पड़ता और निःशङ्क होता है कि नहीं? आरम्भ कर उन सब कार्य्योंको त्यागना तो नहीं पड़ता? अथवा उन सबोंका प्रबन्ध बिगड़ता तो नहीं? विश्वासी, अलोभी, प्राचीन, क्रमके जाननेवाले कर्म्मचारियोंसे वह सब किये तो जाते हैं? महाराज! लोग तुम्हारे किये गये वा किये जाते हुए कार्य्योंको जान तो लेते हैं? हे वीरवर! जो सब कार्य्य नहीं हुए हैं, उन्हें तो किसीने नहीं जाना? सर्व्व शास्त्रोंमें पण्डित आचार्य्यगण कुमार और युद्धके मुखियोंको धर्म्मको शिक्षा तो देते हैं! सहस्रों मूर्खोंके बदले एक पण्डितको मोल लेते हो कि नहीं? क्योंकि पण्डित लोग बड़ी विपत्तसेभी उद्धार करके मङ्गल करते हैं। तुम्हारे दुर्ग, धन, धान्य, रत्न, अस्त्र, शस्त्र, जल, यन्त्र, दल, शिल्पीगण और चापधारियोंसे भरे पूरे तो हैं? मेधावी, शूर, जितेन्द्रिय और चतुर एकही राजमन्त्रीसे भी राजा वा राजकुमार बड़े श्रीमान हो सकते हैं; सो ऐसा कोई मन्त्री आपके यहां है तो? हे शत्रुमथन परस्परकी अनजानी तीन तीन प्रणिधियोंसे विपक्षियोंके पुरोहितादि अठारह तीर्थ और निज पक्षके पन्द्रह तीर्थ जान तो लेते हो? शत्रुओंके न जाननेमें सदा सावधान और यत्नवान होकर उनका सब हाल जान तो लेते हो! विनयी, सुवंशी बड़े नामी अस्याशे रहित और महानुभव, पुरोहितों-का तुम सदा आदर तो करते हो? कोई सरल-चित्त विधिदर्शी जन तुम्हारे अग्निहोत्र कार्य्यमें नियुक्त होकर यह तो जताते हैं, कि कब हवन हुआ और कब करना चाहिये? जो तुम्हारे ज्योतिष-शास्त्रके प्रतिपादक हैं, वह सामुद्रिक शास्त्रके अनुसार अङ्ग परीक्षामें पण्डित, दैवी अभिप्रायोंके जानकार और दैवादि विपत्तिके रोकनेमें दक्ष तो हैं? उत्तम, मध्यम और निकृष्ट नौकर तो रखे गये? कुलकी परम्परासे चले आते हुए, अकपट अमल-चित्त श्रेष्ठ मन्त्रियोंको श्रेष्ठ कार्य्योंमें नियुक्त तो कर दिया है? तुम्हारे कड़े दण्डसे प्रजा चिढ़ती तो नहीं? मन्त्री लोग तुम्हारी आज्ञासे राज्य-शासन तो करते हैं? याजक जैसे पतित जनका और नारियां कड़े स्वभावी स्वेच्छाविहारी पतिका अनादर करती हैं, तैसे मन्त्री लोग तुम्हारा अनादर तो नहीं करते? तुम्हारा सेनापति प्रगल्भ, शूर, मतिमान, धीरजवान, शुचि, सुवंशी, प्यारा और काममें दक्ष तो है! अपने सैनिकोंमें सर्व्व युद्धमें दक्ष, प्रगल्भ, शुद्ध चित्त, पराक्रमी बड़े बड़े जनोंका आदर-पूर्व्वक सम्मान तो करते हो? सदा सेनाओंका पावना अन्न और वेतन ठीक समयमें तो देते हो? काल बिताकर उनको पीड़ा तो नहीं पहुंचाते? क्योंकि उचित समय पर उनको अन्न वेतन न देनेसे वे कुगतिसे प्रभुको हानि पहुंचा सकते हैं; उस अनर्थको पण्डितलोग बड़ा अनर्थ कहते हैं। सुवंशी और प्यारे बड़े बड़े जन तुम्हारे हितके निमित्त युद्धमें प्रसन्न मनसे प्राण छोड़नेको प्रस्तुत तो हैं? शासनाधीन कोई कामात्मा जन अकेला बहुविध युद्धलीला स्वेच्छासे करने तो नहीं पाता! कोई कोई पुरुषार्थ प्रकटकर अपना कर्म्म उज्ज्वल बनाके तुमसे बहुतसम्मान अथवा बहुत अन्न और वेतन तो पाते हैं? विद्या विनयसे छके, ज्ञानसे

पक्के लोगोंको तुम गुणके अनुसार उचित पारितोषिक तो देते हो? हे भरतश्रेष्ठ! तुम्हारे लिये प्राण छोड़े अथवा विपत्में पड़े परिवारोंको पालते पोषते तो हो! भय पाये वा शक्ति खोये अथवा युद्धमें हारे, शरण लिये हुए शत्रुओंको पुत्रके समान पालते तो हो! हे पृथ्वीनाथ! धरती भरके सब लोग तुमको पक्षपातसे रहित और पिता माताकी भांति अनडरावने जानते तो हैं? शत्रु व्यसनी बना है; सुनके तुम मन्त्र, कोष और उत्साह इन तीन प्रकारके बलकी भली भांति आलोचना कर उस पर शीघ्र चढ़ जाते हो कि नहीं? हे अरिन्दम! पार्ष्णि, ग्राह आदि बारह प्रकारके मण्डल कृत्य निश्चय और पराजय विशेष रूपसे जानके और सैनिकोंका अग्रिम वेतन चुकाकर दैवादि व्यसन सब भली प्रकार आलोचना करके योग्य समयमें युद्धयात्रा तो करते हो? हे शत्रुतापन! शत्रु राज्यमें आपसका बिगाड़ उभाड़नेके हेतु बड़े बड़े सैनिकोंको योग्यताके अनुसार शत्रुकी बिन देखी बनी बनायी अच्छी वस्तुका पारितोषिक तो देते हो? हे पृथापुत्र! पहिले अपनेको जयकर जितेन्द्रिय होय पीछे अजितेन्द्रिय प्रमत्त शत्रुको परास्त करना तो चाहते हो? शत्रुओं पर चढ़ जानेके पहिले भली प्रकार अनुष्ठान किये हुए साम, दान, भेद और दण्ड यह चार उपाय विधिपूर्व्वक प्रयोग तो किये जाते हैं? अपने राज्यकी भली रीतिसे रक्षा करके पीछे शत्रुओंकी जय करनेके लिये बल विक्रम प्रगट तो करते हो? जय करके उनकी रक्षा तो करते हो? हे शत्रुनाशि! अष्टाङ्ग युक्त चार प्रकारकी बल रखती हुई सेना बड़े बड़े योधोंसे सिखायी जाकर तुम्हारे शत्रुको मारने तो जाती है? हे महाराज! पराये राज्यमें अनाज काटने और दुर्भिक्षके कालको न त्याग करके युद्धमें शत्रुओंकी हिंसा तो करते हो? अपने और पराये राज्यमें बहुविध नौकर चाकर बहुविध काममें नियुक्त रहकर उन कामोंको करते और एक दूसरेको बचाते तो हैं? हे महाराज! तुम्हारे विश्वासी जन भोजनकी सामग्री और वस्त्र चन्दनादि तो एकत्र रखते हैं? कोष शस्त्रगृह, वाहन द्वार अस्त्र और अन्तःपुर यह सब तुम्हारे मङ्गल चाहने-वाले भक्त नौकरोंसे रखे तो जाते हैं? हे प्रजानाथ! रसोइया आदि भीतरी और सेनापति आदि बाहरी जनोंसे पहिले अपनी रक्षा कर पीछे पुत्रादि आत्मजनोंसे उनकी और उनमें परस्परसे परस्परकी रक्षा तो करते हो? दिनके पहिले भागमें तुम्हारा पान, सुन्दरी, चौसड़ आदिके अर्थ व्ययका हाल कोई जान तो नहीं सकता? तुम्हारी आयके आधे, तीसरे वा चौथे भागसे तुम्हारा व्यय पूजता तो है? सदा धन धान्य देकर गुरु, वृद्ध, वणिक; शिल्पी, शरणागत और कुदशामें पड़े जनों पर कृपा दिखाते तो हो? आय व्ययमें लगे लेखक और गणक नित्य तुम्हारी आय व्ययका हिसाब लगाते तो हैं? विषयमें चित्तन लगाये हितैषी प्यारे कर्म्मचारी बिनादोष कर्म्मसे निकाले तो नहीं जाते? हे भरतनन्दन! भले,बुरे और मझले जन भले प्रकार जांचे जाय योग्य कर्म्ममें नियुक्त तो होते हैं? हे प्रजापते! चोर लोभी, शत्रु अथवा बालक तो तुम्हारे कार्य्यमें नहीं नियुक्त होते? चोर, लोभी, कुमार वा नारी अथवा तुमसे राज्यमें कोई बखेड़ा तो नही उठता तुम्हारे राज्यके किसान तो सदा प्रसन्न रहते हैं? बड़े बड़े ताल जलसे लबालब होकर विभागके अनुसार ठौरठौरमें बने तो हैं? कृषिकार्य्यमें वृष्टिका कोई बड़ा प्रयोजन तो नहीं है? हर सैकड़ेमें चौथा भाग बढ़ती लेकर कृपाचित्तसे उनको ऋण तो देते हो? तुम्हारी कृषि, वाणिज्य, पशुपालन और ऋणदान यह चार प्रकारकी वार्त्ता तो सुचरित जनोंसे भली